वर्ष ४

# भगवदंक भक्ति भगवदंक

संख्या १

आश्विन सम्वत् १९८६

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द भगवद्दत्त

इस अङ्क का मूल्य ।।।)

# भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जावेगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में विना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

# विषय सूची


| विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १. भगवदंक समर्पण | | १ |
| २. वेदोपदेश | | २ |
| ३. सहर्ष तथा सादर समर्पण | [सम्पादक | ३ |
| ४. भगवत् शरणागति | [श्रीहनुमान प्रसाद जी पोद्दार सम्पादक कल्याण | ५ |
| ५. भक्त की भावना | [श्रीहरिकृष्ण दासजी गुप्त | ७ |
| ६ ईश्वर प्रार्थना। कविता ) | [श्रीस्वामी आत्मानन्द जी | ८ |
| ७. भगवत् के चौबीस अवतार | [श्री स्वामी भोले बाबाजी | ९ |
| ८. ईश्वर स्तुति ( कविता ) | [श्रीस्वामी आत्मानन्द जी | १५ |
| ९. भगवत् कृपा | [एक जिज्ञासु | १६ |
| १०. भगवान् क्या है | [श्रीस्वामी चिदात्मानन्दजी | १९ |
| ११. भगवत् सबके हैं | [श्रीभाई परमानन्द जी | २२ |
| १२. भगवत् आहार (कविता) | | २३ |
| १३. श्रीगोसाईं जी की भगवद्भक्ति | [श्रीमधुमंगल जी मिश्र बी. ए. | २४ |
| १४. भक्त की अभिलाषा (कविता) | [श्रीशोभाराम धेनुसेवक | ३४ |
| १५. प्रेमावतार | [श्रीआनन्दी प्रसाद जी मिश्र | ३५ |
| १६. कलियुग में श्रीराम नाम प्रभाव | [श्री पं० सीताराम जी शास्त्री | ३६ |
| १७. भक्तिप्रियो माधवः | [श्री पं० गंगाविष्णु पाण्डेय विद्यानुषण | ३९ |

१८. भगवत् माया ४७
१९. भगवद्गीता [श्री पं० रमाशंकर जी मिश्र "भूपति" ४८
२०. भगवान् और भागवत [श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी ससी ५०
२१. भगवान् के दश अवतार (कविता) [श्री पं० अयराम सनातन ५६
२२. भगवान् सगुण हैं अथवा निर्गुण [एक भिक्षु ५७
२३. ईश्वरीय भावों के प्रचार में उन्नति है [भक्तवर श्रीजयदयाल जी गोयन्दका ६७
२४. ईश्वर भक्ति [श्रीस्वामी आत्मानन्द जी ७०
२५. भगवान् का अवतार [महामहोपाध्याय पं० गणेशदत्त जी शास्त्री ७५
२६. अभिलाषा (कविता) [श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी आश्रम ७७
२७. अंशावतार और पूर्णावतार [श्री स्वामी दयानन्दजी सरस्वती ७७
२८. भगवत् गुणगान [श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम ७९
२९. भक्ति का चमत्कार [श्री शिवनारायण जी भटनागर सम्पादक भारत ८३
३०. भगवन् प्यारे ... ८५
३१. ईश्वरावतार [श्री मदनगोपाल जी सिंहल ८५
३२. गीता से हमें क्या सीखना चाहिये [श्री पं० रामप्रसाद जी अग्निहोत्री ८७
३३. इच्छा (कविता) [श्री मदनगोपाल जी सिंहल ९५
३४. श्रीचैतन्य तत्त्व [आचार्य श्रीमदन मोहन जी गोस्वामी, भक्ति तीर्थ भागवत रत्न ९५
३५. पतित की पुकार (कविता) [श्री पं० रमाशंकर जी मिश्र 'भूपति' ९८
३६. परम भक्तिमती प्रेमाबाई [श्री बाबा राघवदास जी सम्पादक कल्याण ९८
३७. भगवान् की प्राप्ति के उपाय [भक्तरत्न श्री मथुरा प्रसाद जी १००
३८. भक्त की टेर [श्रीस्वामी आनन्द भिक्षु जी सरस्वती १०५
३९. दो अक्षर [श्री दुर्गाप्रसाद जी गुप्त १०९
४०. मनुष्य के लिये भगवद्भजन ही कल्याणकारी है [ श्री सतीशचन्द्रदत्त ११२
४१. भव पथ का पथिक [श्रीशोभनराम जी देवसेवक ११२
४२. भगवत् के दश अवतार [श्रीमती सरजदेवी आश्रम ११३
४३. भगवत् से प्रार्थना [लेखक एक कृषीवल ११८
४४. भक्ति की महिमा [आचार्य भिक्षु स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती १२५
भजन १२६

## चित्र सूची

१. गोपाल श्रीकृष्ण (रंगीन) टाइटिलपेज पर
२. भगवान् शंकर (रंगीन) १
३. मत्स्य, कूर्म, वाराहावतार (सादा) ८
४. परशुराम, कल्कि अवतार ९
५. नृसिंहावतार (रंगीन) २४
६. वामनावतार (सादा) ३६
७. मुरली मनोहर (सादा) ३७
८. रामावतार (रंगीन) ५६
९. कृष्णावतार (रंगीन) ७२
१०. परम पूज्य स्वामी परमानन्दजी महाराज (सादा) ८४
११. बुद्धावतार (रंगीन) १००
१२. भक्ति के बारह प्रधान प्रचारक (सादा) १०८
१३. भक्ति के चार प्रधान आचार्य (सादा) १०९

# भक्ति के संरक्षक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी
लेफ्टेनेन्ट सरदार रघुवीरसिंह जी सांवोवालिया राजा सांसी, अमृतसर
पं० जैनारायण जी भार्गव भोड़ाकलां, गुड़गावां
धर्म सींह मावत्री जेठवा कोलरोंप्रोपाइटर झरिया
ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी।
आनरेबिल सरदार जुगेन्द्रसिंह जी मिनिस्टर आफ ऐग्रीकलचर लाहोर
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा
ला० जोहरी मलजी रेवाड़ी
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा
मुक्खी चण्डूमल बलीराम जी भटण्डा
सर आपा राव सातोले साहिब सी० एस० ई० के० बी० ई० रेजेन्ट मेम्बर ग्वालियर
पो० बाबूलाल जी भार्गव एम. ए. दिल्ली
राव श्रीराम जी रईस नांगल
म० शोभाराम जी डूंगरवास
बाई लक्ष्मादेवी भगनी राव जगमालसिंहजी रईस नांगल
श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया चावड़ी बाजार दिल्ली
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा
ला० दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली
बाई धदामो देवी पुत्री ला० गनेशीलाल चर्खीदादरी
श्रीमती भक्काणीदेवी धर्मपत्नी भक्त नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी ला० प्रभुदयाल जी
श्री० गणपतिदेवी धर्मपत्नी ला० गंगाप्रसाद जी दादरीवाले, साहबगंज
राव गजराजसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० गुड़गावां
सेठ नागरमल जी सेखावतिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मिर्जापुर
पेममुख हीरालाल जनरल ठे० दार रेवाड़ी
एस० जे० राव पंवार होम मेम्बर ग्वालियर स्टेट
राय बहादुर सरदार चमाखासिंह जी नई दिल्ली
पी० एन० कोल बैरिस्टर दिवान भूतपूर्व देवास स्टेट लाहोर
चौ० जीवनदास जी आनरेरी मजिस्ट्रेट झंङ्ग
सूबेदार जगरामसिंह जी कौसली

# सहायक

| | |
|---|---|
| चौ० हुकमसिंह जी निखरी | ११) |
| बा० वैकुण्ठनाथ जी दिल्ली | ११) |
| पं० जगन्नाथ जी रेवाड़ी | ११) |
| ला० अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी | ११) |
| चौ०गणपतसिंह जी यादव पटौकड़ा परगना नारनौल | ११) |
| चौ० मनोहरसिंह जी ,, पाल्हावास, रेवाड़ा | ११) |
| ला० छोटेलाल घासीराम जी आर्यन मर्चेण्ट चावड़ीबाजार, दिल्ली | ११) |
| ला० सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली | ११) |
| राव घीसाराम जी गढ़ीबोलनी | ११) |
| चौ० इन्द्रसिंह जी सिरहोल | १०) |
| बा० शिवरामसिंह जी ,, | ७) |
| माई गुलाबोदेवी दिल्ली | ५) |
| भक्त बनारसीदास जी दिल्ली | ५) |
| महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। | ५) |
| श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौ० जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ। | ५) |
| श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहाबाद बैंक देहली। | ५) |
| मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर | ५) |
| राय बहादुर लेखनारायण सिंह जी बाढ़, पटना | ५) |
| डाक्टर कवलकिशोर सिंह जी कलकत्ता | ५) |
| राय साहब बांकेबिहारीलाल जी बी० ए० तहसीलदार चिड़ावा | ५) |
| सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी | ५) |
| जमादार दीपचन्द जी ,, | ५) |
| ला० ओंकारमल जी कानपुर | ५) |
| चौ० दौलतराम जी पटवारी नाहरी, सूबा दिल्ली | ५) |
| भक्त हरीचन्द जी प्रेमहाउस, ,, | ,, |
| प० मथुराप्रसाद ग्राम जमालपुर पो० कासन, गुड़गावां | ५) |
| बी० दिलीपसिंह जी, कैथल मंडी, करनाल | ५) |
| चौ० मूलचन्दजी गुरावड़ा जि० गुड़गावां | ५) |
| बा० जगन्नाथ यादव सदर बाजार लखनऊ | ५) |
| सुमित्रादेवी ठिकाना ला० प्रेमशंकरजी पान का दरीबा जैपुर | ५) |
| ला० स्यादरमल जी दिल्ली | ,, |
| ला० रामेश्वर जी गुप्ता ,, | ,, |
| ला० प्रभुदयाल जी जतोस्व | ,, |
| विवेणीदेवी धर्मपत्नी ला० रामकरणदास स्वरूप, रोहतक | ५) |
| ला० ओराम जी गुप्ता भटिण्डा | ५) |
| बा० जयदयाल भार्गव मोड़ाकलां | ५) |

पुस्तक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम, रेवाड़ी।

भगवान् शंकर

MUKARI ART PRESS, DELHI.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ४ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आश्विन पूर्णिमा सं० १९८३। | अङ्क १

# भगवत् अंक समर्पण

भगवत् गुणानुवाद है जिस में, ऐसा अनुपम भगवत् अंक।
गाते जिस की महिमा निशदिन, शेष शारदा हो निःशंक॥
वन्दन करता सभी जगत् है, एक मात्र गति जो जन की।
तन मन प्राण न्योछावर करते, पाकर एक झलक जिनकी॥
अर्पण करते हैं सेवा में, तुच्छ भेंट संग्रह साल्हाद।
करी याचना संतजनों से, उन से जो कुछ मिला प्रसाद॥

# वेदोपदेश

**अरं त इन्द्र अवसे गमेम शूर त्वावतः । अरꣳ शक्रपरेमणि ॥ १ ॥**

हे परमेश्वर ! आप सर्वशक्तिमान् और अनन्त सामर्थ्य युक्तहैं, आप ही अपने तुल्य हैं । हम को ऐसी सामर्थ्य दीजिये जिससे आपके यश और ध्यान में तत्पर होकर मोक्ष प्राप्त हों ॥ १ ॥

**इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः । तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥ २ ॥**

हे इन्द्र परमात्मन् ! हमने यथा शक्ति अपने मन और अन्त करण शुद्ध किये हैं और करेंगे । इस-लिये हम पर प्रसन्न हूजिये ॥ २ ॥

**तुभ्यꣳ सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो । स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥ ३ ॥**

हे प्रकाशघन परमेश्वर ! आपके लिये मन शुद्ध किये हैं और हृदय भूमि पर आसन बिछाया है । हे परमैश्वर्यमान् ! उपासकों के लिये सुख दीजिये ॥ ३ ॥

**आ व इन्द्रं कृविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मꣳ हिष्ठꣳ सिञ्च इन्दुभिः ॥४॥**

हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर तुम्हारे अन्दर अनन्त कर्म वाले अत्यन्त पूजनीय अपने आत्मा को सींचता (: जैसे अन्न की उत्पत्ति के के लिए जल से खेती को सींचते हैं ॥ ४ ॥

**अतश्चिदिन्द्र न उपायाहि शत वाजया । इषा सहस्रवाजया ॥ ५ ॥**

इसलिए हे परमेश्वर ! आप अनन्त बल युक्त और अनन्त आत्मिक अन्न युक्त आनन्द रूपी रसके साथ होमको प्राप्त हूजिये ॥ ५ ॥

**इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पाꣳसुले ॥ ६ ॥**

त्रिविक्रमावतार धारण करने वाले भगवान् इस दृश्यमान् सब जगत् को विशेष रूप से लांघते हुवे इस समय तीन प्रकार से चरण को स्थापन करते हुए इन विष्णु के धूलि युक्त चरण स्थान में यह सब जगत् सम्यक् प्रकार से अन्तर्गत होगया ॥ ६ ॥

**उक्थं च न शस्यमानं नागोरयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥ ७ ॥**

स्तुति न करने वाले का शत्रु इंद्र होता के पढे हुवे स्तोत्र को भी जानता है, इस समय प्रस्तोता आदि के गाए हुवे गायत्र साम को जानता है । इस कारण हम भी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

**एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनुषु धेहि नः । सत्राजिदुग्र पोंस्यम् ॥ ८ ॥**

हे इन्द्र ! संपृक्त किन्हीं हमारे अंगों में बल को स्थापन करो । हे पूर्णबल इन्द्र ! यज्ञों के द्वारा वश में होते हुवे पुरुष के हितकारी फल को दो ॥ ८ ॥

**एवा ह्यसि वीरपुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ ९ ॥**

हे इन्द्र ! आप निश्चय पूर्वक वीरों को चाहने वाले हो, शूर हो, दृढ़ हो, अतः आपका हृदय प्रशंसा योग्य है ॥ ९ ॥

**अभित्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृश-**
**मीशानमिन्द्र तस्तुषः ॥ १० ॥**

हे शूर इन्द्र ! इस स्थावर जंगम के स्वामी, सर्व के द्रष्टा तुम्हें बिना दुही दूध भरी गौओं के समान सोम भरे चमस लिए हुवे हम बार २ प्रणाम करते हैं ॥ १०

**त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कार वः । त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं**
**नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ ११ ॥**

हे परमात्मन् ! अश्वादि के चढ़ने वाले पुरुष शत्रुओं से घेरे जाने पर आपका सहारा लेते हैं । सब दिशाओं में सज्जनों के रक्षक आपको भजते हैं । अतः हम स्तोता भक्त जन भी बल के दान निमित्त आपको ही पुकारते हैं ॥ ११ ॥

( सामवेद अध्याय २, ३ )

# सहर्ष तथा सादर समर्पण

पाठकों की सेवा में भक्ति के चौथे वर्ष का प्रथमांक "भगवदंक" के स्वरूप में समर्पण किया जाता है । भक्ति की आर्थिक स्थिति को देखते हुवे हमारे लिये एक प्रकार से इस प्रकार का विशेषांक निकालना असम्भव सा था । यह मात्र सहायक संरक्षकों की कृपा का फल है कि जिनकी आर्थिक सहायता के फल स्वरूप हम आप लोगों की सेवा में "भगवदंक" समर्पण कर सके हैं । ग्राहकानुग्राहकों की सेवामें "भगवदंक" भेट करने में हमें बड़ी प्रसन्नता है क्योंकि यह देश के सन्त महात्माओं, भक्तों तथा विद्वानों के भाव पूर्ण तथा अनुभव जन्य उपदेशों और लेखों से परिपूर्ण है । यह अंक इन भगवत् के चरित्रों तथा सुचित्रों से

सुसूचित है जिनको पूर्ण होने से पुरुष, आदि और अन्त रहित होने से शाश्वत, परिणाम रहित होने से अव्यय, क्षीणता रहित होने से अक्षय, वाणी तथा मन का अगोचर होने से सर्वज्ञ कहते हैं। ऐसे ब्रह्म को शम दमादि से शून्य मूढ पुरुष नहीं देख सकते। यह व्यापक परमात्मा तो भक्ति से ही सुगमतया जानने में आते हैं। परमात्मा शरीर रहित होने पर भी सब शरीरों में रहते हैं परन्तु पद्मपत्र वत् उन शरीरों के कर्मों से लिप्त नहीं होते। वह हम सबके अन्तरात्मा के साक्षी रूप हैं। सम्पूर्ण विश्व में उनका मस्तक है, सम्पूर्ण विश्व में उन की भुजायें हैं, सम्पूर्ण विश्व में उनकी आंख, पैर तथा नासिकाएं हैं, वह अकेले ही अपनी इच्छानुसार सुख पूर्वक सब क्षेत्रों में विचरते हैं।

हमारा शरीर क्षेत्र है और शुभाशुभ कर्मों की वासनायें बीज हैं। योगात्मा इन सबको जानता है, इसी से वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है। पञ्चभूतात्मक इस शरीर में आत्मा का आगमन प्रत्यागमन कब होता है इसको कोईभी नहीं जानता। शास्त्रों में पुरुष को एक ही कहा है उसी सनातन पुरुष को महापुरुष कहते हैं। अग्नि का एक ही स्वरूप होता है तथापि वह काष्ठ रूपी उपाधि से अनेक प्रकार से जलता है, सूर्य एक है तथापि उसकी किरणें सब दिशाओं में प्रकाशित होती हैं, वायु एक है परन्तु वह जगत् में अनेक प्रकार से चलता है, वैसे ही विश्व निर्गुण पुरुष भी एक है और उस विश्वरूप निर्गुण पुरुष में ही सब प्रवेश करते हैं तथा उस निर्गुण पुरुष को जान कर और चार प्रकार के उनके सूक्ष्म भेदों को जान कर अर्थात् अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण और वासुदेव इन चार भेदों को अथवा विराट अन्तर्यामी, सूत्रात्मा और शुद्ध ब्रह्म इन चार भेदों को अथवा विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय इन चार भेदों को जान कर और शान्त होकर विचरता है वह परम पद को प्राप्त करता है। इस प्रकार बहुत से योग मार्ग का अनुसरण करके आदि पुरुष को परमात्मा कहते हैं, सांख्याचार्य उस को एकात्मा कहते हैं। परमात्मा नित्य और निर्गुण है उसी को नारायण कहते हैं वही सबका आत्मारूप पुरुष है। आत्मा कर्मों के फलों से नहीं बन्धता। यह परम पुरुष सब लोकों का धाम स्वरूप है, परम जानने योग्य है, वही बोद्धा है, वही बोधनीय है, वही सूंघने वाला है वही सूंघने योग्य है वह द्रष्टा और देखने योग्य है, वही ज्ञाता और ज्ञेय स्वरूप है, वही निर्गुण और सगुण स्वरूप है, वह नित्य, शाश्वत तथा अविकारी है। उसी परमात्मा से यह स्थावर जंगम पर्यन्त समस्त जगत् तथा चारों वेद प्रकट हुए हैं। वह सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा सब के घट में बसते हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं जहां वह न हों ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें उनका अस्तित्व न हो, वह संसार के समस्त कार्य जानने वाले हैं, संसार का कोई भी कार्य उनसे अगोचर नहीं। जिस प्रकार दूध में घी, तिलों में तैल, पुष्प में सुगन्धि तथा लकड़ी में अग्नि है उसी प्रकार सत, चेतन, आनन्द स्वरूप, आदि मध्य हीन विभु सर्वत्र व्यापक हैं। इसलिये इस जगत् में ऐसे गुणों से परिपूर्ण भगवत् का ही नाम स्मरण, करना, उनके गुणों का परीक्षत की भान्ति श्रवण करना तथा कीर्तन करना, उनकी सेवा करनी, उन की पूजा करनी, उनको नमस्कार करना, उनमें दास भाव करना, उनमें सखाभाव करना तथा उन ही को

अपना सर्वस्व अर्पण करना प्रत्येक प्राणी का परम कर्तव्य और मनुष्य जन्म सार्थकता का मात्र उपाय है। एक एक श्वास अमूल्य रत्नवत् जा रहा है, गया हुवा रत्न तो फिर भी मिल सकता है परन्तु हरि नाम के जप से शून्य गया हुवा श्वास फिर लौट कर नहीं आसकता। किसी कवि ने क्याही उत्तम कहा है-

एक श्वांस खाली मत खोय तो खलक बीच,
कीचड़ कलंक अंक धोयले तो धोयले।
उर अंधियार पाप पुरसों भरयो है तामें,
ज्ञान की विराग चित्त जोयले तो जोयले॥
मिनषा जन्म बार बार ना मिलेगो मूढ़,
पूर्ण प्रभु से प्यारो होयले तो होयले।
येह क्षण भंगुर यामें जन्म सुधारबो सो,
बीज के झमके मोती पोयले तो पोयले॥

अतः श्वास श्वास में भगवत् का स्मरण करना चाहिये। करोड़ों वर्षों से चौरासी लाख योनियों में भरमते २ पूर्व पुण्य के प्रताप से यह मनुष्य शरीर मिला है। इसको प्राप्त करके यदि हरि का भजन नहीं किया तो पुनः चौरासी के चक्कर में पड़ना पड़ेगा। संसार में वही प्राणी सुखी है जो राग द्वेष रहित होकर, मानापमान से विगत होकर निष्काम भाव से हरि का भजन करता है।

कबीर जी कहते हैं:-

कथा कीर्तन कलि विषे, भव सागर की नाव।
कहे कबीर जग तरन को नाहिन और उपाव॥
कथा कीर्तन सुनन को जो कोई करे सनेह।
कहे कबीर ता दास की मुक्ति में नहिं सन्देह॥

कलि में भगवद्गुणानुवाद के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय ही नहीं है। इसलिये जगत् के सब व्यवहारों में अनासक्ति रख कर भगवद्भजन करना चाहिये। भगवान् स्वयं आज्ञा देते हैं:-

"मां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ताः भक्तास्तु ये मम"

जो मेरे भक्त हैं वे मुझ में प्रवेश करके मुक्त हो जाते हैं। सांसारिक माया से ग्रसित प्राणियों पर जो भगवत् का अनुग्रह है वह अवर्णनीय है। जीव उससे कोटानकोट जन्मों में भी उऋण नहीं हो सकता। ऐसे सच्चिदानन्द, भक्तवरचन्द, भक्त भयहारी, जन सुख कारी, माधव मुरारी का इस अंक में अनेक सन्त महात्माओं, भक्तों और विद्वानों ने गुणानुवाद किया है। यह भगवत् के गुणानुवाद से पूर्ण और नाना रूप से अवतार धारण करने वाले व्यापक प्रभु के चरित्रों तथा भगवत् और भागवतों के सुन्दर चित्रों से सुभूषित परम पवित्र "भगवदंक" प्रेमी ग्राहकों की सेवा में सादर तथा सहर्ष समर्पित है। आशा है हम इस परमपावनी आनन्द दायिनी, कलिकल्मष नाशिनी, भक्त हृदयोल्लासिनी तथा सर्वसुखकारिणी "भगवदंक" में बैठ कर इस अपार जीवन का लाभ उठायेंगे तथा भगवत् और भागवतों के चरित्रों को पढ़ कर या सुन कर मनुष्य जन्म को सार्थक करेंगे।

सम्पादक

# भगवत् शरणागति

[ लेo श्रीहनुमानप्रसाद जी पोद्दार सम्पादक कल्याण ]

इहलौकिक और पारलौकिक दुःखों से छुटकारा पाकर नित्य अखण्ड परमानन्द की प्राप्ति के

लिये भगवान् की शरणागति ही मुख्य उपाय है। जिसने एक बार सर्व भाव से अपने को परमात्मा के चरणों में अर्पण कर दिया वह सदा के लिये निर्भय निश्चित और परम सुखी हो जाता है। उसके योग क्षेम का समस्त भार भगवान् वहन करते हैं स्वयं केवट बन कर उसकी जीवन तरणी को भीषण संसार-सागर की उत्ताल तरंगों से बचा कर सुरक्षित रूप से परमानन्दमय धाम में पहुंचा देते हैं, उसे किसी प्रकार की चिन्ता या चाह करने की आवश्यकता नहीं रह जाती परन्तु यह शरणागति क्या वस्तु है, और कैसे होती है, इस पर विचार करना है। शरणागति केवल शब्दों से नहीं होती। अथवा यों समझ कर चुपचाप निकम्मा हो बैठने का नाम भी शरणागति नहीं है कि "मैं तो उसकी शरण हो गया, मुझे अब किसी काम के लिये हाथ पैर हिलाने या समझने सोचने से क्या प्रयोजन है, वह आपही सब ठीक करेगा मेरा तो कोई कर्तव्य नहीं है"। यदि यही शरणागति होती तो प्रत्येक आलसी और तमोभिभूत प्रमादी मनुष्य ऐसा कह सकता था। शरणागति में क्रिया का त्याग करने का तो प्रश्न ही नहीं है। शरणागत भक्त तो अपने "अहं" को और इस "अहं" से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव को परमात्मा के अर्पण कर देता है। फिर उसका जीवन परमात्मा की रुचि का जीवन उसका मन परमात्मा की रुचि का मन, उसकी बुद्धि परमात्मा की बुद्धि बन जाती है और उसकी सारी क्रियाएं मनोनुकूल होने लगती हैं। अब तक तो वह यह समझता था कि यह संसार मेरा है और इसमें काम करने वाला मैं हूं, शरणागत होने के बाद वह समझने लगता है, 'सारा संसार परमात्मा का है, स्थूल से स्थूल, सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ सभी उसके हैं और उसमें जो कुछ क्रिया होती हुई दृष्टिगोचर होती है सो सभी परमात्मा की दिव्य लीला है मैं तो निमित्त मात्र हूं, जो वास्तव में उसीका हूं और वह परमात्मा अपने ही एक पदार्थ को निमित्त बना कर अपनी इच्छानुसार अपने आप में ही अपने ही विनोद के लिये अपने आप ही अपनी लीला कर रहा है। प्रत्येक पदार्थ उसी की सामग्री है। उसकी सामग्री भी कोई उससे भिन्न वस्तु नहीं है, वह इन सामग्रियों के रूप में अपने आपको प्रकाशित कर रहा है खेल, खिलाड़ी और खिलौने तीनों ही मूल में और क्रिया में भी एक ही हैं, व्यवहारिक स्थूल से भेद प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार "अहं" और मम" का मन बुद्धि तथा समस्त प्रपञ्च सहित सर्वभाव से समर्पण ही यथार्थ शरणागति का स्वरूप है।

इस शरणागति को स्थिति को प्राप्त करने के लिये क्रमशः वाणी, मन और बुद्धि से अपने को परमात्मा के अर्पण करना पड़ता है। शरणागति की पहिचान यही है कि साधक ज्यों २ शरणागति के सुख शान्तिमय, सर्वतापहर शीतल प्रदेश में प्रवेश करता है, त्यों ही उसमें निर्भयता और निश्चिन्तता की वृद्धि होती है। स्नेहमयी जननी की गोद में आकर शिशु निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है। इसी तरह सर्व सच्चिदानन्दरूपा इस स्नेह सुधा समुद्रमयी जगज्जननी की महामहिमामयी क्रोड में आश्रय पाकर साधक निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है। उसे फिर कहीं कोई भय नहीं रहता और किसी भी वस्तु की या किसी भी गति विशेष की चाह नहीं रहती। प्रभु के हाथों में अपने को सौंप देने के बाद भय, चिन्ता और चाह कैसी ?

इस शरणागति के साधन में साधक को चार बातों पर विशेष ध्यान रखना पड़ता है आगे चल कर तो ये चारों उसके स्वाभाविक ही हो जाती हैं। (१) जिस परमात्मा की शरण ग्रहण की है उस परमात्मा का निरन्तर स्मरण रखना। २) उसकी इच्छा या आज्ञानुसार जीवन बना लेना। ( ३ ) वह जो कुछ भी विधान करे उसी में परम सन्तुष्ट रहना यानी उसकी कृपा से प्राप्त होने वाली प्रतिकूल से प्रतिकूल स्थिति में भी उसकी मंगलमयी इच्छा समझते ही अनुकूलता का प्रतीत होना।(४ ) किसी भी पदार्थ की चाह न रखना।

ये भाव जितने २ बढ़ें, साधक उतना ही परमात्मा की शरण में अग्रसर हो रहा है, ऐसा समझना चाहिये।

---

# भक्त की भावना

( ले० श्री हरिकृष्णदास जी गुप्त )

भक्त की भावना ! अहा ! इन तीन शब्दों में कितना सौन्दर्य समाया हुआ है। कितनी मिठास घुली हुई है। इन तीन शब्दों में, हां ! इन तीन शब्दों में केवल इन तीन शब्दों में। अतुल आनंद कूट २ कर भरा हुआ है, अपार हर्ष हिलोरें ले रहा है, असीम प्रसन्नता लहरा रही है। संक्षेप में इन तीन शब्दों में इन तीन शब्दों के गागर में कभी न सूखने वाला सुख-सागर समाया हुआ है।

भक्त की भावना ! कितनी उच्च, कितनी पवित्र, कितनी महान् कितनी उदार, कितनी परहित-कारिणी, कितनी कल्याणमयी होती है क्या इसका अनुमान लगाया जा सकता है ? नहीं ! नहीं ! असंभव है ! किन्तु, हां! एक प्रकार से लगाया जा सकता है। वह किस तरह ? भक्त बनकर। भक्त की भावना का भली भाँति मान करने के लिये भक्त बनना परमावश्यक है।

भक्त की भावना में स्वार्थ का लेश मात्र भी नहीं होता ! वह तो सदैव परमार्थ के पालने में झूला करती है। उसमें स्वार्थ होता भी है तो इतनी उच्च श्रेणी का होता है कि परमार्थ भी उसे देख कर शीश झुका लेता है। भक्त का स्वार्थ विश्व का स्वार्थ होता है। भक्त की भावना अपने लिये नहीं विश्व के लिये, अखिल ब्रह्माण्ड के लिये होती है।

भक्त की भावना क्या नहीं कर सकती, उस में असीम शक्ति इठलाती फिरती है। उसमें प्रबल पराक्रम का समुद्र चंचल लहरों की क्रीड़ा अवलोकता है।

भक्त की भावना को असफल करना मनुष्यों की तो बात क्या, भगवान् के किये भी असंभव है बल्कि उन्हें तो उसे पूरी करने के लिये हंसते खेलते नंगे पांव दौड़ना पड़ता है।

खबरदार ! भक्त की भावना की राह में रोड़े अटकाने का भूल कर भी प्रयत्न न करना अन्यथा निराशा की चोट से छाती विदीर्ण हो जायेगी।

भक्त की भावना में सदैव सकल होने वाली

भक्त की भावना में अखिल विश्व का हिति निहित रहता है अतः जहां भक्त हों वहां दुःख, रोग, शोक, भय इत्यादि कैसे रह सकते हैं।

यदि विश्व अपना भला चाहता है तो भक्त उत्पन्न करे जिसकी भावना में सभी के लिये सच्चा सुख समाया रहता है।

मेरी यह सत्य पुकार क्या विश्व से कानों में पहुंच सकेगी।

# ईश्वर प्रार्थना

[ ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी ]

## नाराच छन्द

( १ )

जगत्पते ! प्रभो ! हमें सुबुद्धि दान दीजिये ।
कृपानिधे ! कृपानिधे ! विनीत भाव कीजिये ॥
कुनीति पंथ त्याग के सुनीति में चलाइये ।
असत्यसे विराग राग सत्य में कराइये ॥

( २ )

न मोह होय नारि का न लोभ होय धाम का ।
न नेह होय देह का न बोध क्रोध काम का ॥
न हर्ष होय लाभ में न द्वेष होय हानि से ।
अनित्य नित्य ज्ञान होय शास्त्र वेद वाणि से ॥

( ३ )

कुपंथ पंथ को तजैं सुसंत पंथ में रहैं ।
असंत पंथ से भगैं सुसंत पंथ में चलैं ॥
न होय शोक मोह तुच्छ विश्व से हमें कभी ।
असंख्य सृष्टियां हमें अनात्मरूप हों सभी ॥

( ४ )

न मैं रहूं न तू रहे अभिन्नता बनाइये ।
रहे न ध्यातृ ध्यान ध्येय भिन्नता छुड़ाइये ॥
मिटाय दीनता हमें अदीनता सिखाइये ।
प्रपंच से हमें हटाय वासना नशाइये ॥

( ५ )

न सृष्टि से कभी हमें सदोष भाव ही रहैं ।
न शत्रु भाव से रहैं न मित्रभाव ही गहैं ॥
अहं ममत्व हो कभी न भेद कार्य कर्म से ।
अलिप्त ही रहैं सदा समस्त द्वैत धर्म से ॥

( ६ )

न पुण्य पाप से कभी हमें न कोई लेश हो ।
सुमित्र से न प्रेम हो हमें न शत्रु क्लेश हो ।
अमान मान एक हों न चाह मान की रहे ।
न होय सुख में स्पृहा न दुःख भाव ही दहे ॥

( ७ )

रहें सदा हि आत्म लीन भिन्न भाव ना लहैं ।
सदा हि सत्य प्रेम हो असत्य चोट ना सहैं ॥
रहैं सदा हि मग्न होय भग्न होय अशांति का ।
न प्रेम हो जगत्पदार्थ माहिं कछु भाँति का ॥

( ८ )

मरे समस्त विश्व ही न भक्त आपका मरे ।
तुझे तजे वही गिरे, भजे तुझे वही तरे ॥
कृपा कटाक्ष कीजिये, अनन्य भक्ति दीजिये ।
छुड़ाय जन्म मृत्यु से, स्व आत्म निष्ठ कीजिये ॥

मत्स्यावतार　　कूर्मावतार　　वराहावतार

Murari Art Press, Delhi.

परशुरामावतार

कल्कि अवतार

# भगवत् के चौबीस अवतार

[ ले० श्री० पूज्य भोले बाबा जी अनूपशहर ]

जगदीश वृन्दावन विहारी। श्री राधारमण माधव मुरारी की एक प्रेमी भक्त इस प्रकार स्तुति करता है:-

हे श्रीजगदीश वृन्दावन विहारी! हे श्री राधारमण माधव मुरारी! हे श्रीगोविन्द, राधाकृष्ण, गोपाल! हे श्रीमदन-मोहन, घनश्याम नन्दलाल! हे श्री मुरली मनोहर, श्याम सुन्दर! हे श्री भगवान् गोपीनाथ, गिरिधर! हे श्रीयदुपति, हे श्री बांके बिहारी! हे चतुर्भुज, श्याम मूर्त्ति चक्रधारी! आप सर्व जगत् के आत्मा हैं, आप ही विधाता! दीनबन्धु, दीनदयाल आप हैं, आप ही हैं प्राणदाता! आप को वेदवेत्ता शुद्ध बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द स्वरूप कहते हैं। आप निर्विकार, निराकार, निराधार हैं फिर भी आप अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए अनेक रूपधारण करते और अनेक अवतार लेते हैं! माया से परे होकर भी आप मायाधीश हैं, लीला मात्र से जगत् की उत्पित्त स्थिति और लय करने वाले आप हैं। हे प्रभो! आप के चौबीस अवतारों को बारम्बार नमस्कार है, प्रथम आप के मीन अवतार को नमस्कार है, जो अवतार धारण कर राजा श्रुतदेव को आपने अपनी माया दिखलाई थी और धर्म का उपदेश दिया था। जिस धर्म पर आरूढ होकर आप के भक्त लोक परलोक दोनों में सुख भोगते हैं और अन्त में आप को प्राप्त होते हैं। (२) हे राधा रमण! आपके व्यास अवतार को दंडवत् है। यह अवतार धारण करके आप ने जगत् के उद्धार के लिये वेदों को विशेष रूप से प्रकाशित किया और ब्रह्मसूत्र, महाभारत, अठारह पुराण रच कर भागवत् धर्म की प्रवृत्ति की। (३) हे श्रीकृष्ण! आपके वाराह अवतार को नमस्कार है, जो अवतार आपने अपने धाम ब्रह्मपुरी में धारण किया था, पृथिवी को समुद्र में से निकाल कर लाये थे और हिरण्याक्ष का वध किया था। (४) हे यशोदानन्दन! आप के कपिलदेव अवतार को प्रणाम है, जिस अवतार को लेकर आप ने सांख्य शास्त्र का विचार करके उसका तत्त्व जगत् में फैलाया। (५) हे नन्ददुलारे! आप के दत्त अवतार को नमस्कार है! यह अवतार आप ने अत्रि ऋषीश्वर के घर अनुसूया के गर्भ से चित्रगिरि पर्वत पर धारण किया था और अलर्क प्रह्लाद आदि को भगवत् के स्वरूप का उपदेश किया था। (६) हे भक्तवत्सल! आप के यज्ञ अवतार को प्रणाम करता हूं, जिस अवतार द्वारा वैवस्वत आदि राजा लोग यज्ञ और धर्म का उपदेश पाकर संसार समुद्र से पार हुए हैं। (७) हे व्रजविहारी! आप के पृथु अवतार को नमन करता हूं, जिस अवतारसे

आपने अयोध्याजी में प्रकट होकर धर्म की नवीन मर्यादा बांधी और धरती को बराबर करके सब औषधियां निकाली ! (८) हे मधुसूदन ! आप के हंस अवतार को नमस्कार है, जिस रूप से ब्रह्मपुरी में प्रकट हो कर आप ने ब्रह्मा को उपदेश दिया था। (९) हे हृषीकेश ! आप के कमठ अवतार को प्रणाम करता हूं। समुद्र मथने के समय आप ने समुद्र में प्रकट होकर मंद्राचल पर्वत को अपनी पीठ पर धारण किया था और देवताओं के दुःख दूर किये। (१०) हे करुणानिधान ! आप के धन्वन्तर अवतार को प्रणाम है ! जगत् के उद्धार हेतु आप ने समुद्र में यह अवतार धारण करके फिर संसार में प्रकट हुए और चिकित्सा शास्त्र का प्रचार किया। (११) हे दामोदर ! आप के नृसिंह अवतार को प्रणाम करता हूं, जो अवतार आपने अपने परम भक्त प्रहाद के निमित्त मुलतान नगर में धारण करके हिरण्यकशिपु को परम धाम दिया। (१२) हे भाव प्रिय भगवत् ! आप के हयग्रीव अवतार को नमस्कार है, जो अवतार आप ने कामरू देश में देवताओं की सहायता और दुष्टों का नाश करने को धारण किया था। (१३) हे दीनानाथ ! आप के श्रीवामन अवतार को नमस्कार है ! यह अवतार आपने प्रयाग में देवताओं की सहायता के निमित्त लिया था और ब्रह्मचारी रूप से बलि के द्वार पर जाकर उस को छला था और पाताल में भेज दिया था ! (१४) हे जगत्पिता ! आप के परशुराम अवतार को दंडवत् है, जो अवतार आप ने धारण करके पृथ्वी का भार उतारने के लिये इक्कीस बार क्षत्रियों का वध किया और ब्राह्मणों को राज्य दिया। यह आपका अवतार जमीना ग्राम में वैसाख शुक्ला तृतीया को हुआ था। (१५) हे सनातन देव ! आप के सनत्कुमार अवतार को कोटानकोट दंडवत् है ! यह अवतार आपने ब्रह्मपुरी में धारण किया था। ब्रह्मज्ञान की विशेष प्रवृत्ति आपके इसी अवतार से हुई है (१६) हे गोविन्द ! आपके नारायण अवतार को वन्दना करता हूं, आपने इस अवतार को बदरिका श्रम में धारण करके तप और वैराग्य की प्रवृत्ति संसार में फैलाई ! (१७) हे दैत्य सूदन ! आपके बौद्ध अवतार को नमस्कार है ! यह अवतार गयाजी में आपने धारण किया था प्रथम किसी प्रयोजन से यज्ञादिक की निन्दा की और पश्चात् सब धर्मों को स्थापित किया। (१८) हे दीनानाथ ! आपके ऋषभ देव अवतार को साष्टांग दंडवत् करता हूं, जो अवतार आपने अयोध्या जी में धारण करके ज्ञान और वैराग्य की अंतिम दशा संसार में प्रकट की। (१९) हे पाप निसूदन ! आपके हरि अवतार को नमस्कार है। जो रूप धारण करके आपने ग्राह से गज की रक्षा की थी। गरुड़ को छोड़ कर वाहन बिना ही वैकुंठ से धाये थे और क्षण भर से भी पहिले अपने शरणागत की प्राण रक्षा के लिये पहुंच गये थे। (२०) हे अंतर्यामी ! आपके निष्कलंक कल्की अवतार को नमन करता हूं, जो अवतार आप कलियुग के अंत में संभल देश में धारण करेंगे और कलियुग का नाम तक मिटा कर पापों का पुंज संसार से उठा देंगे ! (२१) हे जगत्पते ! आप के मन्वन्तर अवतार की वन्दना करता हूं जो अवतार बिठूर में धारण करके आपने सब धर्मों का प्रकाश किया था (२२) हे घटपटवासी भगवान् ! आप के ध्रुव अवतार को वन्दना करता हूं, जो अवतार बिठूर में धारण करके आपने भगवद्भक्ति और शरणागति के स्वरूप को

जगत् में प्रकट किया था। (१३) हे देवदेव ! आपके रामावतार को दंडवत् करता हूं, जो अवतार जगत् के उद्धार के लिये अयोध्या में धारण करके रावण आदि राक्षसों को वध किया और धर्म की मर्यादा स्थापन करके परम पवित्र चरित्र जगत् में फैलाये (२४) हे माधव ! आपके श्री कृष्ण अवतार को प्रणाम करता हूं, जो अवतार आपने गोकुल में धारण करके ऐसे पवित्र चरित्र जगत् में विख्यात किये कि जिनके प्रभाव से महापापी और अपराधियों को भी ब्रह्मानन्द और परमपद की प्राप्ति अत्यंत ही सुगम होगई है, हे करुणासागर ! नट नागर ! आपके परम प्रेमी भक्तों का कथन है कि (१) आपके चरण कमलों की अंकुश रेखा का ध्यान करने से मन मतङ्ग गज के समान तुरत ही वश में आजाता है, (२) आपके चरण सरोजोंकी कुलिशरेखाका ध्यान करनेसे महाघोर पाप के पर्वत टूट कर रज समान हो उड़ जाते हैं, (३) आपके पद पद्मकी अम्बर रेखाका ध्यान करने से भक्त का हृदय शरद ऋतु के आकाश के समान निर्मल हो जाता है (४) आपके चरण सरोरुहों की कमल रेखा का ध्यान करने वाला कमल जल के समान संसार से निर्लेप रहता है, (५) आपके पद पंकजों की ध्वजा रेखा का ध्यान करने वाला लोक परलोक दोनों में कीर्ति पाता है, (६) आपके चरणारविन्दों की गोपद रेखा का ध्यान करने वाला गोपद के समान संसार समुद्र से तर जाता है, (७) आपके चरण कमलों की शंख रेखा का ध्यान करने वाला सब विद्याओं का ज्ञाता हो जाता है, (८) आपके चरण कमलों की चक्र रेखा का जो ध्यान करता है, वह तुरत ही संसार चक्र से मुक्त होकर निर्भय हो जाता है (९) आपके पद पंकजों की स्वस्तिक रेखा का ध्यान करने वाला परम अविचल शांति को प्राप्त होता है, (१०) आपके पद पद्म की जम्बू फल रेखा का जो ध्यान करता है, वह जम्बू द्वीप में जन्म लेकर आपका अनन्य भक्त होता है, (११) आपके चरण सरोरुहों की अर्धचन्द्र रेखा का ध्यान करने वाला शिव समान आप को प्रिय होता है, (१२) आपके चरण कमलों की षट्कोण रेखा का ध्यान करने वाला छः धर्मियों से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है, (१३) आपके चरणारविन्दों की मीन रेखा का ध्यान करने वाला मीन जल के समान अक्षय आनन्द समुद्र में मग्न रहता है, (१४) आपके चरण कमलों की बिन्दु रेखा का ध्यान करने वाला बिन्दु से सिंधु रूप हो जाता है, (१५) आपके पद पंकजों की ऊर्ध्व रेखा का जो ध्यान धरता है, वह ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है, (१६) आप के चरण कमलों की पूर्णचन्द्र रेखा का ध्यान करने वाला पूर्णचन्द्र के समान शोभा पाता है, (१७) आप के चरणाम्बुजों की गदा रेखा का ध्यान करने वाला संसार विजयी होता है, (१८) आप के चरणारविन्दों की इन्द्र धनुष रेखा का ध्यान करने वाला सब देवताओं का अधिपति होता है, (१९) आप के चरण सरसीरुहों की अष्टकोण रेखा के ध्यान करने वाले को अष्टांग योग की सिद्धि होती है, (२०) आप के चरणाम्भोरुहों की छत्र चमर रेखा का ध्यान करने वाला छत्रपति होता है, (२१) आपके चरण कमलों की रथ रेखा का ध्यान करने वाला माया का रथ चलाने में कुशल और अपनी जाति में पूज्य और माननीय होता है, (२२) आपके चरण कमलों की मुकुट रेखा का ध्यान करने वाला अपने साथियों में मुकुटमणि होता है, (२३) आपके चरणाम्बुजों की त्रिकोण

रेखा का ध्यान करने वाला आपके चरणों में लीन होने से तीनों गुणों से पार हो जाता है, और (२४) आप के चरण पंकेरुहों की साधु हृद रेखा का ध्यान करने वाला सब पापों से मुक्त होकर परम साधु हो जाता है इसलिये हे पतित पावन ! भक्तवत्सल ! करुणानिधान ! यदि आप मेरे पापों की ओर दृष्टि करेंगे तब तो करोड़ों जन्मों तक मेरा उद्धार होना कठिन ही नहीं किंतु असम्भव सा है और यदि आप अपने प्रणतारतहर विरद की याद करके क्षण भर इस पापी की ओर देख लेंगे तो करोड़ों जन्म के पाप दूर होकर मेरा बेड़ा पार होजायगा। हे करुणा-सागर करुणा करके यह वरदान दीजिये कि नीचेके पदों का पाठ करते २ अपनी पराई सब की सुध बिसार कर मन आप के चरण कमलों में लीन हो जाय !

१

मायापति माया रहित माया अपरम्पार ।
निज भक्तन के श्रेय हित, लीन्ह मीन अवतार ॥
लीन्ह मीन अवतार, धर्म का मार्ग दिखाया ।
श्रमा भूप श्रुत देव, कीन्ह पीछे निर्मापा ॥
भोला ! भज जगदीश, छांड छल होय अमाया ।
जाकी कृपा कटाक्ष, लेश नहिं व्यापे माया ॥

२

विद्या सागर ज्ञान निधि, बन्दों श्रीहरि व्यास ।
वेद किये एकत्र सब, रचा महा इतिहास ॥
रचा महा इतिहास, ब्रह्म दर्शन रचि दीन्हा ।
तत्व अगम अद्वैत, सुगम अति सीधा कीन्हा ॥
रचे पुराण अठार, पढत मिटताप अविद्या ।
भोला हो हुशियार, जान जावे सब विद्या ॥

३

काया से मन वचन से, बन्दों अद्भुत रूप ।
भक्तन की टारन विपति लीला कीन्ह अनूप ॥
लीला कीन्ह अनूप, रूप बाराह बनाये ।
सागर में से काढि, भूमि भक्तन हित लाये ॥
हिरण्याक्ष कूं मारि, धाम अपने पहुंचाया ।
भोला ! भज घन श्याम, तुच्छ तज माया काया ॥

४

ज्ञानी तपसी कपिल मुनि, रचा विलक्षण सांख्य
शिर धारों पदपद्म रज, खोली सबकी आंख ॥
खोली सबकी आंख, तत्व परमार्थ लखाया ।
माता कूं समुझाय, शोक भय मोह मिटाया ॥
भोला ! तज अभिमान, ईश भज होय अमानी ।
भजे ईश तजि मान, चतुर नर सोही ज्ञानी ॥

५

अनुसूया के गर्भ से, जन्मे दत्तात्रेय ।
प्रभु अलर्क प्रह्लाद का, कीन्हा अंतिम श्रेय ॥
कीन्हा अंतिम श्रेय, ज्ञान विज्ञान सिखाया ।
शंका करि निर्मूल, तत्व परमार्थ लखाया ॥
भोला ! दत्तात्रेय, चरित पढि त्यागि असूया ।
भूप अत्रिप्रिय तात, मातु रानी अनुसूया ॥

६

वैवस्वत राजादि हित, लीन्ह यज्ञ अवतार ।
यज्ञ धर्म की विधि बता, कीन्हा सर्वोद्धार ॥
कीन्हा सर्वोद्धार, पार भव सागर कीन्हे ।
जन्म मरण भय मेटि, नित्य अक्षय सुख दीन्हे ॥
भोला ! हो निष्काम, धर्म चरि भजरे भगवत ।
भये यज्ञ भगवान भूप तारे वैवस्वत ॥

७

भगवत् होके भूप पृथु, कीन्हा जग उपकार ।
मर्यादा बांधी नई, लिया खैंच महिसार ॥
लिया खैंच महिसार, काढिली औषधि सारी ।
हुये विश्व विख्यात, कीर्ति जग फैली भारी ॥
भोला ! धरि हरि ध्यान, यही मर्यादा शाश्वत ।
मर्यादा मत त्यागि, रात दिन भज श्री भगवत् ॥

८

सच्चा झंठा धारने, करने जग कल्याण ।
ब्रह्मपुरी के मांहि प्रभु, बने हंस भगवान ॥
बने हंस भगवान, सत्य मिथ्या बतलाया ।
करि विधि कूं उपदेश, सार निस्सार लखाया ॥
भोला ! भज भगवान, शांति की यदि है इच्छा ।
झंठा जग निस्सार, भजन भगवत का सच्चा ॥

९

सागर मथने के समय, भये कमठ विश्वेश ।
मन्द्राचल धारण किया, श्रम माना नहिं लेश ॥
श्रम माना नहिं लेश, देव ऋषिमुनि हित कीन्हा ।
चौदह रत्न निकारि, दुःख सबका हरि लीन्हा ॥
भोला ! भजें रमेश, प्राज्ञ वे ही हैं नागर ।
जाने सार असार पार होवें भव सागर ॥

१०

धन्वन्तर अवतार धरि किया जगत उद्धार ।
सिंधु मांहि ले जन्म प्रभु, पुनि आये संसार ॥
पुनि आये संसार, शास्त्र वैदिक सिखलाया ।
किया परम उपकार, भोग में रोग दिखाया ।
भोला ! तज दे भोग ध्याव विश्वेश निरंतर ।
महा विकट भव रोग, दीन्ह शिक्षा धन्वन्तर ॥

११

मारन हित प्रह्लाद के, लीन्ही खड्ग मुरारि ।
खंभ मांहि से तुरत ही, प्रकट भये असुरारि ॥
प्रकट भये असुरारि, रूप अद्भुत धरि लीन्हा ।
नखन चीर के पेट, प्राण राक्षस हरि लीन्हा ॥
भेजा ताहि स्वधाम, भक्त रक्षक बिनु कारण ।
भोला ! भज नरसिंह, मोक्ष प्रद जिनका मारन ॥

१२

भक्तन हित हयग्रीव बन, एक बार यदुनाथ ।
देश कामरू हो प्रकट, देवन किया सनाथ ॥
देवन किया सनाथ, दुष्ट सब मारि गिराये ।
करि उनका संहार, धाम अपने पहुंचाये ॥
भोला ! क्षण मति भूल, नित्य भज देव चिरंतन ।
दुष्टन करते मुक्त, प्राण सम पालत भक्तन ॥

१३

वामन जी सुर काज हित, अग जग के कर्तार ।
भिक्षा मांगी बटुक बन, बलि राजा के द्वार ॥
बलि राजा के द्वार, बने याचक असुरारी ।
भेजा ताहि पताल, विपति देवन की टारी ॥
बैठे ताके द्वार दर्श देते हैं हर क्षण ।
भोला ! तज अभिमान, ध्यान धरि श्रीहरि वामन॥

१४

पापी राजन बध करण, परशुराम अवतार ।
लीन्हे भगवत् बार बहु, किया भूप संहार ॥
किया भूप संहार, राज्य महि देवन दीन्हा ।
पृथिवी भार उतार, गर्व सबका हरि लीन्हा ॥
भोला ! मत करि गर्व, नित्य हरि नाम सुधापी ।
होय जपत हरि नाम, शुद्ध पापी से पापी ॥

१५

बालक सनत्कुमार बनि, ब्रह्मपुरी विश्वेश ।
किया लोक कल्याण हित, ब्रह्म ज्ञान उपदेश ॥
ब्रह्म ज्ञान उपदेश, मोक्ष का पंथ दिखाया ।
नारदादि का शोक, मोह भव भेद मिटाया ॥
भोला ! तजि अविवेक, कृष्ण भजि निज जन पालक
राग द्वेष दे त्यागि, विचर जग जैसे बालक ॥

१६

नारायण वन्दन करूं, तन, मन, वच, अनुराग ।
बदरिक आश्रम मांहि जिन, तप कीन्हा सुख त्याग
तप कीन्हा सुख त्याग, जगत दुख हर दिखलाया ॥
ज्ञान भक्ति वैराग्य, मार्ग सुख कर सिखलाया ।
भोला ! सहित विचार, नित्य हो ईश परायण ।
तज दे नर की आश, रात दिन भज नारायण ॥

१७

करुणा कर भगवान ने, लिया बौद्ध अवतार ।
मगध देश के मांहि प्रभु, कीन्हा धर्म प्रचार ॥
कीन्हा धर्म प्रचार, यज्ञ हिंसा छुड़वाये ।
पूर्ण अहिंसा धर्म, देश भर में फैलाये ॥
भोला ! हिंसा त्यागि, दुखी काहूं कूं मत कर ।
निज पर का हित चाह, दीन्ह शिक्षा करुणा कर॥

१८

पावन नगरी अवध में, ऋषभ देव भगवन्त ।
जन्मे सारे जगत में, फैली कीर्ति अनन्त ॥
फैली कीर्ति अनन्त, ज्ञान वैराग्य सिखाया ।
अंतिम सांचा त्याग, आप करके दिखलाया ॥
भोला ! तज जग राग, राग है दुखद अपावन ।
भज निश दिन वैराग्य, त्याग है सुखकर पावन ।

१९

शरणागत की टेर सुनि, गरुड़ध्वज भगवान ।
गरुड़ विना गजराज के, आप बचाये प्राण ॥
आप बचाये प्राण, ग्राह पर चक्र चलाया ।
किया तुरत विनु प्राण, पुनः निज धाम पठाया ॥
भोला ! जा अब जाग, मोह निद्रा तज सो मत ।
ले जरा से मुख मोड़, शीघ्र हो हरि शरणागत ॥

२०

कल्की कलियुग अन्त में, संभल देश मंझार ।
निष्कलंक जग श्रेय हित, लेंगे प्रभु अवतार ॥
लेंगे प्रभु अवतार, नाम कलियुग खो देंगे ।
दें युग सत्य बनाय, पाप पुंजन धो देंगे ॥
कल्ल न करि करि आज, खबर नाहीं है कल की ।
भोला! तजि सब काम, नाम जप निश दिन कल्की ॥

२१

मन्वन्तर अवतार प्रभु, लिया विदुर सुदेश ।
विविध भांति से धर्म का, कीन्हा हित उपदेश ॥
कीन्हा हित उपदेश, सत्य मिथ्या दिखलाये ।
जगत् बताय असत्य, तत्व सच्चा सिखलाये ॥
भोला ! त्यागि अधर्म, पाल सद्धर्म निरंतर ।
आकर शिष्टाचार, दीन्ह शिक्षा मन्वन्तर ॥

२२

तारक जग हारक विपति, लीन्हा ध्रुव अवतार ।
उपमाता की सीख सुनि, त्याग दिया संसार ॥
त्याग दिया संसार, ध्यान हरि पद का कीन्हे ।
तन मन प्रभु पर वारि, शरण भगवत की लीन्हे॥
भोला ! हो निष्काम, काम ही है जग कारक ।
क्षण क्षण में भजि राम, ताप हारक भव तारक ॥

२३

दशरथ सुत भगवन् भये, कीन्ह जगत उद्धार।
रावणादि राक्षस हने, हरा भूमि का भार॥
हरा भूमि का भार, धर्म मर्यादा स्थापी।
कीन्हे चरित पवित्र, सुनत सुधरत हैं पापी॥
भोला! ले विश्राम, भटकता मत फिर इत उत।
छोड़ सभी की आश, कर्म मन भज दशरथ सुत॥

२४

यदुपति होके जगत्पति, जन्मे गोकुल आय।
अद्भुत कीन्हे चरित प्रभु, सुनत भेद भय जाय॥
सुनत भेद भय जाय, राग नहि द्वेष सतावे।
लौट नहीं जग आय, विष्णु पद अक्षय पावे॥
भोला! भज ले नित्य, विश्वपतिसुरपति जगपति।
मायापति, सुखधाम, रमापति, स्वामी यदुपति॥

दोः-दश चौदह अवतार की कथा सुमंगल मूल।
पढ़ें सुने भोला तिन्हें भगवन् हों अनुकूल॥

---

# ईश्वर स्तुति

## भुजंगगी छन्द।

[छे० श्री० स्वामी आत्मानन्द जी]

नमस्ते नमस्ते सदानंद राशी।
तुही सर्व संसार का है प्रकाशी॥
नहीं जन्म पावे नहीं मृत्यु पाता।
सभी का नियंता सबों को घुमाता॥१

तुही विष्णु हो विश्व को पालता है॥
तुही रुद्र हो सर्व को घालता है॥
तुही होय ब्रह्मा जगत को बनाता।
तुही काल होके पुनः ग्रास जाता॥२॥

न आता न जाता नहीं दीखता है।
तुझे जान होता स्वयं लापता है॥
सबों में बसा है सभी से निपारा।
तुही सर्व संसार का एक प्यारा॥ २॥

चिदानंद! तेरा नहीं भेद पाते।
तुझे जो भजे हैं तुही होय जाते॥
तुही एक होके अनेकों दिखाया।
यथा हो जलों में घनी सूर्य छाया॥४॥

शिवानंद तू ही परानंद तू ही।
घनानंद तू अल्प आनंद तू ही॥
सभी तोहि अल्पज्ञ सर्वज्ञ गाते।
तुझे जानते जो वही भेद पाते॥ ५॥

तुही कृष्ण हो कंस चाणूर मारा।
तुही राम लंकेश को मारि तारा॥
तुही नेत्र से रूप को देखता है।
तुही नाक से गंध को सूंघता है॥ ६॥

तुही जीभ से अन्न का स्वाद लेता।
तुही सर्व साक्षी तुही वेद वेत्ता॥
महाराज तू है प्रजा भी तुही है।
जड़ों में तुही चेतनों में तुही है॥ ७॥

नहीं विश्व तेरे सिवा अन्य कोई।
तुही ज्ञानियों का निजानंद होई॥
तुही आत्म आनंद का इष्ट सांचा।
नमस्ते नमस्ते मनो कर्म वाचा॥ ८॥

---

# भगवत् कृपा

[ ले० एक जिज्ञासु ]

आजकल हम लोग भगवत् कृपा का यथार्थ स्वरूप जानने में बड़ी भूल करते हैं। इसीलिये जरा जरासी बातों पर हम भगवत को कोसने लगते हैं। भगवत् कृपा तो प्रत्येक जीव पर सर्व काल में समान ही है लेकिन जो उस का असली स्वरूप जानता है वही उससे वास्तविक लाभ उठाता है। सरकार के कानून सब के लिये समान हैं लेकिन उन कानूनों को अच्छी तरह समझने वाला हो उनसे ठीक लाभ उठा सकता है। शस्त्र स्वरक्षा के लिये सबके वास्ते समान होने पर भी उसका यथार्थ उपयोग जानने वाला ही उस से अपनी रक्षा कर सकता है नहीं तो कभी कभी उल्टा उससे अपना ही अनिष्ट होने की सम्भावना रहती है। सूर्य का ताप और वृष्टि सब के लिये समान होने पर भी उस का यथार्थ उपयोग जानने वाला और अपने कर्तव्य पर सर्वदा तत्पर रहने वाला चतुर कृषक ही उस से वास्तविक लाभ उठाने में समर्थ होता है। इसी तरह भगवत् कृपा की अनवरत वृष्टि से उसका यथार्थ मर्म समझने वाले कोई २ चतुर भक्त ही पूर्णरूपेण लाभ उठा सकते हैं।

संसार में हम लोग केवल स्त्री पुत्र धन-सम्पति और विषय भोग की सामग्रियों को ही ईश्वर की कृपा समझते हैं। लेकिन ईश्वर कृपा का वास्तविक रूप समझ लेना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। ईश्वर जो कुछ भी करते हैं हमारे भले के लिये ही करते हैं। यह बात अवश्य है कि कभी २ वह व्यवहार अति कठिन होने से अज्ञों की दृष्टि में असह्य प्रतीत होते हैं लेकिन संसारियों की दृष्टि में कष्ट भोगते प्रतीत होते हुये भी वास्तविक मर्म जानने वालों को उस में जो आनन्द प्रतीत होता है वह अवर्णनीय है। जब हमारी किसी तरफ कुप्रवृत्ति होती है और उसमें किसी प्रकार की बाधा होती है तब हम ईश्वर को अपने प्रतिकूल बताते हैं। बालक किसी बुरी तरफ प्रवृत्त हो और पिता उसको उधर से हटाने के लिये प्रयत्न करे तो क्या उसमें पिता की कृपा नहीं है? क्या इसमें बालक का अहित है? पशु अपने मार्ग को छोड़ किसी दूसरी तरफ जाने लगे तो क्या उसके संरक्षक का यह कर्तव्य नहीं है कि आवश्यकता पड़े तो डंडे की चोट से भी उस मार्ग से हटा कर उसको अपने ठीक मार्ग पर चलने में प्रवृत्त करे? बालक और पशु अपने हितकर्ता पिता और संरक्षक को अज्ञानता वश बुरा समझ दुःखी होते हैं बाजारू दवा बेचने वालों से पैसा देकर अपनी इच्छानुसार विष भी मोल लिया जा सकता है लेकिन रोगी का वास्तविक हित समझने वाला सद्वैद्य उसकी इच्छा की परवाह न कर अवस्थानुकूल ही व्यवस्था करता है। लाख उपाय करने पर भी वह उसे कभी कुपथ्य ग्रहण नहीं करने देता। यद्यपि रोगी मूर्खता वश उसमें अपना अहित समझता है लेकिन आरोग्य होने पर उसे पता लगता है कि उसका वास्तविक हित किस बात में था। बालक के फोड़ा होने पर उसका वास्तविक हित चाहने वाली माता शीघ्रही कष्ट

मुक्त करने के लिये बालक की इच्छा की परवाह न कर उसे फोड़े का विष निकलवाने के लिये अच्छे चिकित्सक के पास ले जाकर शस्त्र द्वारा उसे चिरवाती है। यद्यपि विष निकालते समय बालक को अत्यन्त वेदना होने के कारण उस समय वह अपने हित कर्त्ताओं को बुरा भला कहने लगता है लेकिन वे उसकी उस क्षणिक अत्यन्त पीड़ा की उसके पीछे होने वाले सुख को विचार कर जरा भी परवाह नहीं करते जैसे श्री गोसांईजी महाराज कहते हैं:-

यद्पि प्रथम दुःख पावे, रोवे बाल अधीर।
व्याधि नाश हित जननी, गने सो शिशु पीर॥
तिमि रघुपति निज दास कर, हरहिं मान हित लाग।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि, कस न भजहु भ्रम त्याग॥

इसी तरह भगवान् भी अपने भक्त के हित के लिये ही उसके मन के प्रतिकूल होने पर भी ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे नारद जी के हृदय में काम पर विजय प्राप्त होने पर सब अनर्थों का मूल अभिमान का उदय हुआ देख उसका नाश करने के लिये माया रची गई थी। नारद जी के विवाह करने की इच्छा होने से सुन्दर रूप मांगने पर आप उनके हित करने की ही प्रतिज्ञा करते हैं, सुन्दर रूप देने की नहीं:-

जेहि विधि होइहिं परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सो हम करब न आन कछु, वचन न मृषा हमार॥

वे तो माया वश अपना हित सुन्दर रूप में ही समझते थे लेकिन भगवान् को तो इस बात की चिन्ता थी कि हित किस बात में है। इसलिये:-

मुनि हित कारण कृपा निधाना। दीन्ह कुरूप न जाय बखाना
मर्कट बदन भयंकर देही। ... ... ... ... ...

जब नारदजी को यह हाल मालुम हुआ तब अपने मनोरथ में विघ्न हुवा देख क्रोधित हो भगवान् के पास जा उन्हें तुरन्त शाप देदिया।

शाप शीस धरि हर्षि हिय, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
निज माया की प्रबलता, करषि कृपानिधि लीन्ह॥

जब माया का जाल समेट लिया गया तब तो नारदजी की भी आंखे खुल गई और अपने हित कर्ता को शाप दिया जान बड़े दुःखित हुये लेकिन अब उपाय ही क्या था भक्त के वचन तो भगवत् अपने वचन से भी बढ़ कर मानते हैं। भक्त के लिये उन्हें अपनी मान मर्य्यादा ताक पर रखने में संकोच थोड़े ही है। किसी प्रकार भक्त का हित होना चाहिए।

भगवान् का ऐसा कठिन व्यवहार समझ कर हमें घबराना नहीं चाहिये सर्वदा ऐसा ही व्यवहार होता हो यह नियम नहीं है। यहां तो अवस्थानुसार व्यवस्था होती है। किसी को कड़वी ओषध दी जाती है तो किसी को मीठी। इसी तरह उनका व्यवहार भी कभी " वज्रादपि कठोराणि " होता है तो कभी " मृदुनि कुसुमादपि " मतलब यह है कि जिस बात में हमारा हित होता है वैसी ही व्यवस्था की जाती है फिर चाहे वह हमारे मन के अनुकूल हो या प्रतिकूल। जैसे श्री मद्भागवत में राजा चित्र केतु का दृष्टान्त मिलता है। उसको पहिले पुत्र दे पीछे उसका हरण कर उसे पुत्र जनित कष्ट दिखला कर यथार्थ मार्ग पर लगाया। इसी तरह ध्रुवजी को राज्य सम्पत्ति दी गई। जिसका जिस तरह हित होने वाला होता है उसी तरह उसके साथ व्यवहार किया जाता है।

ऊपर पिता पुत्र और संरक्षक पशु का दृष्टान्त दिया गया है वह भी यहां पूर्ण रूप से नहीं लगता।

संसारी जनों के लिये अपना अहित करके दूसरे का हित करना बड़ाही कठिन कार्य है जैसे कोई पशु रेल की लाइन पर स्वच्छन्द विचरता हो और उस समय रेल उसके निकट आजाय उस समय अपने प्राण संकट में डाल कर उसको बचाने के लिये वहां से हटाने को कदाचित् ही कोई जाय। लेकिन यहां ऐसा नहीं है। अपने ऊपर चाहे कितनी ही विपत्तियें आजायं परन्तु भगवान् अपने भक्त का अहित नहीं होने देते। जैसे ऊपर नारदजी के दृष्टान्त से स्पष्ट है। उन का शाप स्वयं तो सहर्ष अंगीकार कर लिया लेकिन उनका अहित न होने दिया।

इस प्रकार भगवत् कृपा का यथार्थ स्वरूप जानना बड़ा ही कठिन है। जो भक्त जानते हैं उन्हें फिर कोई कष्ट नहीं होता। भगवत् के द्वारा किसी को कष्ट हो ही कैसे सकता है। वे तो "सुहृदं सर्व-भूतानाम्" हैं। लेकिन जरूरत है उनको सुहृद समझने की। पारस को पारस जानने वालाही उससे समुचित लाभ उठा सकता है, नहीं तो औरों के लिये वह भी साधारण पत्थर ही है। स्त्री पुत्र धन सम्पत्ति मान मर्यादा आदि संसारी पदार्थों के मिलने और नाश होने में हर्ष शोक कर अपने सुहृद ईश्वर का अपमान करना महान् मूर्खता है।

अब इस विषय पर भगवान् और उनके भक्त की वाणी भी सुन लीजिये भगवान् ने वामन अवतार धारण कर जब राजा बलिको बांधा था उस समय उसके पितामह परम भक्त प्रहाद जी कहते हैं:-

त्वयैव दत्तं पदमैन्द्रमूर्जितं हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम्।
मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात्

इस बलि राजा को समृद्धि युक्त इन्द्र पद जो आपने दिया था वह आज पुनः ले लिया, यह बहुत अच्छा किया और लक्ष्मी रूप महामोह में से इस मेरे पौत्र को छुड़ाया इससे मैं मानता हूं कि यह आपने इस पर बड़ा अनुग्रह किया।

इसके उपरान्त श्री भगवान् कहते हैं।

ब्रह्मन्यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम्।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते॥
यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः।
नाना योनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत्॥
जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः।
यद्यस्य न भवेत्स्तंभस्तत्रायं मदनुग्रहः॥
मानस्तंभनिमित्तानां जन्मादीनां समंततः।
सर्वश्रेयः प्रतीपानां हतं मुह्येन्न मत्परः॥

हे ब्रह्मन्! मैं जिस पर अनुग्रह करता हूं उसके जो धन का मद हो तो उसका धन हर लेता हूं, क्योंकि धन के मद से अकड़ा हुआ पुरुष दूसरे लोगों को और मेरी भी अवज्ञा करता है। अपने कर्मों से अनेक योनियों में भटकता हुआ यह परतन्त्र जीव किसी समय मनुष्य देह पाता है। सो इस मनुष्य देह में जन्म कर्म अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन आदि का जो अभिमान न होवे तो यह मेरा अनुग्रह समझना चाहिये। जो मेरा परम भक्त है वह अभि-मान अकड़ने के कारण भूत और सर्व कल्याण के शत्रु रूप पूर्वोक्त धन आदि अपने पास हो तो भी उनसे मोहित नहीं होता। ऐसे भक्त को मैं मेरी इच्छा से सम्पदा भी देता हूं और जो अभक्त है उसे धन आदि से मोह हो जाता है इसलिये उस पर धन हर लेने रूपी अनुग्रह करता हूं।

---

# भगवान् क्या हैं

[ले० श्री० स्वामी चिदात्मानन्दजी]

भगवान् क्या हैं ? वही जानें। यह प्रश्न सभी के मन में उठा करता है और सब ही अपनी२ योग्यतानुसार इसका समाधान भी किया करते हैं। प्रत्येक मत में अनेक शास्त्र और ग्रन्थ इस विषय पर रचे गये हैं और सब ही ने भगवान् के वास्तविक स्वरूप की व्याख्या की है। परन्तु यह केवल बुद्धि का विषय नहीं है यह अनुभव सिद्ध वस्तु है। बुद्धि की सहायता अवश्य लेनी होती है परन्तु कुछ हद तक उसका उपयोग किया जा सक्ता है, उसके परे आत्मा को ही उस अगाध अनिर्वचनीय सागर में मज्जन करना होता है। अल्पज्ञ जीव उस अचिन्त्य अनन्त वस्तु ब्रह्म को जानने में नितान्त अशक्य है। यद्यपि जीव उस अनन्त परमेश्वर का एक अंश है परन्तु उपाधिपाश बद्ध हो जाने के कारण अपने वास्तविक स्वरूप को भूल नाना जन्म मरण के भंवर में गोते खाता फिरता है। इस असह्य वेदना की ठोकरों से ऊब कर जब कभी थोड़ी देर के लिये सावधानी होती है तो इस गोरखधन्धे से निकलने की चेष्टा करता है। बद्ध जीव का पाश मुक्त होने की चेष्टा ही उसे धीरे २ इस जाल से निकाल सक्ती है। जितना उत्कट और प्रबल उद्योग होगा उतने ही शीघ्र बन्धन क्षीण होते जायें। पुरुषार्थ चाहिये और मुक्त होने की तीव्र इच्छा चाहिये। प्रारब्ध पर भरोसा रखने वालोंसे कभी कुछ नहीं हुवाकरता। उद्देश्य पारमार्थि हो वा ऐहलौकिक, सबही प्रकार की सफलता परम उद्योग और एकान्त पुरुषार्थ से ही हुवा करती है। नाना वासना और अनेक विषयेच्छा की उपाधियों से बंधे हुवे जीव की मुक्त होने की तीव्र इच्छा उसे शुद्ध बनाने में परमोपयोगी होती है और यही धर्म मार्ग की पहिली मंजिल है जितना वह एक चित्त होकर बढ़ता जाता है उतना ही वह अपने ध्येय के निकट पहुंचता जाता है। यहां तक कि इस उद्योग के कारण उसकी तुच्छ विषयों की लालसा रूपी उपाधि एक दम नष्ट हो जाती है, वासना रूपी जाल टूट जाता है, अज्ञान का अन्धकार लुप्त हो जाता है तब वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहिचान कर ब्रह्म में तन्मय हो जाता है। नमक की पुतली समुद्र का थाह पानेको उसमें घुसी, परन्तु खोज करते २ आपही समुद्र में घुल गई और एक हो गई इसीलिये 'श्रुति' कहती है कि "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" अर्थात् ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। अपने स्वरूप को पहिचानते ही भेदजाता रहता है और 'अहं ब्रह्मास्मि' का अनुभव होता है। सिंह शावक भूलसे बकरियों के झुंडमें आ मिला। बकरियों की तरह वह भी 'मैं मैं' करने लगा और सिंहादि बलिष्ठ जीवों की गरज के डर से उनके साथ इधर उधर भागने लगा। एक सिंह उसकी यह करुणा जनक दशा देख उसे बकरियों में से उठा ले गया और एक जलाशय के पास खड़ा करके कहा कि "देख अपने स्वरूप को, मुझ में तुझ में भेद नहीं" तू सिंह है बकरियों की तरह

क्यों 'मैं मैं' करता फिरता है"। इतना दिखाना था कि उसे अपने स्वरूप और शक्ति का बोध हो गया और निर्भयता से विचरने लगा। भगवत् कृपा से अथवा गुरु कृपा से जब जीव को अपने स्वरूप का बोध हो जाता है तब ही पाश मुक्त होकर "सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचिन' की अनुभूति होती है। यह भी स्मरण रखने योग्य है कि बिना अपनी कृपा हुवे भगवत् कृपा पाना असंभव है। जैसे कहा करते हैं कि यदि तुम भगवान् की ओर एक पग चलते हो तो भगवान् तुम्हारी ओर दस पग रखते हैं।

ऊपर वर्णन किये गये विचारों के आधार पर लेख के आरंभ में इसी लिये कहा गया है कि भगवान् क्या हैं ? वही जाने। बुद्धि बिचारीकी क्या सामर्थ्य कि उसे जान सके। किसी वस्तु का जानना केवल बुद्धि का ही कर्म है और वह भी अपने से भिन्न वस्तु को ही जान सक्ती है। परन्तु जिस की शक्ति से वह काम करती है उसे कैसे जाने। आंख अपने आप को नहीं देख सक्ती, दूसरी वस्तुवों को ही देखा करती है। इसलिये बुद्धि बहुत क्षुद्र वस्तु है वह अनन्त ब्रह्म की जिज्ञासा करते २ थक कर जब तक शान्त नहीं हो जाती तब तक अपने में उस अचिन्त्य भगवान् का प्रतिबिंब नहीं पा सक्ती। चंचल और मैले जल में सूर्यका प्रतिबिंब स्पष्ट नहीं दीख पड़ता, ऐसे ही बुद्धि के सात्विक हुवे बिना, वरन गुणातीत हुवे बिना, ब्रह्म साक्षात्कार असंभव है। कल्याण मार्ग के पथिकों को यह न समझ बैठना चाहिये कि भगवान् की दी हुई बुद्धि निरर्थक है। वृथा नहीं है वरन परमेश्वर की सृष्टि में बुद्धि सर्वोत्तम उपहार है इसी से मनुष्य जगत के सब जीवों में श्रेष्ठ माना जाता है। इस का यथा योग्य व्यवहार परम कल्याण की उपलब्धि के लिये परमावश्यक है। इस के सहारे से परम पिता परमेश्वर के वैकुंठ धाम के द्वार तक पहुंचना संभव होजाता है। यह सत्य है कि बुद्धिद्वार तक ही लेजा सक्ती है, द्वार के भीतर घुसने की इस की सामर्थ्य नहीं। वहां जीवात्मा को स्वयं अकेला जाना होता है।। सम्राट् के दरबार में जाने के लिये राजे महाराजे, नवाब लाट साहब, अमीर वज़ीर और सेठ साहूकार अपने २ वाहनों पर चढ़ कर जाते हैं। कोई मोटर में कोई गाड़ी में कोई घोड़े पर, सब ही अपनी २ हैसियत के अनुसार सवारी का उपयोग करते हैं। सवारी चाहे कितनी ही मूल्यवान वा बेगवान हो परन्तु उसे फाटक तक ही ले जाया जा सक्ता है दरबार में तो स्वयं अकेला ही जाना होता है। सवारी न होने से भी काम नहीं बनता, क्योंकि नियत समय पर न पहुंचने से वापिस आना पड़ता है! इसी प्रकार विश्वनियन्ता विभु सच्चिदानन्द प्रभु के दरबार में जाने के लिये जीवात्मा को बुद्धि रूपी वाहन की परमावश्यक्ता है, बुद्धि उनके परम धाम को दिखा कर ठहर जाती है आगे बढ़ने की उस में शक्ति नहीं। परन्तु आत्मा वहां जाकर परमानन्द का भागी बनता है। वैकुंठ धाम में पहुंच कर जीव की सकल उपाधियें नष्ट होने से परमात्मा के साथ उस का मेल हो जाता है तब वह अपने वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्द का अनुभव करता है। यही लेख के आरंभ के वाक्यों का सार है कि भगवान् को भगवान् ही जानते हैं अल्पज्ञता की उपाधि के नष्ट हुवे बिना आत्मानुभव असंभव है।

सच तो यही है कि जब तक बुद्धिपरमात्मा की माया का पार पाने के लिये दौड़ते २ थक कर क्लान्त नहीं होती और शास्त्र तथा गुरु वाक्य पर

पूर्ण विश्वास कर उन्हीं के आधार पर निर्भर हो निश्चेष्ट नहीं हो जाती तब तक इच्छित वस्तु श्रीभगवान् को नहीं पा सक्ती। गोपियें अहंकार हो जाने के कारण श्याम सुन्दर को खो बैठी ( ब्रह्म और जीव को अहंभाव ही पृथक् किये हुवे है ) उन के विरह में अत्यन्त पीड़ित हो उन की खोज करने लगीं आनन्द कंद बृन्दावन विहारी के बिना ब्रज ललनाओं को जीवन भार तुल्य जंचने लगा। बाण बेधित पक्षि की जो दशा होती है वही दशा गोपियों की विरह के दुःख से हो रही थी। सारी रात ढूंढते २ बीती, सारा बन छान डाला, बन के पशु पक्षि, वृक्ष लता फूल पत्तियों तक से पूंछ लिया, परन्तु किसी ने भी प्राण-नाथ का पता न बतलाया। आखिर लाचार हो वहीं एक जगह बैठ गईं और आर्त्त स्वर से प्यारे को पुकारने लगीं कि:-

किधर हो लालजी जसुधा दुलारे।
किधर हो हे श्रीघनश्याम प्यारे॥
किधर हो हे मुकुटधारी मुरारी।
किधर हो हे श्रीबांके बिहारी॥
पुकारा एक ने हो प्राणप्यारे।
पुकारा एक ने हो बंसी वारे॥
पुकारी एक हो हो कृष्णजी होत।
छिपाई है कहां मुखचन्द्र की जोत॥

जब पुकार २ कर भी थक गईं और कहीं से भी उत्तर में आवाज न आई तो एक होशियार बुद्धिमान् ब्रजबाला कहती है कि:-

बांसुरी ओ लबे जमना पे बजाने वाले।
चान्दनी रात में ओ आग लगाने वाले॥
खाके अरशक से दामन के बचाने वाले।
देखता जा हमें मुंह फेर के जाने वाले॥
न छिपेगा न छिपेगा कभी जलवा तेरा।
देख हर जर्रे में है हुस्ने सरापा तेरा॥

फिर भी इन्तजार करते २ प्यारे की मन मोहिनी छवि न दिखाई पड़ी तो निराश हो एक यूं बोली कि:-

तुम्हीं क्या हो तुम्हारा मुद्आ क्या।
रज़ाये यार में चूनोचरा क्या॥
हैं विष्णु रुद्र ब्रह्मा गाफ़िले राज।
तुम्हें सामाने जाहिर पर हुवा नाज़॥
यही बेहतर है बेतकरार होकर।
रहो महवे जमाले यार होकर॥
अजब क्या है यहीं से खुद अयां हो।
बुते नामहरबान खुद महरबाँ हो॥
नहीं दुनिया ओ माफीहा से कुछ काम।
यहीं बैठी भजो हर नाम का नाम॥
सहाई भक्त का ही प्रेम बस है।
सुना है आप ही फरयादरस है॥
कहां है किस तरफ बेदादगर है।
खबर सब कुछ है पर कुछ बेखबर है॥
ज़रा तो रहम कर ओ ब्रज वाले।
कहां तक कोई बेताबी संभाले॥
तु फिर किस काम आयेगा हमारे।
तजे जब प्राण तो क्या प्राण प्यारे॥

---

नोटः-खाके अरशक़ = प्रेमियों की धूलि, जलवा = सौन्दर्य, हुस्ने सरापा = पूर्ण छवि, चूनोचरा = सन्देह, ग़ाफ़िलेराज = भेद से अनभिज्ञ, नाज़ = अभिमान, महवे जमालेयार = प्यारे के सौन्दर्य में अपने को भुला देना, अयां = जाहिर, माफीहा = परलोक, सरयादरस = प्रार्थना को स्वीकार करने वाला, बेताबी = वेदना।

इस प्रकार अत्यन्त विरह से तप्त हो खोजते२ थक कर आत्म समर्पण कर निश्चल हो बैठीं तो अचानक प्रीतम की छवि सामने दिखाई पड़ी। प्राण-प्यारे को देख जान में जान आई और कहने लगीं कि प्यारे "कहां ढूंढा तुझे पाया कहां से"।

बहुत गुण गा रहे हैं वेद तेरा।
न पाया पर किसी ने भेद तेरा॥

प्रिय पाठको! यह निर्विवाद सिद्ध है कि सब किसी का भरोसा छोड़ जब उन्हीं के चिन्तन में तन मन की सुध भी न जाती रहेगी, भानमती के इस मायावी जगत को भूल जगदाधार के ही आश्रित न हो जाओगे, तब तक प्यारे का आलिंगन न पासकोगे।

कितने ही शास्त्र छान डालो, कितनी ही बुद्धि चातुर्य दिखलाओ कुछ काम न आवेगा। निराधार हो उनके चरणों पर गिर जाना होगा, कुछ आगा पीछा न सोच निराश्रय हो उन्हीं के द्वार पर शरण लेनी होगी, उन की दया पर पूरा भरोसा कर आत्म समर्पण कर देना होगा फिर कहीं उनकी परम शोभा राशि मुखारविन्द की ज्योति का दर्शन पा सकोगे। "चुपड़ी और दो दो" से यहां काम न चलेगा जगत् के विषयों को भी भोगना और सच्चिदानन्द का भी आस्वादन करना ऐसा ही है जैसे घोर अन्धकार में प्रकाश का पाना।

'भक्ति' के पाठक शायद सोचेंगे कि गंवार व्रज बालाओं की भांति हमें पागल नहीं बनना चाहिये। भगवान् की दी हुई बुद्धि पर भरोसा कर उन्हें ढूंढ लेना चाहिये। परन्तु क्या ही अच्छा होता यदि गोपियों के पागलपन का लवलेश भी हमारे भाग्य में होता। प्यारो! यह सौभाग्य तो उन परम भाग्य-वती अबलाओं के ही बांटे में मिला था, जिन्हें अपने आत्मीय बन्धु बान्धव, पतिपुत्रों पर भी किंचिन्मात्र मोह न था, वह केवल श्याम विहारी जगत् नियन्ता प्रभु की विरहाग्नि में ही तप्त हो रही थीं। उसी विर-हाग्नि की लपटों ने उन के अज्ञान और मोह रूपी परदे को भस्मीभूत कर डाला था जिस से प्रीतम का साक्षात्कार हो सका। क्या तुम भी उस ज्वाला में तपना चाहते हो यदि तीव्र इच्छा है तो तुम बड़े भाग्यवान् हो।

---

# भगवत् सबके हैं

[ ले० श्री० भाई परमानन्द जी ]

मनुष्य के चित्त को एक ही चीज शान्ति दे सकती है और वह भक्ति और प्रेम की तरंग है। जो लोग राम या कृष्ण के प्रेम में मुग्ध हो गए हैं, उनको सब मनुष्यों की आत्मा में राम और कृष्ण ही दिखाई देते हैं, जैसे एक प्रेमी को सर्वत्र उसकी प्रेमिका ही दीख पड़ती है, इन लोगों को जिस किसी आत्मा में राम और कृष्ण का प्रेम दिखाई दिया, उनकी दृष्टि में वही आत्मा उच्च से उच्च बन गई। उनके लिये किसी नीच को नीच समझना असम्भव था। इसलिये हम श्रीमद्भागवत् में ही इस भाव को स्पष्ट किया हुवा पाते हैं:-

किरात हूणान्ध्र पुलिन्द पुक्कसा।
आभीर कंका यवना खसादयः॥
येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः।
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

उस महान् देवता विष्णु को मैं नमस्कार करता हूं जिसकी शरण में किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कस, आबीर, कंक, यवन, खस, और दूसरे पाप में पड़ी हुई जातियां आने से पवित्र हो जाती हैं।

अगस्त्य संहिता में लिखा है कि नीचे लिखे राम मन्त्र में समस्त मनुष्यों का अधिकार है:-

शुचिस्ततमाः शूद्रा धार्मिका द्विज सेवकाः।
स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजा॥
लोकाश्चाण्डाल पर्यन्तं सर्वेप्यत्राधिकारिणः।

शूद्र जो पवित्र हो, द्विज की सेवा करने वाला और धार्मिक हो, स्त्रियां जो पतिव्रता हों, और दूसरे भी और तरह से उत्पन्न हुये जीव, चांडाल तक को भी इस राम मंत्र में अधिकार है बृहन्नारदी पुराण में ये श्लोक आते हैं:-

प्रायश्चित्तानि यः कुर्यान्नारायण परायणः।
तस्य पापानि नश्यन्ति अन्यथा पतितो भवेत्॥
यस्तु रागादि निर्मुक्तोऽनुतापसमन्वितः।
सर्वभूतदयायुक्तो विष्णु स्मरण तत्परः॥
महापातक युक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः।
सर्वैः प्रमुच्यते सद्यो यतो विष्णुरतं मनः॥

जो मनुष्य भगवद्भक्त परायण होकर प्रायश्चित्त करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं, नहीं तो वह पतित होता है। जो मनुष्य राग आदि से मुक्त होकर अनुताप करता हुवा जीवों पर दया करता है और विष्णु का स्मरण करता है वह बड़े २ पातक और उपपातकों से छूट जाता है क्योंकि उसका मन विष्णु में लीन है। स्कन्ध पुराण में भी कहा है कि यदि विष्णु का भक्त दुराचारी हो, या जातिच्युत हो, तो भी सूर्य की तरह संसार को पवित्र करता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य और चांडालादि भी यदि वैष्णव हों तो उनको सर्वोत्तम जानना चाहिये यदि दुराचारी, सर्वभक्षी और कृतघ्न और नास्तिक मनुष्य भी भगवान् की शरण में चला जाय तो उसको परब्रह्म परमात्मा के प्रभाव से निर्दोष समझना चाहिये।

गीता में भी श्रीकृष्ण ने कहा है:-

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

हे अर्जुन! चाहे किसी भी पाप योनि का प्राणी तथा स्त्री, वैश्य, तथा शूद्र जो भी मेरी शरणमें पूर्ण रूपेण आता है वह परम पद को प्राप्त होता है।

## भगवत् आहार

भगवत अहंकार आहारी।
निज भक्तन के हितकारी॥
नारद मन अहंकार भयो तब निज माया विस्तारी।
ब्याह करन की जब मति उपजी सूरत दई बिगारी॥
शाप शीश निज धारी।
निज भक्तन के हितकारी॥
रावण कंस दुर्योधन आदि कियो गर्व जब भारी।
क्षण में नाश कियो उन सबको चक्र सुदर्शन धारी॥
मनुज देह अवतारी।
निज भक्तन के हितकारी॥
बलि को गर्व भयो निज धनको वामन रूप तब धारी।
याचक होकर सब हरलीनो कियो अनुग्रह भारी॥
हार पाल व्रत धारी।
निज भक्तन के हितकारी॥
सागर गर्व कियो बड़पन को नीर कर दियो खारी॥
गर्वाहार करत अघात न क्षुधा भयंकर भारी॥
गर्व भञ्जन हारी।
निज भक्तन के हितकारी

# श्री गोसाईं तुलसीदास जी की भगवद्भक्ति

[ ले० श्री० मधुमंगल जी मिश्र बी. ए. जबलपुर ]

गोसाईं जी की जीवनी विचित्र है। जो बहुधा देखा वा सुना नहीं जाता सो उनके भाग्य में लिखा वा और उसी से वे इतने विचित्र हुए। विनय पत्रिका में उन्होंने कई एक स्थलों पर इस अभाग्य का उल्लेख किया है:-

जननि जनक तज्यौ जनमि करम बिनु बिधिहू सज्यौ हौं अवडेरे।
तनु जनतेउ कुटिल कीट ज्यौं, तज्यौ मातु पिता हू स्वारथ केरे
आपिन्हतज्यौ तिजरा कैसो टोटक औचट उलटि न हेरे

जो माता पिता बालक को पालते पोषते हैं उन्हीं ने भाग्यवश इन्हें तिजारी के टोटके के समान फेंक दिया और पीछे न ताका। क्या केवल इन्हीं का जन्म अमुक्त मूल में हुआ था ? और किसी का नहीं हुआ या होता ? इस प्रकार परित्याग किये जाने का उल्लेख हमें तो स्मरण नहीं आता। गोसाईं जी ने स्वयं मनुष्येतर प्राणी कुटिल कीट से समता बताई है।

पण्डितराज जगन्नाथ ने भामिनी विलास में कहीं लिखा है कि मणि जितना सान पर चढ़ाया जावेगा उतना ही उसका तेज प्रस्फुटित होगा। हम देखते हैं कि उसी भांति कठिनाई का सामना गोसाईं जी को और सूरदास जी को भी करना पड़ा है। चक्षुविहीन सूरदास की कल्पना आंख वालों को कहीं दबा देती है। माता पिता का त्याग गोसाईं जी को अद्भुत गुरू से मिला देता है। ये गुरू महाशय न केवल पालपोष के बड़ा करते हैं, वरन भगवद्भि पयक ज्ञान भी देते हैं जिस ज्ञान पर मनन कर गुरू को गुड़ छोड़, चेले ने चीनी हो जो धार्मिक प्रवाह इस देश में प्रवर्तित किया वह तीन सौ वर्ष से जनता में धर्म की अभिरुचि स्थापित करने और बनाये रखने में सफल हो रहा है। आज कल के शिक्षा प्रचार से शिक्षित अधकचरे विज्ञान की डींग हांकने वाले, जीवन संग्राम में प्रवृत्त व्यावसायिक तथा राजनैतिक फट फट करने वालों में तो जैसा तैसा प्रचार है ही. परन्तु अर्ध शिक्षित अल्प शिक्षित वा अशिक्षित जनता में रामायण का प्रचार प्रबलता पूर्वक धर्मरज्जु में नियन्त्रण कर रहा है।

इन्होंने गुरू से केवल शिक्षाही न पाई, वरन विवाह संस्कार भी उन्हीं की संमति से हुआ। गार्हस्थ्य बन्धन में पड़े। पर राख से ढके हुए अङ्गार में सलाई छू जाने की आवश्यकता थी। पत्नी की लांछना ने ढकी आग सुलगा दी। वे संसार छोड़ खड़े होगये और उस में प्रसन्न भी रहे। कहा है:-'हम तो चाखा प्रेम रस पत्नी के उपदेश' संसार का बन्धन परित्याग करने पर उनका समय भगवद्-र्चन, वन्दन, गुण कीर्तन, श्रवण मनन निधिध्यासन, अध्ययन, तीर्थयात्रा, परोपकार, साधु सेवा आदि में व्यतीत होने लगा। अयोध्या काण्ड में भगवान् के रहने योग्य स्थानों का वर्णन वाल्मीकि जी के मुख से मनन करने योग्य पद्यों में रचा गया है अध्यात्म रामयण के आधार पर भावों को विशद किया है। संसार के प्रबल प्रलोभन तथा इन्द्रियों के विषय,

नृसिंहावतार

MURARI ART PRESS, DELHI.

उन्हें अपनी ओर प्रवण न करसके। सच्ची लगन के सुख के आगे वे सब तुच्छ प्रतीत होते हैं। इतर ऊन कितने उद्योग्य, वैराग्य को चाहते हुए करते हैं, पर सफलता नहीं मिलती। परन्तु सद्गुरु की पावन शिक्षा का फल स्वरूप, उनका हीरावत् चित्त, फिर कभी प्रवृत्ति मार्ग की ओर आकृष्ट न हुआ।

धर्म के ठेकेदार, अयोध्या निवासी, अखाड़े के उदासी साधुओं से अनबन ठन जाने पर उन्होंने अयोध्या का भी परित्याग कर दिया। रामायण का प्रारम्भ अवध में किया था और चौपाईयों में प्रशंसा की थी यथा:-

संवत् सोरह सै इकतीसा। करौं कथा हरि पद धरिशीसा॥
नौमी भौम वार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकाशा॥
जन्म भूमि मम पुरि सुहावनि। उत्तर दिशि सरयू बह पावनि
अति प्रिय मोहि इहां के बासी। मम धामदा पुरी सुखराशी॥

ऐसे शब्दों में जिस अवध की प्रशंसा की उससे पीछे इतना रूठ गये कि अपने अन्तिम काव्य विनय-पत्रिका में जहां देवताओं की प्रार्थना के साथ काशी तथा बिन्दुमाधव और चित्रकूट तथा कामता नाथ की स्तुति की है वहां अवध को कानी आंख भी नहीं चेता है। हां, एक बार 'बालिश बासी अवध के' कह कर निन्दा की है कि अवधवासी छोकरों के समान छिछोरे हैं जिन्होंने सीता माईकी निन्दाकी है।

नाना पुराण निगमागम की आलोड़ना करने वाले गोस्वामी जी ने जब अवसर आया है तब योग और ज्ञान मार्ग से भक्ति मार्ग को श्रेयस्कर तथा सुलभ माना है। परन्तु दूसरे मार्गों का निराकरण भी नहीं किया है। भक्तिमार्ग को प्रधानता अवश्य दी है:-

कोटि विप्रवध लागहि जाहू। आये शरण तजौं नहिं ताहू॥
अति कोमल रघुवीर सुभाऊ। यद्यपि अखिल लोक कर राऊ
मिलत कृपा प्रभु तुम पर करि हैं। उर अपराध न एकौ धरि हैं

इस प्रकार की पंक्तियों द्वारा प्रकट करते हैं कि भगवान् शरणागत वत्सल हैं। और देखिये:-

जेहिअघहतेउ व्याध जिमि बाली। सोइसुकण्ठपुनिकीनकुचाली
सोइ करतूति विभीषण केरी। सपनेहु राम न हिय मंह हेरी॥
रहति न प्रभु चित्त चूक किये की। करत सुरति सै बारकिये की॥

कैसे शब्दों में, कैसे उदाहरणों से, कितना युक्ति पूर्वक भगवान् की शरणागत वत्सलता का कीर्तन किया है।

अनुज वधू भगिनी, सुतनारी। सुनुशठ ये कन्या समचारी॥
इन्हैं कुदृष्टि विलोकै जोई। ताहि वधे कछुपाप न होई॥

भाई की स्त्री से विहार के जिस अपराध से बालिको मारा वही अपराध सुग्रीव और विभीषण ने किया पर शरणागत वत्सलता के नाते कभी ध्यान ही न किया। भगवान् की हुई चूकको विसार भलाई का अनेक बार स्मरण करते हैं। क्या ही सज्जनता का आरोप किया है? नीति भी है:-

सन्तस्तृणोत्तारणमुद्वसन्तः सुवर्णकोटर्पणमामनंति।

अर्थात् सज्जन जन किये गये तनिक से उपकार का निहोरा कोटि सुवर्ण के तुल्य मानते हैं। वे ही गुण भगवान् में दिखाते हैं। शरणागत वत्सलता की प्रतिज्ञा गीता में निज श्री मुख से भगवान् ने स्वयं इस प्रकार कही है:-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

अर्थात् जो दूसरे का भरोसा न रख मेरी शरण में आते हैं उनकी चिन्ता मुझे है।

जे जन रूखो मोहि न बिसारहि ।
तिन्हें न बिसारौं पल एक पड़ी रे ॥

जिस शरणागत वत्सलता वा अनन्यदासत्व का उल्लेख गोसाईं जी ने जहां तहां किया है उसकी पराकाष्टा अपनी चरमकृति विनय पत्रिका में कूट २ कर भर दी है। विनय पत्रिका के प्रारम्भ में पंचदेवों की स्तुति पहिले की है सही, पर कहते क्या हैं सो देखिये श्रीगणेश जी से प्रार्थना करते हैं:-

बसहि राम सिय मानस मोरे,

श्री सूर्यनारायण जी से मांगते हैं:-

तुलसी राम भक्ति वर मांगे ।

श्री शिवजी से कहते हैं:-

देहु कामरिपु राम चरणरति तुलसीदास कहं कृपानिधान

भगवती दुर्गा से विनय करते हैं:-

रघुपति पद परम प्रेम, तुलसी चहै अचल नेम,
देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रणत पालिका ।

यहां तक दूसरों से रामभक्ति मांगी है पर स्वयं विष्णु भगवान् श्रीराम रघुवीर से कहते हैं:-

मम हृदय कंज निवास कुरु कामादि खलदल गंजनम् ।

स्तुति सबकी करते हैं पर अनन्य दासत्व का लक्षण स्वरूप मांगते हैं सभीसे राम भक्ति । यह कुछ विचित्र सा लगता है । पर गोसाईं जी बड़प्पन सभी का स्वीकार कर स्तुति करते हैं, परन्तु सीमा के अन्तर्गत । सब से वही मांगते हैं जो उन्हें मनसा, वाचा, कर्मणा अभीष्ट है । दूसरे का भरोसा नहीं है । नीचे लिखे पद से ये भाव अधिक स्पष्ट होंगे:-

खोटो खरो रावरो हौं, रावरी सौं, रावरे सों,
छूटो क्यों कहोंगो जानी सब ही के मन की ।
करम वचन हिये, कहीं न कपट किये,
ऐसी हद जैसी गांठि पानी परे सन की ।
दूसरो भरोसो नाहिं बासना उपासना को,
बासव बिरंचि सुर नर मुनि गन की ।
स्वारथ के साथी मेरे, हाथी श्वान लेवा देइ,
काहू तो न पीर रघुबीर दीन जन की ।
सांप सभा सावर लबार गये देव दिब्य,
दुसह सासति कीजै आगे हि या तन की ।
साँचे पो पायौं पान, पंच में पन प्रमाण,
तुलसी चातक आश राम श्यामघन की ।

गोसाईं जी कहते हैं कि हे भगवन् ! मैं अच्छा वा बुरा जो कुछ हूं, आप ही का तो हूं । मैं आपकी शपथ लेकर अपनी सत्यता प्रमाणित करता हूं । आप तो स्वयं सब के अन्तस् को जानने वाले हैं । भला आपसे झूठ कहके पार पाऊंगा ? । मनसा वाचा कर्मणा निष्कपट भाव से कहता हूं कि आपका दास होने का मेरा प्रण वैसा ही पक्का है जैसे कि पानी से भीगे सन की गांठो होती है । अन्यान्य देवताओं की सेवा उपासना का मुझे भरोसा नहीं है । चाहे वे ब्रह्मा, इन्द्र, कोई देव वा महापुरुष ही क्यों न हों । देवता सभी आप स्वार्थी हैं । लेना अधिक चाहते हैं देते थोड़ा हैं । जैसे हाथी लेके कुत्ता दिया चाहते हैं । दोनों के हृदय की वेदना वे नहीं जानते । यदि मेरा दासत्व भाव मिथ्या हो तो मुझे वह दण्ड दिया जावे, मेरी वह सासत की जावे, जो सर्पों की मंडली में उन्हें पकड़ने में चूक जाने वाले सावर की होती है । सावर बांस की फराटी को चीर कर बीच में कंकड़ रख फैलाए दोनों कोरों से पलक मांजते में सांप के मुख को ऐसा दबाता है कि सर्प मुख खोल कर काट नहीं सकता । दांत उसके तोड़ दिये जाते हैं । सावर के चूकते ही सर्प उसे काट कर यम धाम पठा सकता है । हे भगवन् ! यदि मेरा दासत्व सच्चा प्रमा-

णित हो तो मुझे आदर का बीड़ा दिया जावे, जिससे पंचों के बीच मेरा मान होवे। जैसे चातक को श्याम घन छोड़ दूसरे की अपेक्षा नहीं रहती, वैसे ही मुझे (गोसांई को) दूसरे देवताओं की अपेक्षा नहीं है। मुझे केवल आपकी (रघुनाथ जी की) शरण अभीष्ट है। सच्ची लगन इससे अधिक और किन शब्दों में प्रकाशित की जा सकती है? दूसरे देवताओं का अनादर नहीं किया है। केवल उनकी अपेक्षा नहीं है। उदाहरण कैसे उपयुक्त दिये हैं? संसार से विरक्त रहने पर भी सांसारिक तथ्यों का उनका ज्ञान सावर आदि के उदाहरण से कितना बढ़ा चढ़ा जान पड़ता है? ऐसे ही कारणों को मन में रख कर कहा जाता है।

जहां न जाय रवि, वहां जाय कवि।

और देवताओं को छोड़ श्री रामचन्द्र जी ही में अनन्य भक्ति क्यों हुई इसका कोई प्रमाण युक्त प्रबल कारण मेरे ध्यान में नहीं आता है और न कहीं पढ़ पाया है।

जो जहां जन्मता है, जिनका सहवास पाता है, उसीको प्यार करने लगता है, यह एक साधारण नियम सा है। गोसाईं जी चित्रकूट के समीप ठहरे। भगवान् के निवास के कारण अनेक स्थान उनके स्मारक स्थानीय जनता द्वारा आदर दृष्टि से देखे जाते हैं। इस कारण कीर्ति सुन अयोध्या गये होंगे। वहां उनका महात्म्य विशद रूप से मनोगत हुआ होगा। वहां टिकने पर रघुनाथ जी के गुण कीर्तन सुनने तथा मनन करने पर अनन्य भक्ति उदय हुई होगी। प्रयाग की तहसील सोरावा (शूकर क्षेत्र) के निवासी गुरु बाबा नरहरिदास की शिक्षा का प्रभाव भी कुछ कारण रहा होगा। ऐसे ही देखते हैं संडीला जिला हरदोई से व्रज में जाकर सूरदास जी श्रीकृष्ण चन्द्रजी के प्रबल उपासक हुए और गुण कीर्तन इतने परिमाण में कर गये जितना और किसी का नहीं देख पड़ता है। स्वयं गोसाईंजी के बताये कारण ये हैं।

दीन को दयाल दानि दूसरो न कोई।
जाहि दीनता कहौं हौं दीन देखौं सोई॥
मुनि सुर नर नाग असुर साहिब तो घनेरे।
पै तोलों तोलों रावरे न नेकु नैन फेरे॥

गोसांई जी कहते हैं कि बड़े कहलाने वाले मुनि, नाग, सुर, असुर मनुष्य देखने भर को बड़े हैं। पर वे सचमुच में स्वयं पराश्रित हैं। मैं उनसे अपनी दीनता क्या सुनाऊं? उनकी शरण मैं क्या जाऊं? दूसरों के अनुग्रह की बाट तो वे ही जोहते रहते हैं। इन करणों से मैं आप ही की शरण में आया हूं गोसांई जी ने कैसे अनुभव की सच्ची बात कही है। संसार में कितने जन अपने को बड़ा समझते हैं। परन्तु निरपेक्ष वे भी नहीं हैं। यदि मिले, तो शरण उसकी जावे, जो सर्व सामर्थ्यशाली होवे। एक और मनोरंजक कारण उनकी शरण जाने का बताया है। वह यह है:-

रीझे सब होत खीझे देत निज धाम रे।

अर्थात् हे भगवन्! आप प्रसन्न होके सब देते हो सो तो ठीक है। प्रसन्न होने पर देने वाले तो बहुत मिलेंगे पर खीजने पर भी आप से भलाई ही होती है खीजने पर भी बुराई करना नहीं जानते। अपने धाम पठा देते हो। "राम चलि निज धाम पठावा" एक ओर तो क्रोध कि "ताहि बधे कछु पाप न होई" और मार चुकने पर फिर क्रोध समाप्ति हो गई निज धाम पठाया। रावणादि को भी इसका

भरोसा था।

सुर रंजन भंजन महि भारा। जो भगवान् लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैर हठ करिहौं। प्रभु सर प्राण तजे भव तरिहौं॥

भागवत् में कहा है।

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छतां इच्छापिधानं निजपादपल्लवम्॥

अर्थात् भगवान् से जो २ सांसारिक पदार्थ लोग मांगते हैं वही २ सचमुच में पाते हैं। परमार्थ नहीं पाते क्योंकि भगवान् जानते हैं कि इसे और मांगना है। धन, स्त्री, पुत्र, ऐश्वर्य आदि अस्थायी पदार्थ मांगते ही रहते हैं पर जो निष्काम हो भगवानका भजन करते हैं उन्हें भगवान् कामनाओं का बाधक अपना चरण कमल रूपी परमार्थ देते हैं। भगवान् नृसिंह ने जब क्रोध मार्जन कर प्रह्लाद से कहा कि जो चाहो सो वर मांगो तब प्रह्लाद कहते हैं "वर देके मुझे कामनाओं के द्वारा मत खींचिये।

यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः सवै वणिक्।
अहं त्वकामस्त्वद्भक्तः त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः॥

अर्थात् हे भगवन्! जो आपके आशीर्वाद की आशा करके आपकी भक्ति करता है वह आपका दास नहीं हो सकता वह तो लेन देन करने वाला बनिया है। मैंने बिना कुछ चाहे आपका दासत्व स्वीकार किया है और आप भी अभिसन्धि शून्य स्वामी हैं। हम किसी राजा के सेवक नहीं हैं। जो आपको देना ही हो तो यही वर दीजिये कि मेरे हृदय में कामनाओं के अंकुर ही उदय न होवें।

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥

एक और कारण दासत्व स्वीकार करने का जान पड़ता है। रामचन्द्र जी जिस पर अनुकूल होते हैं, जिस पर प्रसन्न होते हैं, जिस पर रीझते हैं तब अपने पद का अभिमान सर्वथा भुला देते हैं। कहा है:-

ऐसो हरि करत दास पर प्रीति।
निज प्रभुता बिसारि जनके बश होत सदा यह रीति।
जाकी माया बश बिरंचि शिव नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाई ग्वाल युवतिन सोई नाच नचायो॥
विश्वम्भर श्रीपति त्रिभुवन पति वेदि विदित यह लीक।
बलि सों कछुन चली प्रभुता बरु है द्विज मांगी भीक॥
जाके नाम लिये छूटत भव जनम मरन भव भार।
अम्बरीष हित लागि दयानिधि सोई जनम्यौ दसबार॥

किसे प्रमाण चाहिये? कौन युक्ति का खोजी है? कौन कारण जानना चाहता है? कितने उदाहरण लेगा? भगवान् केवल संतों ही से प्रीति करते हैं ऐसा कहना ठीक नहीं है। पतित पावन उनका बाना है। गोसाईं जी कहते हैं:-

परम पुनीत संत कोमल चित तिनहिं तुमहिं बनि आई।
तौ कत विप्र व्याध गनिकहिं तारेहु कछु रही सगाई॥
जौ तुम तजौ भजौं न आन प्रभु यह प्रमान पन मोरे।
मन क्रम बचन नरक सुरपुर जहं तहं रघुबीर निहोरे॥

पहिले प्रार्थनाएं की, युक्तियां दिखलाईं। अब भगवान् को निरुत्तर किया चाहते हैं। अजामिल व्याध गणिका को किस नाते तारा था प्रभो! जो मेरी ओर नहीं ढलते। तुम छोड़ो तो छोड़ो मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता। स्वर्ग में पठाओ तो तुम्हारी दया है। नरक में डालो तो भी ठीक ही होगा। तुम्हारे निहोरे मुझे नरक भी स्वीकार है कैसी स्नेह की पराकाष्ठा कह डाली है। बिहारी कवि ने गोपियों से कहलाया है:-

मैं तपाय अपतापसों राख्यौ हियो हमाम।
मति कबहूं आये यहां पुलक पसीजहिं श्याम॥

अर्थात् हे श्यामसुन्दर ! तुम्हारे मथुरा जाने पर विरह के कारण हम्माम ( ठण्डे देशों में स्नान के लिये उष्ण भवन ) के समान मेरा शरीर उत्तप्त हो रहा है। प्यारे ! यदि तुम आके हमारी संतप्त दशा देखोगे तो तुम्हें दुःख होगा। सो तुम्हें इतना भी दुःख देना हमें अभीष्ट नहीं है। वे कहती हैं तुम यहां मत आओ कि खिन्न हो। हम भले ही तपती रह जावें। मेरे लाल सुखी रहें।

गोसाईं जी कहते हैं, प्रभो ! वेदों में लिखा है कि आप पतित पावन हैं। तब मुझे शरण में क्यों स्थान नहीं मिलता ? क्या मैं पतित नहीं हूं ?

खग गणिका गज ब्याध पांति जहं तहं हौंहू बैठारो।
अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो फारो॥
जौ कलिकाल प्रबल अति हो तो तुवनि देश ते न्यारो।
तौ हरि रोष भरोस दोष गुण तेहि भजते तजि गारो॥

गणिका, गीध, गज, वाल्मीकि आदि को जैसे शरण दी है वैसे ही मुझे भी उन पतितों की पंक्ति में बैठते समय मेरी पतरी ( परोसते समय ) क्यों फाड़ के पतितों से हटाते हो ? क्या वे सत्युग त्रेता द्वापर में हुये थे और मैं कलियुग में हुवा हूं। इसी लिये मेरी यह दशा हुई ? तो क्या कलि आप से बढ़ कर है कि कलि के पतित का उद्धार नहीं हो सकता ? मैंने तो ऐसा नहीं समझा। जो मैंने ऐसा समझा होता तो गुरुता परित्याग कर अमानी होकर आपका भरोसा छोड़ कलिकाल ही के गुण गाता, उस पर रोष न करता। भगवन् ! मैंने तो आप ही को बड़ा समझा। जो जिस विषय पर मनन करता है उसके हृदय में कैसी कैसी विचार शृंखलाएं उदय होती हैं, उसका यह एक उदाहरण है।

जब मांगते मांगते थक गये, भगवान् के पास विनती, करुण क्रन्दन के पहुंचने का कोई प्रमाण न दीखा तब कूकर और शूकर के समान अपना आचरण दिखा के निर्लज्जता पूर्वक टेक कर अकड़ जाने की सोचते हैं।

गाड़ी के श्वान की नाईं माया मोह कीवड़ा हैं,
जिनहिं तजत छिन भजत बहोरि हौं॥
दूर कीजै द्वारते खवारु लालची प्रपंची,
सुधा सो सलिल शूकरी ज्यौं गहदोरि हौं॥
राखिये नीके सुधारि नीचु को डारिये मारि,
दुहूं ओर को विचारि अब न निहोरि हौं॥
तुलसी कही है साँची रेख बारबार खांची,
डील किये नाम महिमा की नाव बोरि हौं॥

गोसाईं जी कहते हैं, हे नाथ ! मैं आपका दास हूं पर अज्ञ हूं। कुत्ते के समान स्वामी की गाड़ी के साथ चलता था। थोड़ी देर में कहीं कोई पक्षी ( संसारी लोभ ) के समान पदार्थ देख गाड़ी ( स्वामी का आनुकूल्य ) छोड़ भाग के भटक गया और इधर उधर अनेक विषयों में लिप्त रहा। जब सावधान हुआ तब फिर मार्ग पर आया। गाड़ी आगे निकल गई सो दूसरी गाड़ी (स्वामी ) के साथ चलने लगा। जब देखा कि यह गाड़ी वा स्वामी कोई भिन्न है तो भाग कर दूसरे को पकड़ा और यों ही सांसारिक प्रलोभनों में पड़ मूल उद्देश्य छोड़ अनेक विषय वासनाओं में अल्पबुद्धि श्वान की नाईं पड़ा रहा। स्वामिन् ! मैं बड़ा नीच लालची प्रपंची हूं। आप मुझे सहायता दीजिये। शरण दीजिये कि द्वार पर से हट जाऊं। नहीं तो होहल्ला मचा के शूकरी जैसे गड्ढे का पानी घंघोल डालती

है उसी प्रकार आपका विशद यश गंहडोर डालूंगा कि मैं पातकी तो फटफटा रहा हूं पतित पावन कहां से आप हो ? यों आपके पुनीत यश में बट्टा लगेगा। मेरा भटक जाना तो अज्ञानी जीव का स्वभाव ही है। आप क्यों अपने कर्तव्य से च्युत होते हैं ? शरण न देने से भगवान ही को धक्का बैठता है। दोषी अपराधी को दण्ड देने की चर्चा उड़ादी गई है। नीचे के पद्य में गोसाईं जी मचला गये हैं:-

प्रण करि हौं हठि आजुतें राम द्वार परयौ हौं,
तू मेरो किन कहे उठि हौं न,
जनम भरि प्रभु की सौं करि उबरयौ हौं,
दै दै धक्का गम भट धकै टारयौ न टरयौ हौं।
उदर दुसह सासति सही बहु बार,
जनमि जग नरक निदरि निबरयौ हौं।
हौं मचला लै छांडि हौं जेहि लागि अरयौ हौं।
तुम दयाल बनि है दिये बलि बिलंबु न कीजिये,
जात गलानि गरयौ हौं।
प्रगट कहत जौ सकुचिये अपराध भरयौ हौं।
तौ मन में अपनाइये तुलसिहि,
कृपा करि कलि बिलोकि हहरयौ हौं।

गोसाईं जी कहते हैं हे दयामय ! आज मैं हठ करके आपके द्वार पर अड़ गया हूं। जब तक आप मुझे अपना दास स्वीकार न करेंगे मैं द्वार पर से टसकने वाला नहीं हूं, न हटूंगा, न हटूंगा। मैं पाप करके बार बार नरक गया। प्रत्येक बार यातनाएं भोगने पर जब छटपटा तब समाप्ति काल पर यमदूत कहते कि चल भाग ! अब फिर ऐसे आचरण न करना कि यहां आके तड़फना पड़े। पर मैं अपनी धुन का पक्का था। जभी जन्म पाता तभी हिंसा, चोरी, जुआ, व्यभिचार मद्यपान मांसाहार आदि दुर्गुणों में से किसी न किसी में लिप्त हो ही जाता था। और फिर नरक पहुंच जाता। यमदूत मुझे यातना दे दे कर खदेड़ते २ थक गये पर मैं अटल बना रहा ऐसे अटल पापी को-हट करके अड़े हुए पापी को-भला आप से दयाशील के द्वार से अब कौन हटा-वेगा ? भूखों मरूंगा, सासतें सहूंगा पर आपके द्वार से न टलूंगा। अब मैं मचल गया हूं। जो लेने को अड़ा हूं उसे लेकर ही टलूंगा। हे नाथ ! विलम्ब न कीजिये। आपके द्वार पर आते ही जीव अभीष्ट सिद्धि पाते हैं। मुझे इतनी विलम्ब लगते देख जीव क्या कहेंगे ? समझेंगे कि महापापी होगा। ऐसे उदार द्वार पर भी इसे सिद्धि नहीं मिल रही है। इसी ग्लानि से लज्जित हो मैं गला जाता हूं। महा-राज ! कलि के छलोड़नों से छटपटा उठा हूं। यदि महापापी जान कर स्पष्ट २ अपना जन वा दास मुझे न कह सकें तो मनही में मुझे अपना दास मान लीजिये। यदि पूछा जाय कि मुझे कैसे जान पड़ेगा कि आपने मुझे मन में अपना कर दास स्वीकार किया है तब कहते हैं:-

तुम अपनायो तब जानि हौं, जब मनफिरि परि है॥
जेहि सुभाय बिषयनि लगो,
तेहि सहज नाथसों नेह छांडि छल करि है।
सुत की प्रीति प्रतीति मीत की, नृप ज्यों डर डरि है।
प्रभु गुण सुनि मन हरषि है, नीर नयननि ढरि है।

गोसाईं जी कहते हैं जब मेरा मन पलटा खावेगा तब मैं समझूंगा कि आपने मन में अपनाया है। जिस रुचि प्रेम और उत्साह से मन सांसारिक बातों अर्थात् सिनेमा गीत वाद्य आदि की ओर खिंच जाता है उसी रुचि और प्रेम से निष्कपट आपके चरण कमलों में खिंच जावे तो मैं जानूं कि नाथ ने मन ही

मन अपनाया है। जैसी स्वाभाविक प्रीति पुत्र में हैं।

मणि बिनु फणि जिमि जल बिनु मीना।
मम जीवन तिमि तुमहिं अधीना।

जिस प्रकार सुहृद् मित्र की ओर से हृदय में विश्वास है, और जिस प्रकार राजाज्ञा उलंघन करने का विचार करते ही हृदय में भय का सञ्चार होता है, वैसे ही भगवच्चरणारविन्द में नेह और अनुचित आचरण में अनास्था चित्त में उदय हो तो मैं जानूं कि स्वामिन! आपने मन में दीन को अपनाया। प्रभो! जब आपके गुण गान चित्त को रुचने लगेंगे, चित्त गद्गद् हो उठेगा आखों आंसू उमड़ आवेंगे तब मैं जानूंगा कि आपने दीन दास को अपनाया। भागवत् में कहा है।

वाग्गद्गदा, द्रवते यस्य चित्तं, हसत्यभीक्ष्णं रुदति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च, मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

अर्थात् जब वाणी गद्गद् हो जावे; हृदय द्रवीभूत होवे, कभी लगातार हंसने ही लगे, कभी रोने लगे, कभी निर्लज्जता पूर्वक चिल्ला उठे, कभी नाचने लगे तो जाना जावे कि उस के हृदय में मेरी भक्ति का संचार हुआ है। वह लोगों को पवित्र करने वाला है।

भगवान् में मन उन्हीं की कृपा से लग सकता है। वे एक पद्य में कहते हैं:-

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी।
कही बलि वेद किन लोक कहा कहैगो?
प्रभु को उदास भाव जनको पाप प्रभाव।
दुहू भाँति दीनबन्धु दीन दुःख दहैगो॥
मैं तो दियो छाती पदि, लयो कलिकाल दाव।
सासति सहस परबस को न सहैगो॥
बांकी बिरुदावली बनैगी पाले ही कृपाल।
अन्त मेरो हाल हेरियो न मन रहैगो।
तेरे मुंह फेरे मोसे कायर कपूत कूर।
लटे लटपटनि को कौन परिगहैगो॥
बचन करम हिये कहौं राम सौं कियें।
तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहैगो॥

गोसाईं जी कहते हैं नाथ! यदि आप का सम्हाला मैं न सम्हला तो लोग क्या कहेंगे? जीत किसकी होनी चाहिए? वेदों में जिसका वरदान है उसकी मर्यादा कहां रहेगी? आप की सर्व सामर्थ्यशालिता में बट्टा लगेगा? यदि आप ने सहायता न की वा मैं अपने पापों से नष्ट हुआ तब भी प्रभो! मैं तो दोनों ओर से गया। अस्तु मैं तो पापी ठहरा ही, कलि का पक्ष लिये हूं। हृदय पर वज्र धर सहस्रों यातनायें सहूंगा ही, वा सहनी ही पड़ेंगी, नहीं तो क्या करूंगा? उपायान्तर है भी तो नहीं! परन्तु भगवन्! आप का नाम दीनबन्धु है। ऐसा अच्छा सार्थक नाम धारण करते आप से हमारी यातनायें देखी न जावेंगी। आप अपनी सहज स्वाभाविक उदारता से सहारा दे ही देंगे। आप ने सहारा न दिया तो फिर और कौन देने वाला है? मैं मनसा वाचा कर्मणा आप की शपथ पूर्वक निश्चय कहता हूं कि तुलसी का निर्वाह आप छोड़ दूसरे के किये नहीं होने का।

संसार भी जीव के मन को अत्यन्त प्रबलता से अपनी ओर खींचता है। उसका स्वरूप गोसाईं जी ने दिखलाया है।

सकुचत हौं अति राम कृपानिधि क्योंकरि बिनय सुनावौं?
सकल धरम बिपरीत करत, केहि भांति नाथ मन भावौं?
जानत हूं हरि रूप चराचर, मैं हठि नयन न लावौं।
अञ्जन केस सिखा जुवती तहं, लोचन सलभ पठावौं॥

अवनन्हि को फल कथा तिहारी, यह समुझौं समुझावौं।
तिन्ह अवननि परदोष निरन्तर, सुनि सुनि भरि भरि तावौं॥
जेहि रसना गुणगाइ तिहारे, बिनु प्रयास सुख पावौं।
तेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यौं, रटि रटि जनम नसावौं॥
करहु हृदय अति बिमल बसहिं हरि कहि कहि सबहिं सिखावौं
हौं निज उर अभिमान मोह मद खल मण्डली बसावौं।
जो तनु धरि हरि पद साधहिं जन सो बिनु काज गंवावौं।
हाटक घट भरि धरयौ सुधागृह तजि नभ कूप खनावौं।
मन कर्म बचन छाड़ि कीन्हे अब ते करि जतन दुरावौं।
पर प्रेरित ईर्षा बश कबहुंक किये कछु शुभ सो जनावौं।
जो करनी आपनी बिचारौं तौ कि शरण हौं आवौं।
मृदुल सुभाव शील रघुपति को सो बल मनहिं दिखावौं।
तुलसि दास प्रभु सो गुण नहिं जेहि सपनेहुं तुम्हहिं रिझावौं।
नाथ कृपा भवसिंधु धेनु पद सम जो जानी सिरावौं॥

कार छांटके घटाया जाने पर भी उदाहरण बड़ा है, भावों से ओत प्रोत है, टीका से विस्तार बढ़ने के भयसे मन को संवरण करता हूं जिन्हें भगवद्भक्ति से रुचि होगी, यहां तक लेख पढ़ते पहुंचेंगे उनके लिये अर्थ सहज, हृदय द्रावक होगा। इसी भाव का एक संक्षिप्त पद्य पढ़ाके टिप्पणी कर आगे चलता हूं।

कैसे देउं नाथहि खोरि॥ १॥
काम लोलुप भ्रमत मन हरि भक्ति परिहरि तोरि।
बहुत भांति पुजाइबे पर पूजिबे पर थोरि।
देत सिख सिखयो न मानै मूढता असि मोरि।
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि।
संग बस किये शुभ सुनाये सकल लोक निहोरि।
एतेहु पर तुम्हरो कहावत लाज अंचई घोरि।
निलजता पर रीझि रघुवर देहु तुलसिहि छोरि।

गोसाईं जी का कहना है कि मैंने अपना आचरण इतना बिगाड़ लिया है कि सुधारना ही कठिन है। तब भगवान् को कौन दोष दूं? मेरा मन भगवद्भक्ति का परित्याग कर काम वासनाओं की ओर घुड़वाता रहता है। दूसरों से आदर पाने की भावना प्रबल रहती है, पर दूसरों को आदर देने का मन नहीं होता। मैं अपने मनको सुधारने के लिये प्रयत्न करता हूं, समझाता हूं, पर मन नहीं मानता, धूर्तता के मार्ग पर चलता है इन्द्रियों के वश में पड़ कर जिन पापाचरणों को जान बूझ के रुचि पूर्वक किया है उनको तो गुप्त रखता हूं और जो दो एक शुभ कार्य जो दूसरों की देखा देखी बन पड़े हैं उनको सुना २ के अपना बड़प्पन दिखाना चाहता हूं। ऐसा दम्भी कपटी छली होने पर भी चाहता हूं कि आपका दास कहाऊं। अर्थात् उचित और अनुचित का ज्ञान रहते भी अनुचित आचरण करके छिपाने चाहे और बिना चाहे आनुषङ्गिक अर्थात् संग-साथ के कारण जो शुभ बन पड़ा उसका ढिंढोरा पीट आत्मश्लाघा की चेष्टा की। यही तो कपट है। पर चाहता हूं कि आपका दास कहाऊं। यह छल क्या आपसे छिपा है? आपका तो सब जाना है। आपसे भी टेढ़ी चाल चलने का उपक्रम निर्लज्जता पूर्वक ठाना है। इस मूर्ख दम्भी की निर्लज्जता पूर्वक नीचता देख, इसे छोड़ दीजिये।

गोसाईं जी की अनन्य भक्ति दास्यभावता विविध रूप से कवित्त में मनोरंजक शब्दों में प्रकाशित है। थोड़ेसे उदाहरणों से वैविध्य प्रकट होगा।

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कल्प तरु कलि कल्यान फरो॥

कर्म उपासन ज्ञान वेदमत सो सब भांति खरो ।
मोहि तो सावल के अन्धहि ज्यों सूझत रंग हरो ॥ १ ॥
दीनबन्धु दुसरो कहं पायों ॥
को तुम्ह बिन पर पीर पाइ है जेहि दीनता सुनावौं ॥ २ ॥
तुम सम दीनबन्धु न दीन कोई मोसम सुनहु नृपति रघुराई
मोसम कुटिल मौलिमनि नहिं जग तुम सम हरि न हरन कुटिलाई

दूसरे देवताओं को स्वार्थी आदि विशेषण ही दिये हैं। दानबन्धुता पतित पावनता आदि गुण श्रीरामचन्द्र जी ही में माने हैं पर दूसरे देवताओं से विरोध नहीं रक्खा है। अपनी टेक रखते स्तुति है। कवित्त रामायण में श्रीमहादेव जी से भी विनती की है:-

चेरो रामराय को सुजस सुनि तेरो हर,
पाय तर आइ रह्यौ सुरसरि तीर हौं।
वामदेव राम को सुभाव शील जानियत,
नातो नेह जानियत रघुवीर भीर हौं ॥
अधिभूत वेदन विषम होत भूतनाथ,
तुलसी विकल पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिये तो अनायास काशी वास खास फल,
ज्याइये तो कृपा करि निरुज शरीर हौं ॥

अर्थात् हे हर महादेव जी! मैं रामचन्द्र जी का दास आपका शुभ नाम सुन विश्वनाथपुरी में गंगा तट पर आके बस गया हूं। हे वामदेव जी! आप तो मेरा और रघुनाथ का नाता जानते ही हैं। मेरा भार तो उन्हीं पर है। पर हे भूतनाथ जी! आधिभौतिक कठोर पीड़ा से विकल हो तुलसी तप रहा है। यदि जिलाना हो तो शरीर नीरोग कर दीजिये। और मारना ही अभीष्ट हो तो काशी वास का विशेष फल सरलता पूर्वक दीजिये। अर्थात् ज्ञानबापी में राम नाम का मंत्र फूंक कर मुझे जन्म मरण के झगड़े से छुटकारा दीजिये।

जीबे की न लालसा दयाल महादेव मोहि,
मालुम है तोहि मरिबेई को रहतु हौं।
कामरिपु राम के गुलामन को काम तरु,
अवलम्ब जगदम्ब सहित चहत हौं।
रोग भये भूत से कुसूत भयो तुलसी को,
भूतनाथ पाहि पद पंकज गहत हौं।
ज्याइये तो जानकी जीवन जन जानि जिय,
मारिये तौ मांगी मीचु सुधिये कहत हौं ॥

कहा है:-

देह धरे को धर्म है सब काहू के होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान सों मूरख भुगतै रोय ॥

शरीर धारण का परिणाम, रोग और पीड़ाओं ने विकल कर दिया है। जीने की लालसा नहीं है। मरण पर्यंत काल यापन करने को अयोध्या छोड़ काशी में निवास किया है राम के गुलामों को कामरिपु ही का भरोसा रहा करता है। जिवाना हो तो राम भक्त जान दया की जावे। मारना हो तो मृत्यु ही दीजिये।

अपनी राम की आन छोड़ना गोसाईं जी नहीं जानते। कोई ग्रन्थ उनका उठा लिया जावे वही दासत्व दीखेगा। यह कविता उन्हीं की है या किसी और की। विदित न होने पर भी भाव वही पाया जाता है।

धूत कहौ अवधूत कहौ,
रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब,
काहू की जाति बिगार न सोऊ ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को,
जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।

मांगि के खैबो मसीद को सोइबो,
लेबे को एक न देबे को दोऊ ॥

राम चरित मानस उत्तर काण्ड से उनकी अनन्य भक्ति और कलिसंतरणोपाय को उठा कर लेख समाप्त किया जाता है।

कृतयुग सब योगी विज्ञानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥
त्रेता विविध यज्ञ नर करहीं। हरि हि समर्पि करम भव तरहीं॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाव न दूजा॥
कलि केवल हरि गुण गण गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥
कलियुग योग न यज्ञ न ज्ञाना। एक अधार राम गुन गाना॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाय गुन ग्रामहि
सोइ भवतर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रकट कलि माहीं॥

संसारी जीवों के निस्तार के लिये हरिगुण गान रूप एक सहज औषधि गोसांई जी ही नहीं और पूर्वज भी कह गये हैं।

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
सतयुग त्रेता द्वापरहु पूजा मख अरु योग।
जो फल होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥
ध्यान प्रथम युग मखविधि दूजे। द्वापर परिपोषत प्रभु पूजे॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥
नाम काम तरु काल कराला। सुमिरत शमन सकल जग जाला
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू। राम नाम अवलम्बन एकू॥
राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ, जो चाहसि उजियार॥

---

# भक्त की अभिलाषा।

[ले० श्री० शोभाराम जी "धेनुसेवक"]

(१)

जिन्होंने गज को तारा है, वही हमको भी तारेंगे।
उधारी जिन अहल्या को, वही हमको उबारेंगे॥

(२)

विपति वारिधि से जन प्रहलाद को जिसने उबारा है।
वही सर्वेश हमको भी विपति निधि से उधारेंगे॥

(३)

बढाया चीर कृष्णा का, जिन्होंने टेर सुन कर ही।
दया सागर वही विन्ती, हमारी भी विचारेंगे॥

(४)

जनों की आपदाएं टारना ही व्रत विदित जिसका।
हमारी आपदाएं भी वही अखिलेश टारेंगे॥

(५)

सुदामा की दशा लख रंक से राजा किया जिसने।
कृपा की कोर से यदुनाथ हमको भी निहारेंगे॥

(६)

जिन्होंने बेर खा दो चार ही शबरी को भवनिधि से।
निकाला है हमें भी वे दुखद भव से निकारेंगे॥

(७)

जो गहते गुण जनों के, अवगुणों पर ध्यान न देते।
क्षमा मन्दिर हमारे अवगुणों को भी बिसारेंगे॥

(८)

पतित को जो सदा सन्मान युत उत्थान देते हैं।
वही भगवन् हमारी भी अवस्था को सुधारेंगे॥

---

# प्रेमावतार

[ले० श्री० आनन्दी प्रसाद जी मिश्र "निर्द्वन्द्व"]

भगवान् कृष्ण को इस संसार में अपनी लीला दिखलाए हुए लगभग ५००० वर्ष होगए, परन्तु उनका नाम आज भी वैसा ही जगमगा रहा है, जैसा कि महाभारत के समय अथवा उसके कुछ बाद था। अब न केवल श्रीकृष्ण की जन्म-भूमि भारत ही उनका आदर सत्कार करती है, बल्कि यूरोप और अन्य देश भी इस वैराग्य-सागर की एक दो बूंदें अपने शुष्क हृदय तक पहुंचा कर अमर होने के लिए प्रयत्न शील हैं। कृष्ण महाराज की पवित्र जीवनी अब केवल भारत वर्ष और भारत वासियों की ही मीरास नहीं रही है, बल्कि समस्त संसार उसका अधिपति बन गया है। पाश्चात्य विद्वानों ने भगवान् कृष्ण के सामने इसी प्रकार शिर झुका दिया है, जिस प्रकार बड़े से बड़े कृष्ण भक्त झुकाते हैं। गीता का—जो हिन्दुओं में इसी दृष्टि से देखी जाती है, जिस प्रकार मुसल्मानों में कुरान या ईसाईयों में बाईबिल—यूरोपीय विद्वानों ने पाठ करना आरम्भ कर दिया है, और कई फिलोसोफर अब से पूर्व इसको ज्योति का एक ऊंचा मीनार स्वीकार कर चुके हैं, जिससे भूले भटकों को ठीक मार्ग दिखलाई दे सकता है।

श्री कृष्ण का स्थान संसार के अन्य महापुरुषों से बहुत ऊंचा है। हिन्दू अवतारों में भी उनका स्थान सबसे उच्च है। जहां मर्य्यादा पुरुषोत्तम राम और श्री लक्ष्मण जी में वीरता, आदि कई गुण पूर्णरूपेण विद्यमान थे, वहां श्रीकृष्ण महाराज में प्रत्येक गुण पूर्ण रूपमें था और यही कारण है, कि भारत का प्रत्येक नर नारी भगवान् कृष्ण को १६ कला का पूर्ण अवतार मानते हैं।

भगवान् कृष्ण, प्रेम, वीरता, और ज्ञान के अवतार थे। उनके प्रेम की कथाएं भक्त जनों के हृदयों पर अंकित हैं। कवियों की कविताओं और प्रेमियों की वाणियों में भरी पड़ी हैं। उनकी प्रेम वांसुरी की सुरीली ध्वनि उस समय तक संसार के कानों में आती रहेगी, जब तक 'प्रेम' का नाम शेष है। कृष्ण का बाल्यकाल में गोपियों और राधा से निःस्वार्थ प्रेम, संसार के कवियों को नया पाठ पढ़ाता रहेगा। सुदामा जैसे निर्धन मित्र का स्वागत करने के लिए, जिसे सेवक ने द्वार के भीतर भी नहीं घुसने दिया था, नंगे पैरों दौड़ना, और उनके पैर धोना, सच्ची मित्रता और अगाध प्रेम को संसार में अमर बना चुका है। आवश्यकता है; कि हम कृष्ण कृष्ण पुकारने वाले भी भगवान् कृष्ण जैसे प्रेम का कुछ भाग अपने भीतर प्रवेश करें, आपस में प्रेम पूर्वक व्यवहार करें मेल जोल से रहना सीखें, निर्धन और दलित भाईयों को गले लगाएं, अछूतों से प्रेम करें एवं कुछ समय से हमारे हृदयों में जो द्वेष और घृणा के भाव आगए हैं, उन्हें दूर करें। आचार-व्यवहार और खान-पान के छूत छात के कारण से ३२ करोड़ की बजाय २२ किरोड़ हिन्दू रह गए हैं और यह २२ करोड़ भी २२ हज़ार जातियों में विभक्त होगएहैं, जो एक दूसरे से ईर्ष्या और द्वेष करते हैं और आपस में वैर करके

दूसरों की ठोकरें खाते हैं। आवश्यकता है कि हम वही प्रीति की रीति प्रचलित करें जिसे भगवान् कृष्ण ने व्यवहारिक रूप में संसार के समक्ष उपस्थित किया था।

वीरता में भगवान् कृष्ण अपना उदाहरण आप थे। बाल्य-कालमें जिन सांसों की क्रियाओं और होठों की फूंकों से प्रेम की वंशी बजाते थे, युवा होकर उन्हीं सांसों और फूंकों से शंख फूंक फूंक कर निर्बल यादवों में वीरता का सञ्चार करने लगे। अपने साथी बालकों और युवाओं का संगठन करके कंस जैसी आसुरी शक्ति रखने वाले महापापी राजा को दण्ड देने के लिए खड़े होगए। श्री कृष्ण ने अपनी अतुलनीय वीरता का परिचय न केवल कंस और शिशुपाल जैसे योद्धाओं का संहार करके दिया, बल्कि जरासिन्धु और दूसरे पापियों की सेना के नाश करने में उनके सुदर्शन चक्र ने खूब जौहर दिखलाये। उन्होंने बिखरे हुए यादवों को संगठित करके उनमें वह शक्ति भरदी कि जिसने बड़ो २ आसुरी शक्तियों को तिनके की भांति उठा कर फैंकदिया, आज इन्हीं कृष्ण महाराज के नाम लेवा यादवों और दूसरी आर्य सन्तानों की जो शोचनीय अवस्था है, उसे प्रसिद्ध इतिहास लेखक 'मेकाले' इन शब्दों में व्यक्त करते हैं:-

"हिन्दुओं में जो पुरुषों के वेष में हैं, वह स्त्रियां हैं। और जो स्त्रियों के रूप में हैं, वह बालक हैं"।

यह उन कृष्ण की सन्तान की दशा है, जिसने पुरुषार्थहीन अर्जुन को बल और बढ़ावा देकर असंख्य सेना को, जो धर्म और न्याय के नाश पर तुल हुई थी, अपने बाणों से बेध कर छिन्नभिन्न कर दिया था। भगवान् कृष्ण आज भी बलहीन हिन्दू जाति को अर्जुन की भांति सम्बोधित कर कह रहे हैं, कि "उठ और अपना कर्त्तव्य पालन कर और धर्म के मार्ग में जो रोड़ा हो, उसका नाश करदे"। क्या हम भगवान् के इस नवजीवन सन्देश को नहीं सुनेंगे?

भगवान् कृष्ण की गीता सच्चे ज्ञान की गंगा है! भगवद्गीता वेद और शास्त्रों का सार है। उसका पाठ मात्रभी मनुष्य की आत्मा को ऊंचा उठा देता है और उसके मनन करने से विज्ञान सागर में गोता लगा कर मोती पाना सिद्ध होता है। हमारा विश्वास है कि जिस जातिमें कृष्ण जैसे कर्मयोगी उत्पन्न हुए हों, वह जाति कभी मर नहीं सकती, मिट नहीं सकती, सदैव अमर और अमिट रहेगी। हमारी शुभ प्रार्थना है कि भगवान् की सच्ची शिक्षा का हिन्दू जाति में सञ्चार हो, और वह सच्चे अर्थोंमें उनके भक्त बन कर उन्नति पथ में प्रयत्न शील हों।

---

# कलियुग में श्रीनाम प्रभाव

ले० श्री० पं० सीताराम जी शास्त्री "वासिष्ठ"

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोक नाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥

ज्ञान से अथवा अज्ञान से कीर्तन किया हुआ हरिनाम इस प्रकार पुरुषके पापोंको नष्ट कर देता है जिस प्रकार शुष्क काष्ठ में डाली हुई अग्नि उसको जला डालती है।

यह कलियुग का समय है। इस समय सांसारिक जीव सत्पथ को छोड़ कर माया जाल की ओर

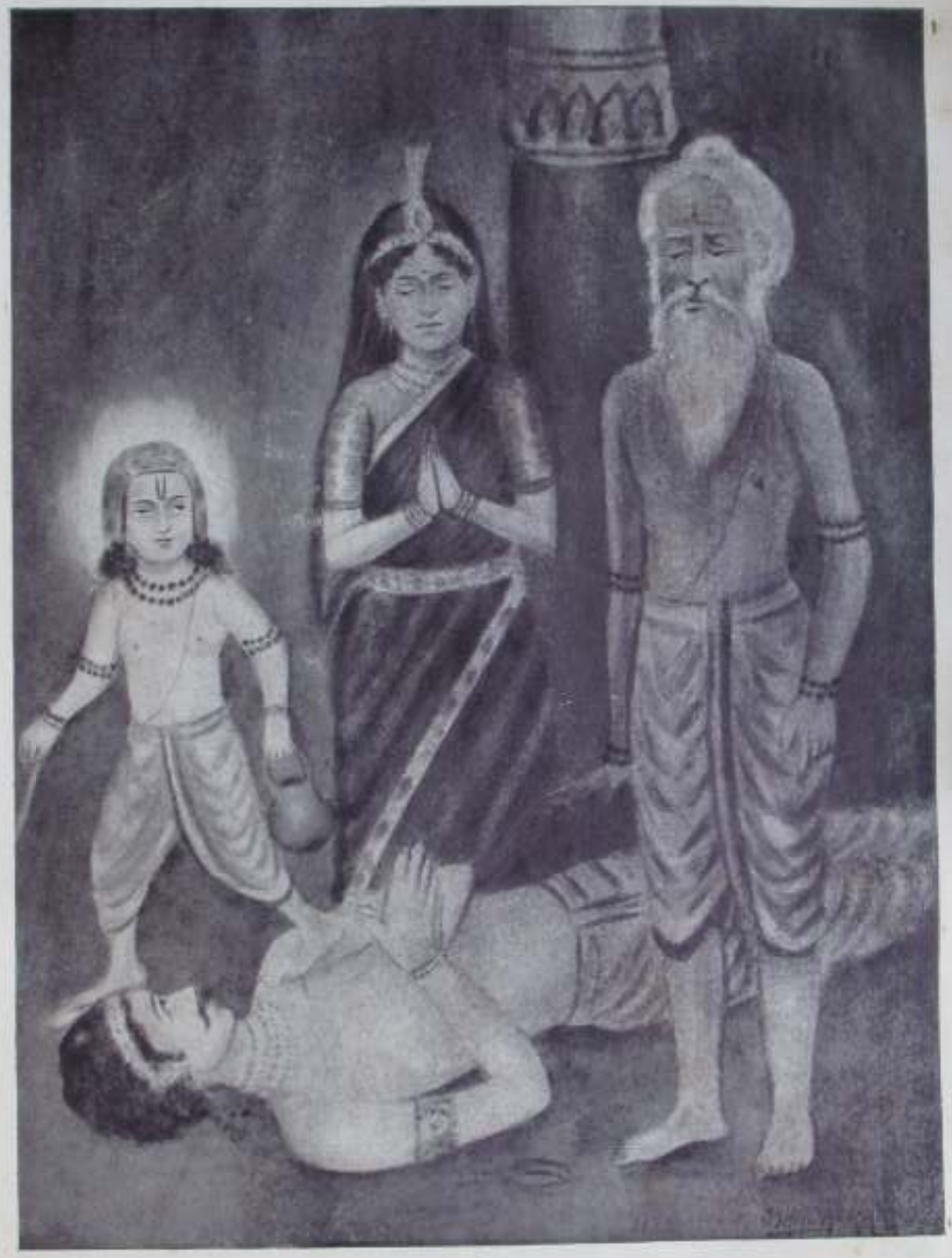

वामनावतार

MURARI ART PRESS, DELHI.

मुरली मनोहर

शीघ्रता से पैर बढ़ा रहे हैं। विषयान्ध होकर कामना कलंक रूपी महादावाग्नि से हाथ सेक रहें हैं; भोगों की प्रबल लालसा ने प्रायः उनको विवश और उन्मत्त बना रक्खा है। आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक तापों की वृद्धि हो रही है धर्म के नाम पर अहिंसा, सत्य और मनुष्यत्व का विसर्जन किया जारहा है। जब हम और युगों से इस युग की तुलना करने बैठते हैं तो हमें निश्चय हो जाता है कि ऐसे नाजुक समय में प्राणियों का उद्धार होना बड़ा कठिन है। किन्तु यह बात नहीं है। ऐसे दुर्दमनीय समय में भी पापों से छूट कर परमात्मा के परमपदको प्राप्त करने के लिये हमारे शास्त्रों में अनेक सरल उपाय बतलाये गये हैं।

सत्ययुग में कठोर तप या ध्यान में जो शक्ति थी, त्रेता में यज्ञों में तथा द्वापर में अर्चन व वन्दनादिकों में जो शक्ति थी, वे सब शक्तियां कलियुग में केवल भगवन्नाम-संकीर्तन में समाविष्ट हैं। मुनि व्यास देव ने भी कहा है कि:-

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥

अर्थात् सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापर में ध्यान, यज्ञ, अर्चन आदि साधनों द्वारा वर्षों में जाकर बड़ी कठिनता से जो फल प्राप्त होता था वह फल इस अनीति युक्त, युगाधम कलियुग में केवल केशव भगवान् के नाम-कीर्तन से प्राप्त हो जाता है।

नितान्त शोक सन्तप्त जीवों के कल्याणार्थ हमारे दयामय महर्षियों ने नाम कीर्तनादि से भगवान् वासुदेव में प्रेम लक्षणा भक्तिका होना आवश्यक बतलाया है। प्रेम से उच्चारण किया हुआ हरिनाम विषय वासनाओं की महादावाग्नि के संताप को शीतल कर देता है। जिस तरह भगवान् अंशुमाली के उदय होते ही पद्म समुदाय विकसित हो जाता है तद्वत् हरिनाम कीर्तन से आत्मा का पुण्य विकसित हो जाता है। इस युग में भगवान् के प्रति श्रद्धा भक्ति की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी कि नाम संकीर्तन की है क्योंकि श्रद्धा, भक्ति आदि की विधि तो वासना के क्षय के लिये है न कि पाप नाश के लिये। यही कारण था कि अजामिल जैसा महापापी भी अन्तसमय में 'नारायण' नाम कह कर परमपद को प्राप्त होगया। उसने नारायण नाम से पुत्र को पुकारा था ईश्वर को नहीं, मरण-क्लेश से विवश होकर पुकारा था श्रद्धा से नहीं, तथापि पतित पावन परमात्मा ने ऐसे पातकी को भी अपना धाम देकर अपना लिया।

अपिच वामनादि पुराणों में नाम कीर्तन का महात्म्य इस प्रकार वर्णन किया गया है:-

नारायणो नाम नरो नराणां प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेक जन्मार्जित पाप संचयं, हरत्यशेषं श्रुतमात्र एव॥

पृथिवी में नारायण नाम रूपी नर प्रसिद्ध चोर कहा जाता है क्योंकि वह कानों में प्रवेश करते ही मनुष्यों के अनेक जन्मार्जित पापों के सारे संचय को एक दम चुरा लेता है।

जिस हरिनाम का ऐसा प्रभाव है जो पुरुष ऐसा सरल उपाय पाकर भी उसका कीर्त्तन नहीं करता वह अवश्य मन्दभागी है और उसके पापों का कोई प्रायश्चित्त नहीं। विष्णु पुराण में भी लिखा है:-

नान्यत्पश्यामि जन्तूनां विहाय हरिकीर्तनम्।
सर्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तम॥"

इसका तात्पर्य यह है कि अतुल प्रभाव शाली

श्रीकृष्ण भगवान् के नाम संकीर्तन से पुरुष के सब पाप दूर हो जाते हैं। एवं मनुष्यमात्र को आनन्द दाता और सम्पूर्ण पापों के हर्ता हरिकीर्तन को छोड़ कर कलियुग में दूसरा प्रायश्चित्त नहीं है। अतएव नाम की महिमा बड़ी विचित्र है नाम-कीर्त्तन से चित्त रूपी दर्पण निर्मल होजाता है। काम, क्रोध लोभ, मोह, मदादि आभ्यन्तरी विकारों का विनिमय होकर शान्ति प्राप्त होती है। अविद्या रूपी तम का नाश होकर ज्ञान रूप विधु का उदय होजाता है। आत्मा ईश्वर में लवलीन होजाता है। उस समय मनुष्य को प्रत्यक्ष परमात्मा का आभास होने लगता है और समस्त जगत् सच्चिदानन्दमय प्रतीत होता है।

निस्सन्देह पापियों के पाप रूपी दहकते हुये अग्निकुण्ड को शान्त करने की यदि कोई विशिष्ट शक्ति है तो वह हरिनाम कीर्तन ही है। अन्यथा उस का किसी प्रकार प्रायश्चित्त नहीं। हमारे शास्त्रज्ञ पुरुषाओं का कथन है कि:-

"सर्वधर्म बहिर्भूतः सर्वपापरतस्तथा।
मुच्यते नात्रसन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्तनात्॥
परदाररतो वापि परापकृतिकारकः।
स शुद्धो मुक्तिमाप्नोति हरेर्नामानुकीर्तनात्॥

(मत्स्यपुराण)

भावार्थ यह है कि सर्वधर्म त्यागी और सर्व पापनिरत तथा परस्त्री गामि और परपीड़नकारी पुरुष भी हरिनाम कीर्तन द्वारा पाप पुंजको नष्ट करता हुआ अन्त में परमपद को प्राप्त हो जाता है। परन्तु इस अधिकार को पाकर इसका दुरुपयोग कदापि नहीं करना चाहिये क्योंकि जो मनुष्य-विज्ञ होकर भी हरिनाम की दुहाई देता हुआ यदि पाप कुण्ड की ओर कदम बढ़ाता है तो उसका कहीं निस्तार नहीं। स्वयम् उत्पन्न होने वाले रोग की निवृत्ति के लिये ही पश्चात्ताप और औषध सेवन किया जाता है। किन्तु जान बूझ कर अपने हाथों कुल्हाड़ी मारने से उत्पन्न हुये रोग की कोई दवाई नहीं। 'पाप करते चलो और नाम लेते चलो' इस विचार से नाम लेना नाम का बड़ा भारी अपराध करना है। सिवाय नरक यातना भोगने के और दूसरा इसका कोई प्रायश्चित्त नहीं।

ईश्वर नामातीत भी हैं क्योंकि उनके नाम अपरिमित हैं। छोटे ग्रन्थ से लेकर वेदों तक समस्त शास्त्रों में नाम महिमा प्रसिद्ध है। देहधारी पुरुष राम केशव आदि नामों में से किसी भी एक नामका सहारा लेसकता है। उसके लिये किसी प्रकार की रुकावट नहीं। शूद्र से लेकर ब्राह्मण तक सब इसके अधिकारी हैं। यही कारण था कि दीनबन्धु पतितोद्धारक परमेश्वर ने असंख्य अपराध होने पर भी केवल एक बार के नामोच्चारण से निरक्षर मूढ पापियों को भी अपना धाम देकर उनका उद्धार किया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं कि:-

अपराध अगाध भये जनते अपने उर आनत नाहिन जू,
गनिका गज गीध अजामिल के गनि पातक पुंज सराहिन जू
लिये तारक नाम सुधाम दिए जेहि धाम महामुनि जाहिन जू
तुलसी भजु दीनदयालहि रे रघुनाथ अनाथन दाहिन जू॥

इसका आशय यह है कि सैकड़ों वर्ष पर्यन्त अटल तपस्या करने वाले तापसी भी जिस धाम को प्राप्त नहीं हुये उसी धाममें परमात्मा ने एकबार नामोच्चारण करने से अजामिल गीध, गनिका आदि महापातकियों को भी भेज दिया। अतः नाम कीर्तन इस संसार में सर्वातिशयी है। पुनः यह कलियुग

तो नाम युग से प्रख्यात है ही, क्योंकि इस युग का साधन केवल नाम संकीर्तन ही है। इस युग में पुरुष हरिनाम कीर्तन द्वारा इस अचिन्तनीय, अनवश संसार रूपी अगाध समुद्र से पार होकर निस्सन्देह भगवान् के परमपद को प्राप्त कर सकता है। अन्ततोगत्वा यही निष्कर्ष निकलता है कि इस कलिकाल में निम्न लिखित मन्त्रोच्चारण ही सार वस्तु है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

---

# भक्तिप्रियो माधवः

[ ले० श्री० पं० गंगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण, शास्त्री काव्य पुराणतीर्थ ]

अनुकूलता से ईश्वर में अनन्य ममता, इंद्रियों के ईश ईश्वर में संपूर्ण इंद्रियों को लगा कर निष्काम भजन एवं बिना किसी कारण के भगवान् में स्वाभाविक प्रेम करने का नाम भक्ति है। निमित्त सहित अपरिछिन्न इंद्रियों की स्वभाविक वृत्ति को रति * और अनिमित्त अपरिछिन्न इंद्रियों की अस्वाभाविक वृत्ति को भक्ति ‡ कहते हैं। भक्ति और रति में यही भेद है। भक्ति बिना गुरु कृपा के नहीं होती और भक्ति के बिना ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। सच्चा भक्त वही हैं जो अपना सर्वस्व अपने आराध्यदेव के चरणों में अर्पण करदे। भक्ति वासनामय लिंग देह का नाश करके अप्राकृत शरीर बनाती है। भक्ति के आभासमात्र से ही भक्त के संपूर्ण कार्य सिद्ध हो जाते हैं फिर यदि पूर्णतया भक्ति हुई तो कहना ही क्या है! विश्वास और अहेतुकी भक्ति से ही ईश्वर मिलता है। भगवद्भजन करते करते पहिले भगवान् में रति होती है और पश्चात् प्रेमलक्षणा, भक्ति। ज्ञान और वैराग्य से भक्ति नहीं होती भक्ति हरि चिंतवन से ही होती है। ज्ञान वैराग्य में तत्व विचार और अभ्यासादि की कठिनता है भक्ति में नहीं। इसी से भागवत् माहात्म्य में ज्ञान वैराग्य भक्ति के पुत्र कहे गये हैं। कर्म, तप, ज्ञान वैराग्य, योग, दान और धर्म आदि से वह प्राप्ति नहीं होती जो सच्ची भक्ति से होती है। भक्त भक्तिके प्रताप से जो इच्छा करता है वह पाता है। भगवत् उसी को चाहते हैं उसीका स्मरण करते हैं और उसीकी ओर देखते हैं, जो उन्हें चाहता, उनका स्मरण करता या उनकीओर देखता है। संसार सागर से पार होने के लिएभक्ति जहाज, केवट और कुतुबनुमा का काम देती है। संसार बंधन से छूटने का एक मात्र सरल उपाय भगवदुपासना है। भगवान् अपने भक्तोंके लिए सब कुछ करने को तैयार रहते हैं। सामान्यतया भक्ति

---

* सनिमित्ता चापरिच्छिन्नेन्द्रियवृत्तिः रतिः स्वाभाविकी।

‡ अनिमित्ता त्वपरिच्छिन्नेन्द्रियवृत्तिर्भक्तिः।

के दो प्रकार हैं विहित और अविहित। विहित उस भक्तिका नाम है, जो शास्त्र प्रतिपादित हो, साधना के द्वारा प्राप्त हो अथवा गुरुवाक्यों से ज्ञात हो। अविहित वह है; जो राग पूर्ण हो और स्वभाव से ही उत्पन्न हो। विहिता भक्तिके दो भेद हैं फल रूपा और साधना रूपा। एवं अविहिता भक्ति के चार भेद हैं। कामजा (काम से उत्पन्न हुई) द्वेषजा* (बैरसे उत्पन्न) भयजा* (भय से उत्पन्न) और स्नेहजा (स्नेहोत्पन्न)।

विहितान्तर्गत साधन रूपा भक्ति दो प्रकार की है। ज्ञानांगभूता और स्वातन्त्र्यमुक्तिदायिनी। ज्ञानांगभूता के भी दो भेद हैं। सगुणा और निर्गुणा। गुण श्रवण मात्र से सर्वभूत हृदयस्थित हरि में मनकी गतिका अविच्छिन्न रूप से लगना निर्गुणा भक्ति है। यह एक ही प्रकारकी है। सगुणा भक्ति तीन प्रकार की है ज्ञानमिश्रा, वैराग्यमिश्रा और कर्ममिश्रा। ज्ञानमिश्रा के भी तीन भेद हैं। उत्तमा, मध्यमा और कनिष्ठा। सब प्राणियों में ईश्वर को और ईश्वर में सब प्राणियों को देखना उत्तमा। ईश्वर में प्रेम, ईश्वर भक्तोंसे मित्रता, दीनों पर कृपा और वैरियों पर उपेक्षा करना मध्यमा। हरिकी पूजामें तो विशेष प्रीति रखना, किंतु हरि भक्तों से मित्रता और दीनों पर दया न करना कनिष्ठा भक्ति है। वैराग्यमिश्रा भक्ति उसे कहते हैं जिसमें भक्त के चित्त में संसारी कर्म बीजों की उत्पत्ति हो न हो और चित्त निरंतर वासुदेव में लय हो जाय एवं तीनों लोकों के विभव के लिए जिसमें स्मृति कुंठित न हो और भगवान् के चरण कमल से पलकमात्र भी मन चलायमान न हो। ज्ञान वैराग्य मिश्रा भक्ति सर्वश्रेष्ठ है।

कर्ममिश्रा भक्ति तीन प्रकार की है सात्विकी राजसी और तामसी। उनमें कर्ममिश्रा सात्विकी के पुनः तीन भेद हैं। सात्विकाधमा, सात्विकमध्यमा और सात्विकोत्तमा। कर्मक्षय के लिए यजन पूजनादि करने को सात्विकाधमा, भगवत्प्रीति के लिए भक्ति करने को सात्विकमध्यमा और निष्काम भगवान् की निश्चला भक्ति को सात्विकोत्तमा कहते हैं। राजसा भक्ति भी तीन प्रकार की है। राजसाधमा, राजसमध्यमा और राजसोत्तमा। सुख प्राप्ति के लिए जो भक्ति की जाय वह राजसाधमा, यश के अर्थ की जाय वह राजसमध्यमा और ऐश्वर्य के वास्ते जो की जाय वह राजसोत्तमा है। तामसी भक्ति के भी तीन भेद हैं। तामसाधमा, तामसमध्यमा और तामसोत्तमा। हिंसा के लिए की हुई भक्ति तामसाधमा, पाखंड से की हुई तामसमध्यमा और ईर्षा से की हुई भक्ति तामसोत्तमा कहाती है। साधन रूपा भक्तिमें तामसी से राजसी, राजसी से सात्विकी और सात्विकी से अंतिम सात्विकी श्रेष्ठ है‡। अथवा इसका विभाग यों करना चाहिये॥ भक्ति, तीन प्रकार की है। सात्विकी

* द्वेषजा और भयजा भक्तिमें ईश्वर में तन्मयता तो अवश्य होती है, किंतु प्रतिकूलता होने से भक्ति नहीं कह सकते, क्योंकि भक्ति में अनुकूलता होनी चाहिये। इस शंका का उत्तर यही है कि रात दिन निरंतर चिंतन करने के कारण द्वेषादि भी भक्ति रूप में परिणित होजाते हैं और इसी से वैसे भक्तों की भी सद्गति होजाती है।

‡ विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्यमेवच। अर्चादौ अर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥१॥ अभिसंधाय यद्धिंसां दम्भमात्सर्यमेवच। संरंभी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥२॥ कर्मनीहार मुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम्। यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्विकः ॥३॥ (भागवते)

राजसी और तामसी। इनमें भी प्रत्येकमें तीनों गुण परस्परमिले हुए हैं। इससे एक एकके तीन भेद हैं। सात्विक में, सात्विक तामसी, सात्विक राजसी और सात्विक सात्विकी। राजसमें, राजस तामसी, राजस राजसी और राजस सात्विकी। तामसमें तामस तामसी, तामस राजसी और तामस सात्विकी। श्रवण भक्तिके नौभेद,कीर्त्तन के नौ, स्मरण के नौ, पाद सेवाके नौ, पूजार्चा के नौ, वन्दना के नौ, दास्य के नौ, सख्य के नौ और आत्मनिवेदन के नौ भेद हैं। इस रीति से कर्ममिश्रा सगुणा भक्ति के ८१ भेद हैं।

‡श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन नामक नवधा भक्ति के अधिकारी † क्रम से परीक्षित, शुक, प्रह्लाद, लक्ष्मी, पृथु, अक्रूर, हनुमान्, अर्जुन और बलि हैं एवं महाराज अंबरीष प्रायः सबके अधिकारी या उदाहरण हैं। ये सब भक्ति के ही द्वारा मुक्त हुए हैं भगवत् नाम जपने, चरित्र सुनने और स्मरण करने से भक्ति उत्पन्न होती है। भक्ति रसपान करने वाले को भूख प्यास नहीं लगती एवं भय, शोक और मोह नहीं होते। ईश्वर का नाम सुनने को श्रवण कहते हैं। इसके द्वारा संसार रूपी सर्प के काटने से नष्ट चेतना वाला पुरुष चैतन्य को प्राप्त होता है। श्रवण से चित्त में शांति होती है मनन करने की शक्ति बढ़ती है और बुद्धि विकसित होती है भगवान् की लीला नाम और गुणका ज़ोर २ से कहना कीर्तन कहाता है। इसके आचार्य नारद हैं। यह तीन प्रकार का है। लीला कीर्तन, नाम कीर्तन और गुण कीर्तन। नृसिंह आदि अवतार की लीलाका कहना लीला कीर्तन, हरिके नाम की रट लगाना नाम कीर्तन और भगवान् के गुणोंका निरंतर धारण करना स्मरण कीर्तन है। विधि पूर्वक शुद्धि न्यासादि सहित मंत्रों के द्वारा भगवान् की पूजा करने का नाम अर्चन है। इससे स्वर्ग, मोक्ष, धरा, धन, राज्य आदि सभी सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

प्रतिमागत ईश्वर के चरण कमल की सेवा करने को पादसेवन कहते हैं। इससे भक्त के संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। हाथ, पांव, जानु, उर शिर, नेत्र, मन और वाणी के द्वारा किये गये अष्टांग प्रणाम@ को वंदन कहते हैं। शरीर, वाणी, मन, इंद्रियां, बुद्धि, आत्मा प्रकृति और स्वभाव से किये हुए कर्मों को ईश्वर के अर्पण करना एवं मनसा वाचा कर्मणा केवल हरि का ही सेवक होना, दास्य है। सख्य विश्वास और बंधुभेद से दो प्रकार का है। विश्वास का उदाहरण ग्वालबाल और बंधु का उदाहरण नंदादि हैं। अहंता निवेदन और देहनिवेदन भेद से आत्म निवेदन भी दो प्रकार का है। जिस प्रकार बेची हुई वस्तु की रक्षा का ध्यान बेचने वाले को नहीं रहता बल्कि खरीदने वाले को होता है।

---

‡श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ भक्तिर्नवधा।

†श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद्वैयासकिः कीर्तने। प्रह्लादः स्मरणे तदंघ्रि भजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने। अक्रूरस्त्वभिवंदने कपिपतिर्दास्येथ सख्येऽर्जुनः। सर्वस्वात्मसमर्पणे बलिरभूत्कैवल्यमेते विदुः॥ (भागवते)

@पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा। कर्मणा मनसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टांग ईरितः (नारदीये)

उसी प्रकार भक्त, अपनी देह को भगवान् को अर्पण करके उसे भूल जाता है फिर वह उसकी रक्षा का प्रयत्न नहीं करता, भगवान् स्वयं उसकी रक्षा करते हैं। भगवान् के सामने हाथ जोड़ के

पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पाप संभवः।

कहना दैन्य है। विश्वास पूर्वक, दीन होके शुद्ध हृदय से भगवान् को पुकारिये वह अवश्य आवेगा। क्योंकि भक्त के कातर स्वर से भगवान् का सिंहासन हिल जाता है किंतु प्रेम सच्चा होना चाहिये। अभिलाषा भी इसी का भेद है। अभिलाषा का उदाहरण यह है कि हे भगवन्! आपके चरण में मेरा मन लगा रहे, वाणी कथा वार्ता में लगी रहे और कान कथाश्रवण में लगे रहें।

भक्ति के लिये सत्संग की अत्यंत आवश्यकता है क्योंकि सज्जनों की संगति से ही भक्ति उत्पन्न होती है। भक्त ईश्वर और ईश्वर भक्त की बुराई करने वाले के पास कभी न बैठे। जलती आग में कूद पड़ना काल कोठरी में रहना तथा सर्प, व्याघ्र एवं मगर के मुंह में चला जाना अच्छा किन्तु हरि विमुखों से प्रीति करना और उनके साथ रहना अच्छा नहीं*। बुराई करने वालेके साथ भी जो भलाई करे वही सच्चा भक्त है। भक्ति में वर्णाश्रम का अहंकार नहीं रहता। स्त्री, पुत्र आदि में मोह न करना, वैरी पर भी दया करना, यथा शक्ति प्राणियों को सुख देना, भक्त का कर्तव्य है। भक्त कभी भी बुरी पुस्तकें न पढ़े, जीविका की चिंता एवं किसीसे वादविवाद न करे, किसी भी (पूर्व या उत्तर) पक्षका आश्रय न ले, बहुत चेला न मूंड़े, सिद्धान्त ग्रंथको छोड़ अन्य ग्रंथों का अध्ययन एवं नित्य नये नये कामों का आरंभ न करे, देवता और गुरू की निंदा न करे, मूर्ति को जड़ बुद्धि से न देखे (ईश्वर मान कर ध्यान करे) सर्वदा ईश्वर का आराधन करे, गुरु को ईश्वर के समान जाने, भक्तोंमें जाति भेद तथा ऊंचनीच भाव न रक्खे। विष्णु और भक्तोंके चरण जलको सामान्य जल न समझे और "ॐ नमो नारायणाय" आदि मंत्रों को सामान्य अक्षर न जाने। इन साधनों से निर्गुणा भक्ति के परिपक्व हो जाने पर फल रूपा प्रेमलक्षणा भक्ति उत्पन्न होती है। हरिभाव में उन्मत्त पुरुष को सुख दुःख का ज्ञान नहीं रहता। जिस पर भगवान् की कृपा होती है, उसी को भक्ति मिलती है और वही भगवान् की महिमा को जान सकता है। भक्ति हीन कोई कार्य सफल नहीं होते। भगवान् के कथामृतपान से बढी हुई भक्ति के द्वारा जिनके आशय निर्मल होगये हैं वे ही भक्त वैराग्य के सार को जान सकते हैं। जिनकी हृदय ग्रंथि खुलगई है वे ही आत्माराम योगी भगवान् में अहेतुकी भक्ति करते हैं। वे भक्तिके सामने सालोक्य सामीप्य सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य मुक्ति की परवाह नहीं करते, निरंतर भक्ति में ही रत रहते हैं। भक्त भक्तियोग से संपूर्ण पदार्थ पा सकता है। भक्त स्वर्ग लोक, ब्रह्मलोक संपूर्ण पृथ्वी और पाताल का राज्य, योग सिद्धि और मोक्ष नहीं चाहते वे तो भक्ति ही में मस्त रहते हैं। संसार से निरपेक्ष भक्त ही भक्ति पाते हैं। प्रेमलक्षणा भक्ति अत्यंत दुर्लभ है। यह उन्हीं भक्तों के हृदय

---

* तजोरे मन हरि विमुखन को संग। (तुलसी)

में उत्पन्न होती है जिनके विरक्ति है ( स्त्री, पुत्र, राज्य, मित्र, आदि को युवावस्था में ही त्याग देना विरक्ति है ) भगवान् के आवास स्थान में रहने को रुचि, क्षोभ के उपस्थित होने पर भी मन में क्षोभ न होना शान्ति, मान के योग्य होने पर भी मान न रखना अमानिता, कृष्ण की प्राप्ति की चिंता की आशा धृति, कृष्ण का निरंतर स्मरण आसक्ति है। कृष्ण में जो रत हैं वे उठते बैठते सोते जागते उन्हीं का स्मरण करते हैं। वे देह को त्याग कर कृष्ण में ही प्रवेश करते हैं। अभीष्ट-उत्तम अर्थ की अत्यंत चाहना को उत्कंठा कहते हैं। जिनकी कृष्ण में अति प्रीति है उनकी जिह्वा से कृष्ण नाम हरदम निकलता रहता है, इसी को स्वयं नामस्फूर्ति कहते हैं। विषय भोग में न फंसना प्रत्युदि है। कृष्ण का नाम लेके रोना चिल्लाना वाष्पोच्छ्वास है। हरि की कथा सुनना, ध्यान करना और लीला करना वयो-मोघ्य है। भगवान् के दासों को चाहना और उनके साथ वार्ता करना जनस्पृहा है। भगवान् के साथ जो प्रीति करते हैं भगवान् उनसे प्रीति करता है। जो एकांत में उनका संग करते हैं वह उनका संगी है। वासना छोड़ के जो भजन करते हैं उनका वह मित्र है। वह उन्हें ही प्यार करते हैं, उन्हीं की आज्ञा का वह पालते हैं जो सदा उनकी आज्ञा को पालन करते हैं। ढूंढने वाला ही उसे पासकता है सब लोग नहीं।

प्रेमलक्षणा भक्ति से युक्त भक्त के हृदय में जो अत्यंत स्निग्धता ( चित्त गद्गद् हो जाना, और अपने पराये की सुधि भूल जाना ) प्राप्त होती है उसी का नाम स्नेह है और इसी सुदृढ़ रति को स्नेहजा भक्ति कहते हैं। करुणा भक्ति दो प्रकार की है। माहात्म्य ज्ञान युक्त और केवला। भगवान् से पिता पुत्रादिक संबंध जोड़ के जो भक्ति की जाती है उसका नाम सांबंधिकी है। इसके द्वारा भी भगवान् के दर्शन होते हैं। भक्ति सब अनर्थों और पापों की नाश करने वाली है। भक्ति श्वपच को भी पवित्र बना देती है। भक्ति अविद्या के मूल को नाश करती है। जैसे अग्नि से सोने का मल नाश हो जाता है, वैसे ही भक्ति से देहात्मा का मल नष्ट होता है। भगवान् को प्रसन्न करने के लिए, व्रतविशेषज्ञान ब्राह्मणत्व, देवत्व और ऋषित्व उतना पर्याप्त नहीं है, जितनी भक्ति है। दान से तप से यज्ञ से, शौच से योग से, सांख्य से और स्वाध्याय से भगवान् उतने प्रसन्न नहीं होते जितने शुद्ध भक्ति से होते हैं। भगवान् भक्ति के वश में हैं।

धर्मशील से वैराग्यवान्, वैराग्यवान् से ज्ञानी, ज्ञानी से जीवन्मुक्त, जीवन्मुक्त से सिद्ध और सिद्ध से भी नारायण परायण भक्त श्रेष्ठ है। ऐसा भक्त करोड़ों में कहीं एक मिलता है। भक्त भगवान् को प्रेमपाश में बांध लेता है। हरि भक्ति से, संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण पाप आप ही आप नष्ट हो जाते हैं। जप, तप और दानादि से शरीर की शुद्धि हो जाती है किंतु हृदय की शुद्धि भक्ति से ही होती है। हरिभक्त किसी को दुःख नहीं देते। और न उन्हें कोई परिताप होते हैं। जिसकी हरि में

*स्वपितृतादि संबंधाभिमत्यारोपणा कृतिः। कृष्णमुद्दिश्य वा भक्तिरनुसांबंधिकी तु सा।

निष्काम भक्ति है सब गुण उसमें आपही आप आजाते हैं। भगवान् भक्ति वाले को ही मिलते हैं। संसारी जीवों को भक्त के समान कल्याणकारी और मार्ग नहीं है! भक्ति से संपूर्ण अनर्थ दूर होते हैं। हरिभक्त स्वयं पवित्र होकर औरों को भी पवित्र करता है। जो भक्त गद्गद् होके हंसता है, रोता है, लज्जा रहित हो के गाता है, और नाचता है वह त्रिभुवन को पवित्र करता है। भगवान् की पूजा से सब की पूजा हो जाती है। जिसने हरि की पूजा की उसने सब जगत् तृप्त कर दिया, उसके ऊपर स्थावर जंगम सभी प्रसन्न रहते हैं। तीर्थ आदि देर में पवित्र करते हैं भगवद्भक्त दर्शन मात्र से ही पवित्र कर देते हैं। भक्ति सब शुभ फलों और निविड सुखों की दाता है। भक्तिमार्ग सब से सुलभ और सुगम है। इसमें कभी भी कोई भय नहीं रहता है। योग जप करने वाले से देवता लोग ईर्षा करने लगते हैं क्योंकि उन्हें अपने राज्यादि के छिन जाने का भय रहता है किंतु भक्ति या भक्त से कोई ईर्षा नहीं करते क्योंकि भक्त सिवा भगवद्भक्ति के और कुछ चाहता ही नहीं। जिनका मन हरि में हैं वे सर्वदा सुखकाही अनुभव करते हैं। उन्हें कभी दुःख नहीं होता। सर्प उन्हें नहीं काटते, अग्नि उन्हें नहीं जलाती और जल नहीं डुबाता‡। परम आश्चर्य कारक सिद्धियां, शाश्वता मुक्ति और परमानंद पद प्राप्ति सब भगवद्भक्ति से होती हैं। हरि भक्ति के पीछे सारी सिद्धियां चेंटी की तरह चलती हैं। ब्रह्मानंद और मोक्ष भगवद्भक्ति के सामने तुच्छ हैं। भगवत् तत्व जानना कठिन है उसीके जानने के लिए भगवान् ने अपनी मूर्ति प्रकट की है। भगवान् के महामृत रूप चरित्र समुद्र में गोता लगाने (श्रवण) से समस्त श्रम दूर हो जाते हैं।

ध्रुवजी ने भगवान् से कहा है कि हे नाथ! भक्तों को जो आनंद आपके चरण कमल के ध्यान और आपकी कथा के श्रवण से होता है, वह आनंद ब्रह्मपद की प्राप्ति में नहीं मिलता। भक्त अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष नहीं चाहते केवल भक्ति चाहते हैं। देखिये भक्त प्रह्लाद ने भगवान् के बार बार आग्रह करने पर भी अन्य वस्तुवें न मांग कर केवल भक्ति ही मांगी। योगियों को चाहे भगवान् के दर्शन न हों किंतु भक्तों को अवश्य होते हैं। जिसका मन निर्मल हो गया है, सब कामनायें हट गई हैं, मन निरंतर हरि में लगा रहता है उसी को भगवान् मिलते हैं। मुक्ति की प्राप्ति चाहे सरल हो किंतु भक्ति की प्राप्ति बहुत कठिन है। भक्ति का अधिकारी विरला ही कोई होता है। भक्ति का फल भक्ति है। भक्तिके संपूर्ण अंग भक्तिके बढाने वाले हैं धन कलत्र आदि की प्राप्ति का वर्णन केवल रुचि बढानेके लिए है। भगवान् में होगया है प्रेम जिसका भक्ति से आर्द्र होगया है हृदय जिसका प्रमोद से उत्थित होगये हैं रोमांच जिसके और उत्कंठा से लगरही है आंसुवों की झड़ी जिसके ऐसा भक्त भगवत्स्वरूप है। भक्ति की प्राप्ति विशेषतः सत्संग और सद्ग्रंथों के श्रवण या पठन से होती है। करोडों जन्मों के पुण्य संचय से भक्ति का उदय होता है। अनादर से मूर्खता से परिहास से है और कपट से भी जो मनुष्य भगवद्भक्ति करता है वह तर जाता है। जिनका चित्त

‡ मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण परायणः, सुदुर्लभः प्रशांतात्मा कोटिष्वपि महामुने। (भागवत)

अज्ञानांधकार से आच्छादित रहता है उनके हृदय में भक्ति का अंकुर नहीं उगता। मनुष्य के तपका, श्रवण का, यज्ञका, सूक्त का, बुद्धिका और दान का अविनाशी फल विद्वानों ने भगवान् के गुणों का वर्णन कहा है।

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धि दत्तयोः। अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोक गुणानुवर्णनम्॥ (भागवत)

भगवान् की शरण जाने से माया का बंधन टूट जाता है। ईश्वर में जिनकी श्रद्धा नहीं है उन्हें भक्ति नहीं प्राप्त होती। श्रद्धायुक्त भक्त ही ज्ञान को प्राप्त करता है इसलिए और सब त्याग कर भक्ति करे। जो हिंसा नहीं करता, चोरी नहींकरता सत्य बोलता है सर्वदा पवित्र रहता है, इंद्रिय निग्रह करता है, वेदाध्ययन में रत रहता है, वह भक्त ईश्वर को प्रिय है। धर्म निष्ठा से मन निश्चल और शांत होता है और निष्काम कर्म से इच्छायें शुद्ध होती हैं। विवेक से यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। श्रद्धा और विश्वास भक्ति की रक्षा करते हैं। प्रेम से धैर्य होता है। प्रसन्नता होती है प्रेम में न झगड़ा है न भ्रम, है न मत्सर है, न विघ्न है। प्रेम आनंद का स्थान है, अकथनीय है। वे मूढ हैं जो दयाशील भगवान् से प्रेम नहीं करते। पापी और धर्मात्मा दोनों के लिये प्रेम का दरवाजा खुला है। अद्भुत प्रेम सबको पवित्र कर देता है भक्त कभी नष्ट नहीं होता।

भक्ति उपासना एवं मुक्ति का मूल है। प्राकृतिक संबंध से रहित भगवान् भक्ति से ही मिलते हैं। भक्त जब भगवान् की शरणागत हो जाते हैं तब भक्ति मातृवत् उनकी रक्षा करती है, और सब सिद्धियां देती हुई भगवान् की ओर खींचती है। भक्तों को प्रकृति का जाल नहीं फंसा सकता। देश, काल, कर्म उनको बाधा नहीं देते, वे कर्म बंधनों से मुक्त हो जाते हैं। भक्तिमान् योगी ही सर्वश्रेष्ठ है। भक्ति भक्त के चित्त को पवित्र करके गंगा की धारा के सदृश उसे भगवान् की ओर ले जाती है। साध्वी स्त्री जैसे पति को वश में कर लेती है उसी प्रकार भक्ति ईश्वर को वश में कर लेती है। भक्त को भगवान् सुलभ है भक्ति में किसी भी सामग्री की आवश्यकता नहीं है, केवल भाव चाहिये। भगवान् भाव से ही प्रसन्न होते हैं धन दौलत से नहीं। भगवान् की साकार मूर्ति का दर्शन भक्ति के ही द्वारा होता है। जिस प्रकार पंख रहित चिड़िया के बच्चे अपनी माता को, भूखा बछड़ा दूध को, विरहिणी पतिव्रता पति दर्शन को लालायित रहती है उसी प्रकार भक्त का मन भगवान् के दर्शन को लालायित रहता है। साकार उपासना के द्वारा भक्त अनायास संसार सिंधु से तर जाता है। ईश्वर पथ के पथिक होने के लिए सबसे प्रथम भक्ति करनी चाहिये। भक्ति से ही ईश्वर हृदय में स्थित होते हैं। भक्त शीघ्र ही भक्तिसे धर्मात्मा हो जाता है और शांति लाभ करता है। पुनश्च भक्ति दो प्रकार की है एक अंतर प्राकाश्य, दूसरी अनुध्यान प्राकाश्य। अहंकार सत्वादि भेद से भक्ति त्रिविधा है। अहंकार से उत्पन्न सात्विकी अंश से जो हो उसे सात्विकी, अहंकार से उत्पन्न राजसी अंश से जो हो उसे राजसी और अहंकार से उत्पन्न तामसी अंश से जो उत्पन्न हो उसे तामसी कहते हैं। सात्विकी भक्ति में भोगेच्छा नहीं होती है, राजसी में भोगेच्छा होती है और तामसी भक्तिमें मोह युक्त भोगेच्छा होती है। उक्त त्रिविध भक्तियों के द्वारा ईश्वर के भाव,

जीवपक्ष में आकर्षित होते हैं और ईश्वर भी भक्ति सत्ता के मेल से जीवों पर कृपा करता है। भक्तिके द्वारा ही भक्त सगुण से निर्गुण में जाता है। भक्ति से सत्य भाव उदय होता है। भक्ति से ईश्वर में प्रेम होता है और उससे उत्पन्न हुआ सुख कल्पांत स्थायी है। इन्द्रियों और काम क्रोधादि के एकत्र मिलने से भक्ति स्थिर होती है। सत्कर्मों से भक्ति उत्पन्न होती है। भक्ति के बिना सब कर्म निष्फल हैं भक्ति से ही ईश्वर का ज्ञान होता है। यदि ईश्वर को जानना हो तो भक्ति करो। भक्त भक्तिसे त्रिगुण से रहितहो जाता है यज्ञ, दान सकाम कर्म हैं और तपस्या निष्काम कर्म है। भक्तिएवं मुक्ति निष्काम कर्मसे ही होती है। भक्तिका विशेष वर्णन अथर्व वेद में है। भगवान् के गुणकीर्तन और श्रवण से मनमें भगवान् का अनुभव होने लगता है। भक्त को ही भगवान् दिखाई देते हैं भक्तिहीन को नहीं। यद्यपि भगवान् सबके साथ हैं परन्तु सबको दिखाई नहीं देते जिन्होंने भक्ति के द्वारा अंधकार दूर कर दिया है उन्हें ही दिखाई देते हैं। जो भक्ति रूप परम ज्योति का संग्रह नहीं करते वे अंधकार में पड़े रहते हैं। ईश्वर के पास में रहते हुए भी लोग उसे नहीं देख सकते। साधक जब कामना और वासना को भगवान्मय कर देता है तब भक्तिहोती है भक्तिके द्वाराही भक्त ईश्वर का स्वरूप अनुभव करता है और अपना स्वरूप उन्हें दिखा सकता है। भक्ति योगका प्रधान अंग रति है। रति बिना किसी भी वस्तु का अनुभव नहीं होता। किसी एक विषय में चंचलता रहित होकर मनके लग जाने को रति कहते हैं। भाव पूर्वक भगवान् के चरित्र सुनते २ भक्ति बढ़ती है और भक्तिकी वृद्धि से वासनाओं का नाश होके चित शुद्ध होता है। हृदय शुद्धि के लिए भक्तिचाहिये भक्तको भगवान् के सिवा किसी का आसरा न करना चाहिये और भगवान् के उपकारोंको मानना चाहिये। भक्त भगवद्भक्ति के द्वारा मृत्यु के पहिले ही सब पदार्थों से विरक्त हो जाता है।

सब साधनों का सार भगवद्भक्ति है और भक्ति की दृढ़ता के लिए सब साधन हैं। जो भगवान् को भजता है भगवान् उसे अवश्य भजते हैं। स्मरण सर्व श्रेष्ठ है। स्मरण की चार अवस्था हैं। रसना से नाम तो उच्चारण करना पर हृदय से अचेत (यानी ध्यान कहीं और रहे) रहना यह निकृष्ट अवस्था है परन्तु फिर भी अच्छी है क्योंकि व्यर्थके झगड़ों से तो बचते हैं। चितसे भजन करना किंतु चित्तके चंचलहोने परभी उसे भजनमें लगाना मध्यम अवस्था है। साधक का हृदय भजन में और भजन का रस चित्तमें ऐसा प्रबल हो कि दूसरे कार्योंको छोड़के केवल उसी ओर मनको खींचे यह उत्तमा अवस्था है। जिसका स्मरण करना हो उसीके स्वरूपमें लीन होजाना यह सर्वश्रेष्ठ स्मरण की चौथी अवस्था है। स्मरण ही ईश्वर के दर्शन की प्रथम सीढ़ी है। क्योंकि उनके साथ प्रीति करने से वह भी भगवत्प्रिय हो जाता है। यदि साधक भक्त का चित्त कहीं अचेत हुआ तो भगवद्भक्त उसे सचेत कर देता है। आचार विचार से चलने वाले, भक्तिमें उमर बिताने वाले, सांसारिक कार्यों में आसक्त न होने वाले, एकांत में भगवान् का भजन करने वाले, काम का त्याग करने वाले, गुप्तदान देने वाले, और भक्तों के साथ मित्रता करने वाले के ऊपर ईश्वर प्रसन्न होते हैं। बुद्धिमान् से, (मूर्ख से नहीं) कोमल स्वभाव वाले से, और जो सत्कर्मों में दृढ़ हो उससे मित्रता करे।

धन, मान, बेष और पाप में चार परदे हैं । इन्हीं से जीव आच्छादित है। इसी से ईश्वर को नहीं देख पाता। जिसके चारों परदे दूर होगये हैं वही भक्ति का अधिकारी है। शुद्ध भूमि में ही बीज जमता है ऊपर में नहीं। भक्ति की प्राप्ति में शुद्ध आहार विहार की भी आवश्यकता है। आहार जीवन निर्वाह मात्र करना चाहिये अधिक नहीं। भक्त को चाहिये कि भजन करे या मौन रहे। व्यर्थ बकबक न करे क्योंकि इससे बहुत हानि होती है। तृष्णा ईर्षा माया और क्रोध को जीतना चाहिये। भक्ति में दंभ न करे। दंभ पांच प्रकार का है। बदन का रंगना, रंगीन वस्त्र पहरना, होठ चलाना, लोगों को देख कर राम राम कहने लगना और बहुत शिष्य करना। इनका सबका त्याग करे। भक्त जब तन मन धन सब अर्पण कर देता है तब भक्ति मिलती है। भक्ति कोई सस्ती चीज नहीं है। भक्त लौकिक पार-लौकिक सुखों को तुच्छ मानता है। माया से छूटने के लिए मायिक पदार्थों को पहिले छोड़े। भक्त की संपूर्ण क्रिया भगवत् के लिए ही होती है अपने लिए नहीं भगवान् के सिवा किसी से प्रीति करना मूर्खता है।

सज्जनों का संग, ईश्वर पर विश्वास, भगव-त्स्मरण, परमेश्वर के स्वरूप का चिंतन, कल्याण-कारी चेष्टा, और कर्तव्य पालन ये ६ भक्ति के प्रधान साधन हैं। भजन से विषयों में वैराग्य होता है। धन, रूप, यौवन कुल, जाति, राज्य, विद्या और मादक पदार्थ, इन आठ मदों को त्याग दे। क्योंकि जहां किसी भी प्रकार का मद होता है वहां भक्ति नहीं होती। ईश्वर में पूर्ण विश्वास होना भक्ति की पराकाष्ठा है। किसी से न मांगना और बिना मांगे जो वस्तु मिल जाय, उसी में संतोष करना एवं धर्म से विचलित न होना सच्चे भक्त का लक्षण है। भक्तिही जीव को ऊपर उठाती है, भक्ति ही बढाती है. भक्ति ही ईश्वर के पास पहुंचाती है और भक्ति ही ईश्वर को दिखलाती है भगवान् भक्ति के वश में हैं. भक्ति ही सर्व श्रेष्ठ है।

# भगवत् माया

[ ले० श्री ... ... ]

**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।**
**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते**

[गीता अ० ७ श्लोक १४]

धन जन आदि वैभव देकर एक बार हर्षाती है।
पुनः उसी से सब कुछ हर कर वन वनमें भटकाती है॥
कभी हंसाती, कभी रुलाती, अद्भुत नाच नचाती है।
कैसी गति है माया तेरी, अज्ञों को भरमाती है॥
धन जन और भुवन रूप में प्रकट छवि दिखलाती है।
मूढ़ों का अभिमान देख कर दामिनी सी छिपजाती है॥
माया मय तेरी लीला से ऋषि मुनि डर जाते हैं।
बड़े बड़े योद्धागण भी तुझ से ही भय खाते हैं॥
असंतों को दुःख देनेवाली, प्रसाद रूप है संतों को।
अपराधी को यम दंड रूप है, मातृ रूप है भक्तों को॥
वर्षा ऋतु की गंभीर नद सम, दुर्जनों के हेतु है।
भगवत् समीप ले जाने वाली, भक्तों को तू सेतु है॥

# भगवदङ्क

[ ले० "श्रीपति" ]

मां के अंक में बैठ कर कनखियों से किसी के तिरस्कार का उत्तर किस प्रकार दिया करता था; एकही दो लोरियों में चन्द्रमा के साथ खेल खेलने वाली ज़िद और आरसी में प्रतिविम्ब न पकड़पाने वाली निराशा कैसी सरलता से भूल जाया करता था; उस गोद में कितना आमोद-प्रमोद था, विनोद की कितनी सामग्री थी; क्षण में मान करना, मचल जाना, हंसना और क्रीड़ा करना इत्यादि २ शैशव के वे मनोहारी दृश्य आज भी कभी २ क्षण मात्र के लिये अपनी क्षीण आभा दिखा जाते हैं किन्तु अब न तो वह स्वभावोचित सरलता ही अवशेष रही और न वह प्रसन्नता।

परिवर्त्तनशील संसार में पैर रखते ही मानव प्रकृति में मोह की मादकता का सञ्चार हुआ; माया ने "मैं मेरा, तू और तेरा" का पाठ पढ़ाया; बुद्धि पर अज्ञान का परदा पड़ा और शैशव, अपने बाल्य-विनोद की समस्त सामग्री ले, जीवन को चिन्ता की प्रज्वलित-चिता में अकेला छोड़, सदा के लिये विदा लेगया। ज्यों २ जिज्ञासा बढ़ी, राग की मात्रा अधिकाधिक उन्नति करती गई; शान्तिसुधा-सागर में अशान्ति बाडव ने बसेरा लिया, आत्मविस्मृति की मनोहर लहरियों में विषय-वासना की जलन समा गई; काम क्रोध के झकोरों ने जीवन-नौका को झकझोरना शुरू कर दिया, संयम नियम की पतवार हाथ से छूट गई, पुण्य की बल्ली पाप-भंवर में जाती रही और अन्ततोगत्वा अज्ञान के प्रवाह में पड़ी हुई जर्जरजीवन-तरी प्रायश्चित्त की समीपवर्ती पर्वत मालाओं से जाकर टक्कर खाने लगी।

जीवन के उस स्वर्ण-प्रभात में माता का पुनीत-अंक सरक्षित दुर्ग था; सुदृढ़ शिविर था, अभेद्य कवच था। भक्ति भाव-भरी-लोरियां त्रिविध ताप की हरने वाली निराशा में अवलम्ब एवं कल्याण कारी थी; अलौकिक शक्ति की सञ्चारक एवं आनन्द से ओतप्रोत करने वाली सिद्धियां थीं किन्तु अब वह नैसर्गिक सुख, कल्पना के उपवन का सा कुसुम एवं स्वप्न के ऐश्वर्य की सी मादकता के अतिरिक्त और कुछ भी प्रतीत नहीं होता।

आकाश में आधार हीन पतंग के समान, पंख हीन पक्षी के सदृश एवं टूटे हुये नक्षत्र के तुल्य यह जीव भी किसी अंक के आश्रय विना कहीं टिक नहीं सकता। इसे भी किसी ऐसे आधार की आवश्यकता है जो प्रमाद के गर्त में गिरने से वासना वह्नि में पड़ने से इसे बचाता रहे; माया के बन्धन से मुक्तकर मोह कूप से बाहर निकाले तथा सन्मार्ग की ओर अग्रसर करता हुआ अक्षय शान्ति प्रदान करे। कोई ऐसा उदार हो जो अवगुण छिपाले, अशान्ति और दुःख हरले, दोष अपनाले और अविद्या दूर करदे; साथ ही इन सब के स्थान में हमारे हृदय को सद्ज्ञान एवं शक्ति का अखण्ड भाण्डार बनादे।

किन्तु क्या कोई ऐसा उदार मिल सकेगा जो ऐसे व्यवसाय को पसन्द करता हो? जो हमारे विषय वासनाओं के विषबीज, पाप के कटु फल तो हम से खरीद ले और मूल्य में दे वह वस्तु जो किसी भी

मूल्य पर खरीदी न जासके ? इतनी विशालाता, ममता एवं उदारता मां के अतिरिक्त और भी किसी अंक में पाई जा सकती है ? उत्तर आशा से युक्त और "हां" में मिलता है।

माता की आनन्दमयी गोद में आने से पूर्व गर्भावस्था में, जब मां भी गर्भ सहित किसी अनन्त की गोद में त्राण पारही थी, हम जिस अंक के आश्रित थे वही 'भगवदंक' ही हमें उक्त सभी विभूतियां प्रदान कर सकती है। 'भगवदंक' विश्व के समस्त अंकों से कहीं अधिक विशाल एवं सुखप्रद है, जो प्रत्येक प्राणी के लिये प्रत्येक पल खुला रहता है। ध्रुव इसी अंक में पले, प्रह्लाद को इसी अंक में त्राण मिला, और उत्तरा के गर्भ में बालक परीक्षित की रक्षा इसी अंक द्वारा हुई। 'भगवदंक' में कितनी दयालुता, वात्सल्य एवं करुणा है इसका पता गज, गीध, गणिका सरीखे अधमाधम प्राणियों को लग चुका है।

वे मनुष्य जो कर्त्तव्य से मुख मोड़ विषयों में मन लगाये हुये हैं, जो स्वेच्छा चारिता से अपना सब कुछ खोचुके हैं, जो काम क्रोध इत्यादि प्रबल शत्रुओं के बन्दी बन चुके हैं उनका उद्धार एक बार 'भगवदंक' में आजाने से सहज ही हो सकता है। आने वाले अपने नारकीय जीवन पर विचार करते हुये भले ही संकोच करें किन्तु उसकी तो यही विशेषता है कि पतित से भी अधिक पतित प्राणी को वह बड़े प्रेम से ग्रहण करता है; जो शरणागत उसकी इच्छा करते हैं अवश्य ही सब पापों से मुक्त कर वह उन्हें अङ्गीकार करता है। शशि की शीतल चन्द्रिका जिस प्रकार संसार के सन्ताप को दूर कर देती है, उस अंक की विमल ज्योत्स्ना उसी प्रकार त्रयताप को हर लेती है।

जिस समय संसार के सभी अपने पराये घृणा से मुख मोड़ लेते हैं, अपनी इन्द्रियां अपना साथ छोड़ देती, हैं पाप का पश्चात्ताप प्राणों को अस्तव्यस्त करने लगता है, मन की आसुरी वृत्तियां असह्यवेदना उत्पन्न कर देती हैं उस समय हमारे लिये कहीं भी त्राण मिलना कठिन नहीं वरन् नितान्त असम्भव है। जो व्यक्ति उस दशा में जिस किसी भी भांति 'भगवदंक' में आने की चेष्टा करता है भगवान्, स्नेहार्द्र जननी के तुल्य अवश्य ही उसे ग्रहण करते हैं। वे सन्तप्त प्राणी, जो निर्भीक होकर आत्मसमर्पण करने के लिये तय्यार हो जाते हैं, निष्कपट भाव से उस अंक में आने की लालसा प्रकट करते हैं, प्रसन्नता से आसकते हैं; भगवदंक हर्ष से उन्हें स्वीकार करने के लिये तय्यार है। जिस अंकने गुह निषाद को अपनाया वह कितना प्रेम परिपूरित, कितनी उमंग से भरा हुआ एवं कितना भुवन विख्यात करुणा का कोष है।

'भगवदंक' राजा, राव, रंक के भेद भाव से रहित है; यहां सिद्ध एवं सिद्धि हीन सभी समान सत्कार पाते हैं; यह वह हाट है जहां अहर्निशि, कौड़ियों के मूल्य पर अनन्त सुखकी रत्न-राशि लुटा करती है; यहां लोक और परलोक के बनने बिगड़ने का भय नहीं रहता; यहां आते ही जन्म का दुःख एवं मृत्यु का डर दूर होजाता है; भक्त, ज्ञानी, वैरागी कोई भी हो किसी मार्ग से आसकता है; यहां स्थान की कमी नहीं वरन कमी है आने वालों की। जिस किसी का मन चाहे किसी भी समय किसी भी अवस्था में, केवल सच्चे हृदय से एक बार भगवत्स्मरण करता हुआ, 'भगवदंक' में आसकता है।

# भगवान् और भागवत्

[ले० श्री० प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी शास्त्री]

जयतु जयतु देवो देवकी नन्दनोऽसौ,
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णि वंशप्रदीपः।
जयतु जयतु मेघ श्यामलः कोमलांगो,
जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः॥

हे हृदयेश ! तुम्हें कहां पाऊं ? हे प्राणेश ! तुम्हें कैसे ध्याऊं ? नाथ ! इस जीर्णशीर्ण जीवनतरी के तुम्हीं एक मात्र पतवार हो। इस तिमिर अंधकारमय नीरव प्रदेश में तुम्हीं पुण्य प्रकाश हो। प्रभो ! तुम्हारे बिना जीवन जीवन न होकर जंजाल बना हुआ है। हे अशरण के शरण। मैं और क्या करूं ? करने को और कुछ दीखता ही नहीं। एक मात्र तुम्हारी ही खोज, बस तुम्हारा ही अन्वेषण, यही इस जीवन का व्यापार है। तुम्हारी बांकी झांकी मिल जाय यही इस कंगाल की याचना है। यह पापी जियरा तुम्हारी मंद मुसकान का भूखा है, इस जीवन में यदि एकबार भी यह तुम्हारी तिरछी चितवन देख लेता तो जीवन की सभी साधें मिट जातीं परन्तु प्यारे ! तुम्हें पाऊं कैसे ?

तुम कौन हो ? मैं नहीं जानता नाथ ! तुम्हारी सूरत काली है या गोरी इसका मुझे क्या पता ! तुम कहां रहते हो ? इतना जानता हूं कि तुम बहुत ही दूर रहते हो। कितनी दूर ? यह नहीं जानता। कैसे जानूं प्रभो ! तुम तो आंखों से ओझल हो। मैं तुम्हें चाहता हूं, बस तुम्हें ही। पर तुम्हें पहिचानता नहीं। कैसी विचित्र बात है ? विचित्र इसीलिये है कि तुम स्वयं विचित्र हो। जब मुझ से कोई कहता है। "पागल क्यों हुए हो ! सिड़ीपन छोड़ो। जिस चीज का नाम निशान नहीं पता ठिकाना नहीं उसके पीछे पड़ना पागलपन नहीं तो और क्या है ?' मैंने मन में सोचा बात तो ठीक है। हां जब मैं उसे जानता ही नहीं तो पाने पर भी कैसे पहिचान सकता हूं कैसा विचार था सोचता रहा, क्यों, आखिर ? वह मुझसे इतना छिपता क्यों है ? जीवन में एक ही तो साध है, उसे भी वह निष्ठुर मसले डालता है, घुला घुला कर मार रहा है, जब विचारता हूं तभी सोचता हूं वह दूर है, बहुत दूर।

इन विचारों का प्यारे ! कुछभी असर न हुआ। गति रुकी नहीं बस वही एकइच्छा, सोचा था तू संसार में कहीं तो मिलेगा ही। यही सोचकर जो जो वस्तुएं प्रिय लगीं उन्हीं को गौर से देखा उन्हें पकड़ा। क्षण भर शान्ति भी मिली, किन्तु वह अस्थाई थी इसी लिए समझ सका कि तू उनसे परे है। मैं चाहता यह था, कि जिसके पाने पर फिर किसी के पाने की इच्छा न रहे। संसारी किसी वस्तु में ऐसा गुण दीख नहीं पड़ा। इसलिए मेरा दिल टूटने लगा। तो क्या जीवन की साध पूरी न होगी ? क्या मैं इसी प्रकार छटपटा छटपटा कर चल दूंगा ? वह मेरा आराध्य देव मुझे न मिलेगा क्या ?

किसी ने कहा –"वह कहीं हो तब तो मिले? तुम्हारा वहम है। अच्छा यदि है तो बताओ कैसा है ? उसके अस्तित्व का क्या प्रमाण है"।

यह सुनकर मैं खिसिया कर उसके मुंह की

ओर देखने लगा। नाथ! तुम्हीं कहो उसे क्या उत्तर देता। तुम्हारा अस्तित्व किन्हीं प्रमाणों से सिद्ध हो सकता है क्या? मैंने सुना है तुम अनादि हो, तो प्रभो! फिर पीछे बने हुए प्रमाण तुम्हें कैसे सिद्ध कर सकते हैं। तुम्हें 'सगुण' कहूं तो प्रभो! इसमें मुझे लज्जा आती है। बापुरे कल के बने हुए सत्व, रज, तम तुम्हें कैसे बांध सकेंगे? और यदि निर्गुण कहूं तो तुम्हें एक हृदय में बन्द करना है किन्तु प्यारे तुम तो हद बेहद दोनों से परे हो न? तुम हो, बस इतना ही तुम्हें जानता हूं। क्यों हो! इसका मेरे पास कुछ भी उत्तर नहीं। तुम्हें क्यों चाहता हूं, क्योंकि तुम चाहने योग्य हो तुम्हें चाहना चाहिये इसीलिए तुम्हें चाहता हूं।

संसार में जब से आया हूं उपहास सह रहा हूं क्योंकि मैं तुम्हारे स्वरूप से अनभिज्ञ हूं। इसीलिए स्थान स्थान में तुम्हारा भ्रम हो जाता है। प्रत्येक वस्तु की ओर भूखे बाघ की तरह टूट पड़ता हूं, कि कहीं इसमें न छिपा बैठा हो। मैंने इतना सुना था कि तुम "सुन्दर" हो इसीलिये जिन वस्तुओं में अधिक सौन्दर्य्य है चित्त स्वाभाविक ही उनकी ओर झुकता है क्योंकि वह तुम्हारे दर्शनों का भूखा है। मेरे इस पागलपन को देख कर लोग कहते हैं-"विक्षिप्त है विक्षिप्त। भला भगवान कहीं ऐसे मिलते हैं? अरे कुछ पुण्य धर्म करना चाहिए।' मैं सोचता हूं 'बात कहते तो ठीक हैं, मेरी तो धर्म में आस्था ही नहीं बिना धर्म में आस्था हुए वह न मिलेगा क्या? नाथ! यदि मेरी धर्म में आस्था नहीं है तो इसमें मेरा क्या दोष? एक आदमी अंधा ही पैदा हुआ। यदि जीवन में वह काले गोरे की पहिचान नहीं कर सकता है तो इसमें उस बेचारे का क्या अपराध? मेरी धर्म में आस्था नहीं है तो मैं क्या करूं?

फटी लंगोटी और मैली चदर ओढ कर जब निकलता हूं तो लोग कहने लगते हैं -"चले हैं साहब भगवान को पाने। पास में कानी कौड़ी भी नहीं। ऐसे कहीं भगवान मिलते हैं'। उनकी बात सुनता हूं और अपनी फटी कौपीन को टटोलने लगता हूं, सचमुच में पास में एक पैसा भी नहीं। क्या बिना पैसा के प्रभु नहीं मिल सकते। उनके यहां जाने को भी टिकट चाहिये क्या? चाहूं तो भी मैं नहीं खरीद सकता क्योंकि पास में कानी कौड़ी भी नहीं।

उस दिन कच्चे बेल का शरबत पी रहा था। नाक भौं सकोड़ कर एक महाशय बोले "ऐसे जीवन से तो मरना ही अच्छा, अरे यह भी कोई जीवन है, अच्छे अच्छे भोगों का उपभोग करना तो दूर रहा भर पेट रोटी भी नहीं मिलती'। मैंने यह बात सुनी और चुप्पी साधली क्या कहूं? उसे यदि दूं भी तो क्या उत्तर दूं?

प्यारे! यह सब सहता हूं। किसके लिए तुम्हारे लिये, कोई कुछ कहता रहो मुझे उनसे क्या मतलब? तुम मेरे स्वामी हो मैं तुम्हारा सेवक हूं, तुम मेरे पिता हो मैं तुम्हारा पुत्र हूं, तुम मेरे आराध्य हो मैं तुम्हारा पुजारी हूं। तुम मेरे एक मात्र दाता हो मैं तुम्हारे द्वारका अकिंचन भिखारी हूं। सदा से तुम्हारी कृपा का भूखा रहा हूं तुम्हारी दया हो, इसीलिए दीन होकर तुम्हारे दरवाजे पर पड़ा रहता हूं।

प्यारे! यदि मैं धार्मिक नहीं हूं तो तुमसे धर्म की याचना भी तो नहीं करता। मेरे सर्वस्व! उनका मैं करूंगा ही क्या? मेरी फटी कौपीन ही

भली है। तुम्हारे दरवाजे पर आकर भी मैं अच्छे अच्छे व्यंजनों की वाञ्छा नहीं करता। तुमने मुझे जो कुछ देरक्खा है उसी पर मुझे सन्तोष है। तुमने भी मेरे कर्मों के ही अनुसार दिया। मैं अपने कर्मों को मेटने की तुम से प्रार्थना नहीं करता। पूर्व कर्मों के अनुसार जो होता है, उसे होने दीजिये फिर भी हे विश्वम्भर! मैं तुम्हारे द्वार पर मांगने को ही खड़ा हूं।

कर्म की रेख को मिटवाने की मेरी इच्छा नहीं। जन्म मृत्यु के बन्धन से छूट कर मुक्त हो जाऊं इसके लिये भी मैं तुम्हें कष्ट देना नहीं चाहता। मेरे आराध्य! कमलों की भांति कोमल ये आपके युगल चरण मुझे बहुत ही प्यारे लगते हैं। इन काले काले चरणों की कोमलता, इनके नीचे जो लालवर्ण की आभा है मेरा मानस भ्रमर इसी रस का लोलुप है। तुम्हारे इन चरणों को जन्म जन्मान्तरों तक सुहराया करूं। इन पादपद्मों की पराग पांशुको सदा ही अपने मस्तिष्क पर धारण करता रहूं। यही मेरी हार्दिक इच्छा है। इसी भीख के लिये इतने दिनों से आशा लगाये बैठा हुआ हूं नाथ!

नास्था धर्मे न वसु निचये नैव कामोपभोगे।
यद्भाव्यं तद्भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपम्।
एतद् प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि।
त्वत् पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु।

मेरी अभिलाषा सुनली आपने? न जाने क्यों मैं और कुछ नहीं चाहता यदि चाहूं भी तो वह मेरा पाप है। उसे मेरी हार्दिक इच्छा न समझ लीजियेगा। धनकी इच्छा यदि कभी उठती भी हो तो वह मेरा पाप है। लोगों से प्रतिष्ठा पाने के लिए व्याकुल हूं तो वह मेरा व्यभिचार है। सांसारिक सुखों के लिये झटपटाऊं तो वह मेरी नीचता है। सुख की वांछा उठे तो इसे मेरी मनकी मलिनता समझ लीजियेगा। मेरी जो इच्छा है उसे तो हे कमलनयन! मैं पहिले ही बताचुका हूं। तुम पूछ सकते हो कि आखिर मेरे चरणों में रक्खा ही क्या है? कुछ और अच्छी चीज क्यों नहीं मांग लेते। अरे कुबेर के पास जाकर भी कानी कौड़ी की ही याचना की। चक्रवर्ती के समीप में भी एक टुकड़े के ही लिए हाथ फैलाया कुछ सुखकी सामग्री मांगी होती चरणों की धूलि में क्या रक्खा है? नाथ! तुम ठीक कहते हो या गैर ठीक, इसे मैं कैसे कहूं? किन्तु उन चरणों में क्या है? अहा इसे न पूछिये। कैसे बताऊं कि क्या है? गूंगा कैसे बतावे कि मिश्री में क्या आनन्द है? ओ प्यारे। एकबार उन्हें स्पर्श तो करने दो। एक बार उस सुख के सागर में डुबकी न सही तो मज्जन करने की ही आज्ञा तो दे दो। तब फिर जो तबियत आवे पूछना। तुमने यह जो पूछा कि उन चरणों की वन्दना से चाहता क्या है, सो उसे भी बतादूं? अच्छा तो सुनो:-

नाहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्व हेतोः।
कुम्भी पाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम्॥
रम्या रामामृदु तनुलतानंदनेनापि रन्तुम्।
भावे भावे हृदय भवने भावयेयं भवन्तम्॥

आपके चरणारविन्दों की वन्दना इसलिये नहीं करता कि संसार के दुःख सुख, शीत उष्ण आदि द्वन्द्वों से छूटकर निर्द्वन्द्व होजाऊं और न प्रभो! यही इच्छा है कि भयंकर कुम्भीपाक नामक नर्क से ही छुटकारा मिल जाय। तुम कहोगे कि नर्क की छूटने की इच्छा न सही किन्तु स्वर्ग के उपभोगों की तो इच्छा जरूर ही होगी। अहा! जिस नन्दन वन में

सदा ही वसंत की बहार बनी रहती है। कभी न मुरझाने वाले पारिजात और कल्पवृक्ष के पुष्पों की मालाओं को धारण किये हुए तरुणी अप्सराएं अपनी मंद मंद गति से जहां हास्य विलास करती रहती हैं, ऐसी देवाङ्गनाओं के साथ उस आनन्द काननमें क्रीड़ा करने की किस की इच्छा न होगी ? किन्तु हे सुख के सागर ! मैं सत्य सत्य कहता हूं कि इस इच्छा से भी आप के चरणों का चिन्तन नहीं करता कि मुझे वे स्वर्ग के सुख प्राप्त हों मेरी जो एक मात्र इच्छा है वह यही कि मेरे मानस मंदिर में आपकी मनोहर मूर्ति सदा विराजमान रहो आवे फिर चाहे मैं किसी भी योनि को क्यों न प्राप्त होऊं, इसकी चिन्ता नहीं।

मेरी इच्छा ठिगने की बादल छूने की इच्छा के सदृश हो सकती है। हो, इसके लिए मैं क्या करूं किन्तु जो मेरी इच्छा है वह तुम्हें बतादो। छिपाना भी तो पाप है न ! एक मात्र यही इच्छा है। नाथ ! तुम्हारी कृपा होगी, इसका मुझे भरोसा है, तुम दयालु हो यह मैंने सुन रक्खा है, आर्तों की पुकार तुम्हारे दरबार में सुनी जाती है इसका मुझे विश्वास है, तुम भवभय मोचन हो ऐसा सब कोई कहते हैं। तुम्हारे द्वार पर जाकर आज तक कोई रीते हाथों नहीं लौटा यह जगत् प्रसिद्ध बात है। पापियों को भी तुमने आश्रय दिया है ऐसी असंख्यों किंवदन्तियां सुन पड़ती हैं। तुम्हारे सम्बन्ध में यह भी प्रसिद्ध है, कि तुम अपने शरणागतों का दुःख देख नहीं सकते हो। तुम्हारा हृदय ब्रज के नवनीत से बना है जो तनक सी गरम आह के लगते ही पिघलने लगता है इसे सब कोई जानते हैं, किन्तु हे मेरे अपरिचित देव ! मेरे मुख से एक आह भी तो नहीं निकलती। यदि एक गरम आह भी निकल पड़े तो सब काम बन जाय। सभी मनोरथ पूरे हो जांय। पर प्यारे ! बिना तुम्हारी कृपा के वह बापुरी आह भी तो नहीं निकली। तुमने तो सब के ऊपर अपना काबू कर रक्खा है, सब के ऊपर तुम्हारा ही अधिकार है। तुम्हारी बिना इच्छा के पत्ता भी तो नहीं हिल सकता। अब मैं करूं तो क्या करूं ?

जीवन की सभी उमंगों को दबाये बैठा हूं। किसी से अपनी बात कहता भी नहीं। किसी के सामने अपना दुखड़ा भी नहीं रोता। रोकर करूं भी क्या ? लोग सुनकर हंसेंगे और खिल्लियां उड़ायेंगे। वे मेरे दुख को कैसे जानेंगे।

'जाकर लागी सोइ तन जाने को जाने पीर पराई'।

पराई पीर जानने वाले तो नाथ तुम्हीं हो। अतः कभी अवसर आने पर तुमसे ही सब खोल खोल कर कहूंगा। इसीलिये यह सोच कर बैठा रहता हूं।

जो जब के प्यारे मिलें सब दुख आखूं रोय।
चरणों नीचे बैठ कर, कहूं जो कहनो होय॥

बस सभी आशाएं उसी दिन के लिये सुरक्षित रख छोड़ी हैं। सभी मनोरथ उसी दिन प्रकट होंगे। सभी इच्छाएं उसी दिन पूरी होंगी। दिन गिन रहा हूं, पल पल का हिसाब रखता हूं सोचता हूं:-

वह दिन कैसा होयगा, जब गुरु गहेंगे बांह।
अपना कहि बैठावहीं, चरन कमल की छांह॥

तुम वैसे थोड़े ही मिलोगे। खून पानी एक करना होगा, लोक व्यवहार भुलाने होंगे, तुम्हें देखने को सर्वस्व स्वाहा करना होगा। मेरे स्वामी ! तुम मेरे पास ही तो खड़े हो किन्तु अपने काले बदन की काली परछांई मेरी आंखों के सामने डाल

रखी है। इसलिये इस कारे अंधकार के कारण मैं तुम्हारा कमल मुख नहीं देख सकता हूं। इस अंधकार का जब नाश हो तब तुम्हारी बांकी झांकी हो, तब तुम्हारा मनोहर मुखड़ा दीख पड़े, तब तुम्हारी श्यामरी सलौनी सूरत नजर आवे। अंधकार दूर कैसे हो? यही कठिन समस्या है इसे भी हल करना होगा। कहीं से दीपक का प्रबन्ध करना होगा। दीपक के प्रकाश में ही तुम्हारा मनोहर मुखड़ा दीखेगा। कैसे दीपक से?

## भागवत्

या तन को दिवला करो, बाती मेलो जीव।
लोहू सींचो तेल ज्यों, तब मुख देखो पीव॥

एक दिन मैंने सोचा-'वह इतना निष्ठुर क्यों है, कितने प्राणी उसके लिए छट पटा रहे हैं, कितने चिल्ला रहे हैं, किन्तु उस खिलाड़ी के कानों पर जूंभी नहीं रेंगती। वह तो विश्वंभर है, सर्वतन्त्र स्वतंत्र है, सब का स्वामी है, वह क्यों हमारी अनसुनी कर देता है। या तो हम पुकारना ही नहीं जानते या वह सुनता नहीं, यदि सुनता भी है तो सुन कर टालमटोल कर जाता है। फिर सोचा-'वह भी शायद किसी के बन्धन में हो'। पर यह हो नहीं सकता वह तो स्वतन्त्र ठहरा, वह किसी के बन्धन में क्यों रहने लगा? सोचते सोचते उन का एक वचन याद आगया जो उन्होंने वैकुंठ में महर्षि दुर्वासा जी से राजा अंबरीष के सम्बन्ध में कहा था उस समय उन्होंने कहा था-'हे ब्राह्मण मुझे अपने भक्त बहुत ही प्रिय हैं, मैं स्वतन्त्र नहीं हूं भक्तों के आधीन हूं, मेरे हृदय पर उनका पूरा अधिकार है। जिन मेरे भक्तों ने मुझे ही अपनी परमगति मान कर सब कुछ त्याग दिया है, उन परम भक्तों की तुलना में मैं अपने आपको और अपनी प्रियतमा लक्ष्मी को भी तुच्छ समझता हूं'। ओ हो! अब समझे, वे भी भक्तों के आधीन हैं। संभवतया इसीलिये विदुरजी ने यह इच्छा की है कि मैं प्रत्येक जन्म में भगवान् के दासों के दासों का दास होऊं। वे भगवान् से यही याचना करते हैं:-

वासुदेवस्य ये भक्ताः शांतास्तद्गतमानसाः।
तेषां दासस्य दासोऽहं भवे जन्मनि जन्मनि॥

जो भगवान् वासुदेव के भक्त हैं, जिनकी प्रकृति शान्त है, जिन्होंने अपने प्राणों तथा मनको प्रभु के ही पादपद्मों में अर्पित कर रखा है। ऐसे भगवत् भक्तों के जो दास हैं उन दासों का भी मैं जन्म जन्मान्तरों में दास होता रहूं। भगवान् के भक्तों की बड़ी महिमा है। इसीलिये तो तुलसीदास जी ने यह कहा है:-

मेरे मन प्रभु अस विश्वासा, राम ते अधिक राम कर दासा

सत्य ही है, बिना भागवतों के भगवत् प्राप्ति हो ही नहीं सकती। भागवत् ही हमें भगवान् के समीप तक पहुंचा सकते हैं। जबतक उनका अनुग्रह न होगा, जब तक हमें वे नहीं अपनावेंगे, तब तक उनके पास भला कैसे पहुंच सकते हैं। जिन तपस्वियों ने अपना सम्पूर्ण तप उसी तपोनिधि के प्रति समर्पित कर दिया है, जिन मनस्वियों ने अपने चंचल और अस्थिर चित्त को कोड़े मार २ संसारी वासनाओं से हटा कर मनमोहन की मनोहर मूर्ति में मिला दिया है, जिन यशस्वियों ने अपने यश की पराकाष्ठा उसी के यशोगान में समझी है, जिन कवीश्वरों ने अपनी सम्पूर्ण कवित्व शक्ति उसी के

गुण गान में लगा दी है, उनके गुणों का बखान कौन कर सकता है ? ऐसे शुभ दर्शन संतों के आधीन यदि भगवान हैं, तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है। सचमुच में भागवतों के गुण गान करने से ही भगवान् प्रसन्न होते हैं, इसलिये आइये हम भी पांडवों के स्वर में स्वर मिला कर भगवान् के परम भागवत् भक्तों के पादपद्मों में साष्टांग प्रणाम करें। वे परम भागवत् कौन हैं, जानते हो ? अच्छा तो सुनोः-

प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक।
व्यासांबरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान् ॥
रुक्मांगदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन् ।
पुण्यानिमान् परमभागवतान्स्मरामि ॥

प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यास अंबरीष, शुक, शौनक, भीष्म दाल्भ्य, रुक्मांगद, अर्जुन, वसिष्ठ, विभीषण ये सभी परम पवित्र पुण्यवान् परम भागवत् हैं इनके पादपद्मों में साष्टांग प्रणाम है।

भक्तों की महिमा कौन कह सकता है, यह जगतीतल भक्तों की पद धूलि से ही पावन बना हुआ है ! भक्तों के संग से क्या नहीं मिल सकता। संसार में साधु संगति से बढ कर हृदय की तपन बुझाने की अन्य कोई उत्तम औषधि है ही नहीं। संसारी जितनी भी शीतल वस्तु हैं उनसे थोड़ी देर शान्ति भले ही मिल जाय किन्तु साधु संगति रूपी औषधि के सेवन से सदा सर्वदा शान्ति बनी रहेगी। अहा ! इसीलिये तो किसी कवि ने यह कहा है।

चंदनं शीतलं लोके चंदनादपि चन्द्रमा।
चन्द्रचंदनयोर्मध्ये शीतला साधु संगति ॥

लोक में सुना जाता है कि चन्दन सब से अधिक शीतल होता है और विद्वानों का मत है कि चंदन से भी अधिक शीतल चन्द्रमा होता है, किन्तु चन्द्रमा और चंदन से भी बढ कर शान्ति प्रदान करने वाली वस्तु साधु संगति है।

भक्तों के संग से पापी भी इस असार संसार से बात की बात में तर जाते हैं। पुष्प की संगति से पत्ता भी भगवान् के समीप तक पहुंच जाता है। जिन्हें भक्तों की सेवा प्राप्त हो गई उन्हें सब कुछ मिल गया। जिन्हें भक्तों के मध्य में निवास करने का सुयोग मिल गया उनके लिये फिर बैकुंठ क्या चीज है भक्तों की संगति तो दूर रही उनके साथ यदि एक क्षण के लिये संभाषण भी हो जाय तो फिर भगवान् को पाने में देर नहीं लगती। ऐसे भक्तों की महिमा कौन वर्णन कर सकता है ! इसी लिये तो भगवान् सनक जी ने नारद से कहा था।

ये मानवा हरिकथा श्रवणास्त दोषाः,
कृष्णांघ्रिपद्म भजने रतचेतनाश्च।
ते वै पुनन्ति च जगति शरीर संगात,
संभाषणादपि ततो हरिरेव पूज्यः ॥

निरन्तर हरि कथा श्रवण से जिन के सम्पूर्ण दोष नष्ट हो गये हैं, जिनका चित्त चंचरीक सदा वासुदेव के पादपद्मों में गुंजार करता रहता है ऐसे परम भागवत् पुरुष अपने शरीर से इस सम्पूर्ण जगतीतल को पवित्र करते फिरते हैं। ऐसे महापुरुषों से भाग्यवश संभाषण भी हो गया तो समझना चाहिये कि हमने साक्षात् नारायण की ही पूजा करली।

समझिये तो सही, जिनके हृदय में तनिक भी मालिनता नहीं जो सदा नारायण का ही स्मरण करते रहते हैं, ऐसे भगवत् भक्तों को क्या फिर भी

आवागमन का क्लेश हो सकता है ? ऐसे ही भागवतों के सम्बन्ध में तो यह कहा है।

ये मानवा विगतरागपरावरज्ञा ।
नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति ॥
ध्यानेन तेन हतकिल्बिषचेतनास्ते ।
मातुः पयोधर रसं न पुनः पिबन्ति ॥

रागद्वेष के नष्ट हो जाने से जिन्होंने परावर परमात्मा को जान लिया है, जो निरन्तर ही जगन्नियामक नारायण का स्मरण करते रहते हैं और उसके निरन्तर के ध्यान से नष्ट होगये हैं पाप जिनके, ऐसे भागवत् पुरुष सदा प्रभु के पार्षद बन कर ही उनके सामीप्य लाभ का सुख भोगते हैं। वे फिर संसार के जन्म मरण के चक्कर से छूट जाते हैं। और भी—

ये मानवाः प्रतिदिनं परिमुक्त संगा,
नारायणं गरुडवाहनमर्चयन्ति ।
ते सर्वपापनिकरैः परितो विमुक्ता,
विष्णोः पदं शुभतरं प्रतियान्ति हृष्टाः ॥

जिन्होंने वासना और आसक्ति का परित्याग कर दिया है। जो अहर्निश गरुड वाहन नारायण का स्मरण करते रहते हैं जिन के संपूर्ण पाप गंगाजी की तीक्ष्ण धार में कट कर बह गये हैं, वे भगवान् विष्णु के लोक को प्रसन्न वदन होकर चले जाते हैं।

भक्तों की महिमा अपार है, भक्तों के गुण अनन्त हैं भक्तोंके दर्शन दुर्लभ हैं, भक्तोंका गुणगान पूर्व जन्मके पुण्यों के बिना हो नहीं सकता, भक्तोंकी पहिचान भक्त ही कर सकते हैं, हरि की कृपा के बिना संत मिल नहीं सकते, संतों के बिना मिले उद्धार हो नहीं सकता। इसलिये हम न तो पूजा हो कर सकते हैं न स्तुति ही। महात्मा सहदेव जी के स्वर में स्वर मिलाकर हम भी प्रभु प्रणामी के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं—

तस्य यज्ञवराहस्य विष्णोरतुल तेजसः ।
प्रणामं ये प्रकुर्वन्ति तेषामपि नमो नमः ॥

जिनका कि तेज अतुल है, जो यज्ञ वराह कहे जाते हैं, ऐसे विष्णु भगवान् को जो प्रणाम करते हैं उन भक्तों के चरणों में बार बार प्रणाम करके हम विदा होते हैं।

---

# भगवत् के दश अवतार

[ ले० श्री० जयराम "सनातन" ]

दश अवतार चरित्र, सनातन गावेगा ॥ टेक ॥
भगवत् मीन रूप में आय, देव लोक दर्शन को धाय।
प्रेम का पन्थ पहचान, परम सुख पावेगा ॥ १ ॥
वही रूप कच्छप बन आय, सिमट २ कर योग सिखाय।
करो योग तप ध्यान, परम पद पावेगा ॥ २ ॥
वही वाराह रूप बन आय, पृथ्वि के सब भार उठाय।
शूरवीरता खान, वीर यश गावेगा ॥ ३ ॥
नरसिंह पुनः धर आय, हिरणाकुश को मार गिराय।
रखा प्रह्लाद का मान, जगत हरषावेगा ॥ ४ ॥
वामन रूप मनुष तनुधारी, राजा बलि पर छल कर भारी।
माया धन सन्तान, संग नहिं जावेगा ॥ ५ ॥
परशुराम भगवान पधारे, सहस्रबाहु से राक्षस मारे।
करे सो ब्राह्मण का मान, सोई तर जावेगा ॥ ६ ॥

## रामावतार

MURAGE ART PRESS, DELHI.

रामचन्द्र रघुकुल के प्यारे, लंका के रावण थे मारे। सेवक कपि हनुमान, उच्च पद पावेगा ॥ ७ ॥
कृष्ण चन्द्र यदुकुल के भूषण, कंसादिक बहुदैत्य निषूदन। गीता गीत महान, भक्त नित गावेगा ॥ ८ ॥
बुद्ध दया के हैं अवतारा, जीव मात्र को सदा पियारा। हिन्द चीन जापान, सदा अपनावेगा ॥ ९ ॥
अरब वाहन कल्कि आवेंगे, भारत का सब दुख गावेंगे। फिर से धर्म उत्थान, सनातन पावेगा ॥ १० ॥

---

# भगवत् सगुण हैं अथवा निर्गुण ?

[ ले० एक भिक्षु ]

परोक्त प्रश्न विशेष रूप से प्रायः सबके ही मन में उठा करता है, इसलिये गुरु शिष्य के संवाद से इस विषय में विचार करते हैं:-

शिष्यः—हे भगवन्! भगवत् के ब्रह्म, पुरुष, नारायण आदि अनेक नाम हैं और शास्त्र से सुनने में आता है कि भगवत् का कोई नाम नहीं है, ये सब भगवत् के नाम भगवद्भक्तों के कल्पे हुये हैं, अपनी २ भावना अनुसार भक्तों ने नामों की कल्पना की है। कोई भगवत् को सगुण बताता है, कोई निर्गुण निरूपण करता है। शास्त्र में भी सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के विशेषण देखने में आते हैं। हे भगवन्! कृपा करके बताइये कि परमार्थ क्या है! भगवत् का वास्तविक स्वरूप क्या है! और भगवत् प्राप्ति का उपाय क्या है!

गुरुः—( प्रसन्न होकर ) बच्चा! भगवत् का परमार्थ स्वरूप मन वाणी का अविषय है, वाणी से कोई उसको कह नहीं सक्ता और मन से कोई समझ नहीं सक्ता फिर भी युक्ति प्रयुक्ति में कुशल ब्रह्मनिष्ठ आचार्य अपने शिष्य को भगवत् के स्वरूप का लक्ष करा सक्ता है और कुशाग्रबुद्धि वाला शिष्य ऊहापोह द्वारा भगवत् का साक्षात्कार कर भी सक्ता है क्योंकि भगवत् आत्मा रूप से सबके हृदय में विराजमान हैं इसलिए शुद्ध और तीव्र बुद्धि वाले अधिकारी को भगवत् स्वरूप का समझना कठिन भी नहीं है। एक भक्त भगवान् को संबोधन देकर कहता है:-"हे भगवन्! यदि आपका मिलना आसानी से न हो तब यह बात तो सहज सी है कि आसानी से कोई वस्तु न मिले तो ठीक है, कठिनाई तो यह है कि आपका मिलना कठिनाई से भी नहीं होता"। कहने वाले का भाव यह है कि भगवत् का मिलना कठिन भी नहीं

है और सहज भी नहीं है। शुद्ध मन वाले को भगवत् का मिलना सहज से भी सहज है क्योंकि भगवत् सबके आत्मा हैं और मिलन अंतःकरण वाले को भगवत् का मिलना कठिन से भी कठिन है क्योंकि भगवत् का स्वरूप मन वाणी का विषय नहीं है।

हे शिष्य! सारांश यह है कि शुद्ध मन से भगवत् का साक्षात्कार होता है, शुद्ध मन बिना करोड़ों जन्मों तक भी भगवत् की प्राप्ति नहीं होती। हे प्रियदर्शन! मन का निग्रह ही कल्याण का मुख्य उपाय है। वेदान्त और योग शास्त्र में ही नहीं किंतु सर्व शास्त्रों में मन विजय करने को कहा है। जब तक मन का विजय नहीं किया जाता तब तक किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती सच कहा है:- 'जिसका मन शान्त नहीं है, उसका दान देना, यज्ञ करना, तप करना, तीर्थाटन करना, शौच, वेद का पढ़ना और श्रवण करना सब निष्फल है'! इस लोक और परलोक के जितने शुभ फल हैं मन के निग्रह बिना उनमें से कोई फल प्राप्त नहीं होता इसलिये भगवत् प्राप्ति की इच्छा वाले को मन का निग्रह ही प्रथम और मुख्य कर्तव्य है। चंचल मन भगवदाकार नहीं हो सक्ता, स्थिर मन ही हृदय देश में भगवत् भाव को प्राप्त हो कर तन्मय हो सक्ता है इसलिये भगवत्प्राप्ति की इच्छा वालों को अनेक उपाय करके भी मनका निग्रह करना चाहिये।

हे शिष्य! जो विद्वान् पुरुष सर्व धर्मों से रहित भगवत् का मनोनिग्रह द्वारा साक्षात् कर लेता है, उसको फिर जन्म मरण प्राप्त नहीं होता, जगत् के अनेक प्रकार के विकार उस पर असर नहीं करते, तीनों अवस्थाओं में वह एक रस निर्विकारी ही रहता है। भगवत् को प्राप्त हुआ योगी भगवत् स्वरूप ही हो जाता है इसलिए भगवत् के समान कोई विकार उसको भी स्पर्श नहीं करता। सामान्य जनों में जो भेद दिखाई देता है, वह भेद उसको अपने में दिखाई नहीं देता। हे शिष्य! जैसे हमको घट और मठकी उपाधि से आकाश भिन्न २ प्रकार का दीखता है परंतु आकाश में भिन्नता नहीं है इसी प्रकार भगवदाकार वृत्ति वाले भक्तों में हमको भिन्नता दिखाई देती है किंतु उनमें किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है। मनकी चंचलता से भिन्नता भासती है, नहीं तो भेद नहीं है।

हे शिष्य! 'भगवत् सगुण हैं या निर्गुण हैं' यह प्रश्न भी मन की चंचलता से उठता है, नहीं निर्गुण और सगुण में कुछभी भेद नहीं है। जैसे जल और बरफ भिन्न २ दीखते हुए भी एक ही हैं, इसी प्रकार निर्गुण और सगुण दीखते हुये भी भगवत् एक ही हैं। जैसे सर्प और सर्प का कुंडल एक ही है इसी प्रकार निर्गुण और सगुण एक ही है। जैसे कछुआ जब अंग सकोड़ लेता है तब भी वह ही है और जब अंग फैला देता है तब भी वह ही है, इसी प्रकार निर्गुण और सगुण में भेद नहीं है। जैसे समाधिस्थ योगी प्राणादि को अपने में लय कर लेता है और उत्थान दशा में प्राणादि को फिर फैला देता है, समाधि और उत्थान में जैसे योगी एक ही है इसी प्रकार निर्गुण और सगुण में भेद नहीं है। जैसे सुवर्ण और भूषण में भेद नहीं है है इसी प्रकार निर्गुण और सगुण में भेद नहीं है। जैसे लोहे और खड्ग कटार आदि में भेद नहीं है इसी प्रकार निर्गुण और सगुण में भेद नहीं है। जैसे मिट्टी और घटादि में भेद नहीं है इसी प्रकार

निर्गुण और सगुण में भेद नहीं है।

हे शिष्य ! अस्ति, भाति और प्रिय यानि सत्ता, स्फूर्ति और सुख रूपता से भगवत् ने इस सब नाम रूप जगत् को पूर्ण कर रक्खा है इसलिये भगवत् को भक्त लोग पुरुष कहते हैं। अथवा शरीर रूप पुरियों में भगवत् वास करते हैं इसलिये भगवत् पुरुष कहलाते हैं। विराट् रूप भगवत् प्रलयकाल में सब प्राणियों को अपने उदर में लय करके क्षीर सागर में शयन करते हैं इसलिए भगवत् नारायण कहलाते हैं। अथवा व्यष्टि रूप सूक्ष्म उपाधि वाले तैजस नाम के जीव रूप प्रतिबिम्ब को धारण करके माया की शय्या पर हिरण्यगर्भ रूप से भगवत् शयन करते हैं इसलिये नारायण कहलाते हैं। नार का अर्थ माया है, नार, रूप माया में रमण करने से भी भगवत् नारायण कहलाते हैं। जीवों के समूह का नाम भी 'नार' है, जीव समूह रूप 'नार' में बसने से भी भगवत नारायण कहलाते हैं।

भगवत् रूप नारायण सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व एक अद्वितीय थे। जीवों की अनादि वासना से उनको इच्छा हुई कि मैं सृष्टि उत्पन्न करूं। भगवत् की इच्छा होते ही सृष्टि उत्पन्न हुई। ब्रह्मा से आदि लेकर सर्व देवता, स्थावर जंगम रूप सब जगत् भगवत् में से उत्पन्न हुआ। यह संपूर्ण जगत् भगवत् में से उत्पन्न होता है और भगवत् में ही लय हो जाता है जैसे घटकी उत्पत्ति स्थिति और लय मृत्तिका में होती है इसलिए घट मृत्तिका से भिन्न नहीं है इसी प्रकार यह जगत् भगवत् में से उत्पन्न होता है, भगवत् में स्थित रहता है और भगवत् में लय हो जाता है इसलिये जगत् भगवत् से भिन्न नहीं है। भगवत् नाश से रहित संपूर्ण जगत् रूप हैं। प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मंत्र, कर्म, लोक और नाम ये सोलह कलायें हैं। इन सोलह कलाओं से भगवत् रहित हैं और जिस माया से यह चराचर जगत् उत्पन्न होता है, उस माया से भी भगवत रूप नारायण रहित हैं इस जड़ जगत् में कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो अपने स्वरूप से निर्लेप रहती हो, केवल एक भगवत् ही ऐसे हैं, जो जगत् रूप होकर भी जगत् से निर्लेप रहते हैं। जो अधिकारी पुरुष शरीर रूप रथ में आरूढ होकर इन्द्रिय रूप घोड़ों को सन्मार्ग में चलाता है और बुद्धि को सारथि बना कर आगे बढता है, वह ही भगवत् रूप नारायण से मिल सक्ता है। भगवत् रूप नारायण को ही वेदवेत्ता अद्वितीय ब्रह्म कहते हैं। जो अधिकारी पुरुष भगवत् का चिंतवन करता है, वह सर्व आपदाओं से रहित होकर सर्व भोगों को प्राप्त करता है और मरण पीछे ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्मा के साथ भगवत् को प्राप्त होता है। 'ॐ भगवते वासुदेवाय नमः' इस बारह अक्षर के मंत्र को अथवा 'ॐ नमो नारायणाय' इस आठ अक्षर के मंत्र को जो जपता है, वह जपने वाला पुरुष इस जीवन में मन वांछित पदार्थों को प्राप्त करता है और अंत में उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है। ये दोनों मंत्र प्रणव के समान हैं, इसलिये भगवत की प्राप्ति की इच्छा वाले मुमुक्षुओं को उन दोनों में से अपनी इच्छानुसार किसी एक का निरंतर जप करना चाहिये। मोक्ष ही पुरुष का परम पुरुषार्थ है और इन मंत्रों के जप से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

हे वत्स ! भगवत् का निर्गुण स्वरूप कार्य

सहित अविद्या का नाश करने वाला है, जब तक भगवत् का साक्षात्कार न हो तब तक अधिकारी पुरुष को उपरोक्त मंत्र का अथवा प्रणव मंत्र का जप और मंत्र के अर्थ की भावना करनी चाहिये। सगुण ब्रह्मका यानी भगवत् के सगुण रूप का ध्यान मोक्ष फल की प्राप्ति नहीं करता किंतु इन्द्र, वरुण, आदित्य, ब्रह्मलोकादि उच्चलोकों की प्राप्ति कराता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और कहीं कहीं सूर्य अग्नि आदि भगवत् के सगुण रूप वर्णन किये हैं और नारदादि मुनियों ने तो श्री कृष्ण भगवान् को परमात्मा रूप वर्णन किया है। जैसे अरणि में से अग्नि उत्पन्न होता है इसी प्रकार भगवत् रूप नारायण देवकी जी की कुक्षि में से श्रीकृष्ण रूप से उत्पन्न हुये हैं, श्रीकृष्ण भगवान् अद्वितीय ब्रह्म स्वरूप हैं, ऐसा अनेक ग्रन्थों में विद्वानों ने बार-बार वर्णन किया है। इन्द्रादिक देवता उनके स्वरूप जैसे हैं, जैसे दर्पण के अंदर बाहर की आकृतियों का प्रतिबिम्ब पड़ता है इसी प्रकार देवताओं में श्रीकृष्ण परमात्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, जैसे २ उग्र अथवा शांत लोक होते हैं, वैसा २ ही उनमें उग्र अथवा शांत प्रतिबिम्ब पड़ता है, श्रीकृष्ण परमात्मा में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान आदि कुछ भी नहीं है यदि उनमें अभिमान होता तो वे अर्जुन के सारथी क्यों बनते! नहीं बनते? और मथुरा में से निकल कर द्वारिका में भी न जाते। श्रीकृष्ण भगवान् साक्षात् परमात्मा के ही अवतार हैं। जब २ इस जगत् में धर्म का लोप हो जाता है और अधर्म बढ जाता है तब तब भगवत् हयग्रीव आदिक अवतार लेले कर वेद और वेदों के धर्म का प्रचार करके लोकों का उद्धार करते हैं। श्रीकृष्ण परमात्मा सब से उत्तम और श्रेष्ठ हैं। जिन गोपिकाओं ने काम भावना से भी भगवान् में चित्त दिया था, वे भी देव लोक को प्राप्त हुई तो शुद्ध मन से कामना रहित जो श्रीकृष्ण भगवान् में चित्त लगावे तो इसके कल्याण होने में सन्देह ही क्या है! कुछ सन्देह नहीं है, श्रीकृष्ण परमात्मा ने भारत के युद्ध प्रसंग में भी अपने सखा अर्जुन को ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया था, इसमें भगवान् की करुणा और दयालुता ही कारण है, अन्य कोई प्रयोजन नहीं है। श्रीकृष्ण परमात्मा नये नीलोत्पल के समान श्याम, कमल जैसे सुन्दर लोचन वाले, लम्बी भुजा वाले, और वैजयन्ती माला से शोभित, चौड़ी धोती वाले, हैं। भक्तों के उद्धार करने के लिये वे सर्वदा कृपायुक्त रहते हैं और दीन जनों को आश्रय देते हैं। भगवान् के ऐसे मनोहर स्वरूप का जो कोई ध्यान करता है उसको भगवत् का साक्षात्कार होता है। हे वत्स! जो अधिकारी पुरुष उपरोक्त श्रीकृष्ण परमात्मा में तन्मयता करके उनके जगन्मनोहर स्वरूप का एकांत में ध्यान करता है, उसको उसके हृदय देश में आत्मा रूप से भगवत् का साक्षात्कार यानी दर्शन होता है और उस योगी पुरुष को दुःख के हेतु रूप इस संसार में जन्म लेना नहीं पड़ता श्रीकृष्ण की भक्ति से मन निर्मल होता है और शुद्धि हुये मन में उन का स्वरूप रमे रहने से कुछ काल में भगवत् के निर्गुण स्वरूप की प्राप्ति होती है श्रीकृष्ण परमात्मा की लीलाओं का गान करने से और उनका ध्यान धरनेसे भी उनके निर्गुण स्वरूप की प्रतीति होती है। श्रीमत्कृष्णचन्द्र अवतार रूप से सगुण ब्रह्म हैं और अनवतार रूप से निर्गुण ब्रह्म हैं। उनके सगुण अथवा निर्गुण स्वरूप में कुछ भेद नहीं है। देखने वाले में ही

मद है, उनके स्वरूप में भेद नहीं है। श्रुति में जो उनको ब्रह्म स्वरूप कहा है, वह उनका स्वरूप केवल भक्तों को ही दीखता है, दूसरों को नहीं दीखता। जो पुरुष उनमें भेद दृष्टि करता है वह संसार की घट माला में भटकता रहता है। हे शिष्य! भगवत् सब के आत्मा हैं। आत्मा तीन प्रकार का है। पुत्र रूप गौण आत्मा, शरीर रूप मिथ्या आत्मा और साक्षी रूप कूटस्थ आत्मा इस प्रकार आत्मा के तीन भेद हैं। पुत्र रूप गौणात्मा और शरीर रूप मिथ्या आत्मा में आदर करने वालें को तो किंचित् लौकिक फल की प्राप्ति होती है और मुख्य आत्मा में भेद दृष्टि करने वाले को तो जन्म मरण की परंपरा रूप महान् दुःख के सिवाय किंचित् फल की प्राप्ति नहीं होती इसलिये आत्मा में भेद दृष्टि कभी न करनी चाहिये। आत्मा में स्वरूप से भेद नहीं है।। भ्रम से भेद भासता है।

शिष्यः-महाराज! भ्रम कितने प्रकार का है और भेद की निवृत्ति किस प्रकार होती है!

गुरुः-हेवत्सा! भ्रम पांच प्रकार का है, जीव और ईश्वर भिन्न हैं, यह प्रथम भ्रम है आत्मा परमार्थ से कर्ता है, यह दूसरा भ्रम है, तीन शरीर युक्त जीव संगी है, यह तीसरा भ्रम है, कारण के सिवाय जगत् की सत्यता चौथा भ्रम है और जगत् के कारण रूप परमात्मा को विकारी मानना, यह पांचवां भ्रम है; इन पांचों भ्रमों के निवृत्त होने से भेद की निवृत्ति होजाती है। नीचे का विचार करने से भ्रम की निवृत्ति होती है।

भ्रम निवृत्ति का विचारः-बिम्ब और प्रति बिम्ब के देखने से प्रथम भ्रम की निवृत्ति होती है। भाव यह है कि जैसे आकाश का सूर्य बिम्ब रूप है और आकाश के बिम्ब रूप सूर्य की परछाई जो जलमें पड़ती है, यह प्रतिबिम्ब रूप है। प्रतिबिम्ब मिथ्या है और बिम्ब सच्चा है इस लिये दो सूर्य नहीं हुये, एक ही सूर्य है। भेद नहीं इसी प्रकार ईश्वर बिम्ब रूप है और अंतः करण में ईश्वर की परछाई जीव रूप प्रतिबिम्ब है, जीव मिथ्या है और ईश्वर सच्चा है इस लिये ईश्वर और जीव दो नहीं हैं। किंतु एक ईश्वर ही है। इस प्रकार ईश्वर और जीवमें भेद नहीं है।

स्फटिक और लाली के देखने से, जीव वास्तविक कर्ता है, इस भ्रम की निवृत्ति हो जाती है। भाव यह है कि जैसे स्फटिक श्वेत और स्वच्छ है, लाल फूल सामने आने से और लाल फूल की परछांई पड़ने से स्वच्छ स्फटिक लाल दिखाई देने लगता है, वस्तुतः स्फटिक लाल नहीं है इसी प्रकार अंतःकरण के तादात्म्य संबंध से अंतःकरण का धर्म कर्तापना आत्मा में प्रतीत होता है, परमार्थ से आत्मा अकर्ता है। अन्तःकरण की उपाधि से आत्मा कर्ता भासता है, नहीं तो कर्ता नहीं है।

घटाकाश और मठाकाश के देखने से आत्मा के संगी पने की निवृत्ति हो जाती है। भाव यह है कि आकाश सूक्ष्म और असंग है, घटकी उपाधि से कुछ घट नहीं जाता और मठकी उपाधि से बढ़ नहीं जाता, दोनों उपाधियों में एकसा ही निर्लेप रहता है इसी प्रकार शुद्धसूक्ष्म आत्मा ब्रह्मा आदिक बड़े शरीरों के संबंध से बड़ा नहीं हो जाता और चींटी आदि छोटे शरीरों के संबंध से छोटा नहीं हो जाता। उपाधियों के भेद से आत्मा में किसी प्रकार भेद नहीं होता आत्मा तो आकाश के समान सर्वदा अलेप, असंग और असंगी ही रहता है। संगीपने

की प्रतीति उपाधि के संबन्ध से होती है।

रज्जु और सर्प के देखने से परब्रह्म रूप कारण से भिन्न जगत् के सत्यपने की निवृत्ति हो जाती है, भाव यह है कि जैसे रज्जु किसी काल में भी सर्प नहीं होती, तीनों काल में रज्जु ही है जब सर्प का भ्रम हो रहा है तब भी रज्जु ही है और वस्तुतः तो रज्जु है ही इसी प्रकार जब अधिष्ठान रूप परब्रह्म में अध्यस्त रूप जगत् दीखता है तब भी अधिष्ठान रूप परब्रह्म ज्यों का त्यों है और जब जगत् नहीं दीखता तब तो अधिष्ठान परब्रह्म है ही, अध्यस्त से अधिष्ठान में भेद नहीं होता क्योंकि अध्यस्त वस्तुस्वरूप नहीं होता इसलिये परब्रह्म से भिन्न जगत् सत्य नहीं है।

सुवर्ण और कंकण देखने से परब्रह्म के विकारी होने का भ्रम निवृत्त हो जाता है, भाव यह है कि सुवर्ण के चाहे जितने कंकणादि भूषण बन जांय, सुवर्ण ज्यों का त्यों रहता है इसी प्रकार अस्ति, भाति, प्रिय रूप परमात्मा में चाहे जितने नाम रूप कल्प लिये जायं परब्रह्म नामों और रूपों से विकारी नहीं होता किंतु सर्वदा निर्विकार रहता है।

शिष्यः-हे भगवन्! सगुण ब्रह्म का ध्यान आपने ऊपर बताया, कृपा करके निर्गुण ब्रह्म की उपासना की रीति भी बताइये! संत महात्माओं से सुना है कि निर्गुण ब्रह्म के ज्ञान बिना भेद की निवृत्ति नहीं होती।

गुरुः-हे प्रियदर्शन! ब्रह्मवेत्ताओं ने यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन मूल बंध, देहसाम्यता, दृक्स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा आत्म ध्यान और समाधि ये पंद्रह उपासना के अंग क्रम से कहे हैं (१) यह सब जगत् ब्रह्म रूप ही है, ब्रह्म के सिवाय अन्य कुछ नहीं है, इस प्रकारके ज्ञानसे इन्द्रिय समूह को संयम करना कहलाता है, यह यम मुमुक्षुओं को आदर और नियम पूर्वक बारंबार करना चाहिये। (२) विजातीय वृत्ति का तिरस्कार करना और सजातीय वृत्ति का प्रवाह चलाना, इसको नियम कहते हैं, यह नियम परम आनन्द का देने वाला है। मैं अखंड, असंग निर्विकार, आनन्द स्वरूप आत्मा हूं, यह सजातीय वृत्ति है और मैं कर्ता भोक्ता, शरीर हूं यह विजातीय वृत्ति है। (३) आनन्द स्वरूप आत्मा को जानकर घट पटादि नाम रूप प्रपंच को त्याग देना, उसको त्याग कहते हैं। यह त्याग शीघ्र ही मोक्ष का देने वाला है, इसलिये संत महात्मा इसका बड़ा आदर करते हैं! (४) जिसको मन वाणी प्राप्त नहीं हो सक्ते, केवल योगी ही जिस तक पहुंच सक्ते हैं, ऐसे परब्रह्म का नाम मौन है। पंडित उसी का अपने आत्मरूप से अनुसंधान करते हैं, जिस तक वाणी न पहुंच सके, उसका वर्णन कौन कर सक्ता है, कोई नहीं कर सक्ता। प्रपंच का वर्णन भी यथार्थ नहीं हो सक्ता क्योंकि उसमें भी सत् असत् नाना प्रकार के यथार्थ प्रतीत होते हैं, इसलिये इसको भी वेदवेत्ता मौन कहते हैं। पर मौन साधु पुरुषोंको स्वभाव सिद्ध है, वाणी का मौन तो बालकों का है। (५) जहां आदि में, मध्य में और अंत में कोई जन न हो, यह संसार जिस से सर्वदा व्याप्त है, उस देश का नाम निर्जन देश है, यह सर्वदा जन शून्य स्थान ही योग साधन के लिये उपयोगी है, (६) जिसके निमेष मात्र में ब्रह्मादि सर्व प्राणियों का कलन यानी सृष्टि, स्थिति और लय होता है, वह अखंड, आनन्द स्वरूप अद्वय ब्रह्म ही काल कहलाता है। (७) जिसमें सर्वदा भली प्रकार सुरत से ब्रह्मविचार हो, वहही

आसन हैं, उसके सिवाय जो मुख को नाश करने वाला हो, वह आसन नहीं है। जिससे सिद्ध पुरुष सिद्ध कहलाते हैं, जिसमें सिद्ध पुरुष लीन रहते हैं, और जो विश्व का अधिष्ठान स्वरूप अव्यय है, वह सिद्धासन कहलाता है (८) जो आकाशादिक पंच-भूतों का आदि कारण और चित्तैकाग्रता का मूल है वह ही मूलबंध राजयोगियों को सर्वदा सेवन करना चाहिये (९) विषम अंगों में समता को जाने अर्थात् विषम रूप अध्यस्त जगत् में अधिष्ठान रूप ब्रह्म को सम जाने और समान ब्रह्म में लय हो जाय, यह ही देहसाम्यता है, सूखे हुये ठूंठ के समान हो जाना समता नहीं है। (१०) दृष्टि को ज्ञानमय करके ज्ञानमयी दृष्टि से जगत् को ब्रह्ममय जो देखना है, वही दृष्टि परम उदार और मंगल की देने वाली है, नासाके अग्रभाग में देखनेको विद्वान् दृष्टि नहीं कहते। अथवा जिसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तीनोंका विराम होजाय, वह ही दृष्टि है, ऐसीदृष्टिही करनी चाहिये। (११) चित्तादि सब पदार्थों में सर्वात्म भाव करके इन्द्रियों की सब प्रकार की वृत्तियों को रोकना उसका नाम प्राणायाम है, प्रपंचका निषेध रेचक प्राणायाम है और ब्रह्म को सर्वत्र पूर्ण देखना, पूरक प्राणायाम है, और एक ब्रह्म ही सर्व स्वरूप है, ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाने का नाम कुम्भक है। इस प्रकार के रेचक, पूरक और कुम्भक ज्ञानियों के प्राणायाम हैं। नाक को दबाना अज्ञानियों का प्राणायाम है। (१२) विषयों में आत्मत्व देख कर अर्थात् सर्व जगत् को ब्रह्ममय देख कर चैतन्य स्वरूप आत्मा में चित्त को लगाना, यह प्रत्याहर कहलाता है। मुमु-क्षुओं को इस प्रत्याहार का अवश्य अभ्यास करना चाहिये। (१३) जहां २ मन जाय वहां २ ब्रह्म का दर्शन करता हुआ मनको निश्चल करे, यह सब से उत्कृष्ट धारणा है। (९४) देहानुसंधान का परित्याग करके 'मैं ब्रह्म ही हूं' इस प्रकार की निरालम्ब स्थिति ध्यान कहलाती है, यह स्थिति परमानन्द की देने वाली है। (१५) निर्विकार चित्त होकर अपने को ब्रह्म स्वरूप जान कर संपूर्ण प्रपंचभाव को त्याग देना, यह ज्ञानियों की समाधि है। हे वत्स! यह समाधि अकृत्रिम आनन्द स्वरूप है यानी इस समाधि द्वारा अकृत्रिम आनन्द स्वरूप आत्माका आविर्भावहोताहै, जब तक आनन्द स्वरूप आत्मा की अभिव्यक्ति न हो तब तक उपरोक्त यमादि का अभ्यास करे। समाधि सिद्ध हो जाने पर तो योगी साधन निर्मुक्त हो जाता है, योगियों का राजा हो जाता है। समाधि के साधन कालमें अनेक प्रकार के विघ्न आते हैं और योगी को समाधी से रोकते हैं। विघ्नों के नाम ये हैं। अनुसंधानराहित्य यानी किसी प्रकार का अनु-संधान न रहना, आलस्य, भोग लालसा, लय अर्थात् निद्रा, तम यानी कार्याकार्य का अविवेक, विक्षेप यानी विषयानुराग, रसास्वाद यानी मैं बड़ा धन्य हूं, जो ऐसे आनन्द का अनुभव कर रहा हूं, इस प्रकार का अहंकार, और शून्यता अर्थात् रागद्वेषादि से चित्त की विकलता, ये सब विघ्न हैं, मुमुक्षुओं को ये सब त्याग करने योग्य हैं।

हे वत्स! भगवत् के निर्गुण स्वरूप के ज्ञान बिना भेद बुद्धि नहीं जाती और भेद बुद्धि गये बिना अचल शान्ति प्राप्त नहीं होती, यह बात ठीक ही है, क्योंकि भगवत् के परमार्थ स्वरूप में भेद नहीं है, भेद का कारण अज्ञान यानी अविद्या है, यह ही बात दृष्टांत से समझाता हूं।

# निरंजन ब्राह्मण और उसकी स्त्री विचित्रा।

ब्रह्मपुर में निरंजन नाम का एक ब्राह्मण था निश्चिंता। न उसे इस लोक का शोक था, न परलोक की चिन्ता! निर्द्वन्द्व रहता था अकेला, न किसी प्रकार की झंझट न किसी भांति का झमेला! न गाय न बाछी, नींद आतीथी आछी! न कुछ काम करता था न काज, सचमुच था महाराजाधिराज! न द्वेष रखता था, न राग, न किसी से लपेट न लाग! अपनी मौज उठता था अपनी मौज सोता था, पूर्ण सुखी था, कभी खिन्न नहीं होता था! न ऊधो का लैन न माधो का दैन था। बाहर भीतर चैन ही चैन था! हे वत्स! बड़ों की बातें बड़ी ही होती हैं, श्रीशिवजी ने तो झूंठे सच्चे अपराध के निमित्त से पार्वती को त्याग कर उस जन्म में पार्वती से न मिलने का प्रण किया था और इस ब्राह्मण का यह प्रण था कि कभी भी विवाह न करूंगा, सर्वदा ब्रह्मचर्य में ही स्थित रहूंगा। जो शिवजी स्वभाव से सीधे सादे होने से भोलानाथ कहलाते हैं, इसी प्रकार यह ब्राह्मण भी सरल स्वभाव का भोला भाला था। यों तो सभी ब्राह्मण स्वभाव से भोले होतेहां हैं। मिष्टान्न और टके दक्षिणा में मिलने से प्रसन्न होकर लक्ष्मीवान्, पुत्रवान्, आरोग्यतावान् आदि अनेक आशीर्वाद यजमानको देकर अपना वर्षोंका किया हुआ जप तप खो बैठते हैं, आज कल के ब्राह्मण तो ऊंच नीच जाति भी नहीं देखते, जहां लड्डू कचोरी हो चले जाते हैं, और कोई २ तो निमंत्रण विना ही पहुंच जाते हैं और धक्के देदे के हटाने से भी भोजन कराने वाले के द्वार से नहीं हटते! जो काम कोई भी न करे ब्राह्मण से करा लीजिये कहावत भी है:-

लारी बांदी ऐसा नर, पीर बबर्ची भिश्ती खर।

पीर गुरु को कहते हैं, बबर्ची रसोइये का नाम है, भिश्ती पानी भरने वाले की उपाधी है और खर गदहे की संज्ञा है। ये चारों काम आज कल ब्राह्मण के स्वाभाविक हैं। इससे सिद्ध हुआ कि ब्राह्मण की जाती भोली होती है। हे प्रियदर्शन! जिस ब्राह्मण की मैं कथा सुनाने को हूं, वह इन ब्राह्मणों से भी अधिक भोला था। अथवा यों कहो कि भोला सयाना कोई नहीं है, जिस पर भगवत् की दृष्टि होती है, वह भोला हो जाता है और जिस पर भगवत् की कृपा दृष्टि होती है, वह सयाना हो जाता है। एक दिन ब्राह्मण को बैठे २ क्या उचंग सूझी कि भगवत् से अपनी माया दिखाने की प्रार्थना करने लगा। प्रार्थना करते ही क्या देखता है कि षोडश वर्ष की एक सुन्दर बाला सामने खड़ी हुई है। हे वत्स! उसके रूप अनूप का वर्णन शेष शारद भी नहीं कर सक्के तो मैं क्या वर्णन करूं, इतना ही कहना बस है कि देवराज इन्द्र की इन्द्रानी उसके पैर का धोवन भी नहीं थी! यदि लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती उसका रूप देख लेतीं तो उसकी दासी बनने को अपना अहोभाग्य मानतीं! ऐसी युवती को अकस्मात् आया हुआ देख कर ब्राह्मण चकित हो गया और पश्चात् दोनों में यह बात चीत हुई:-

ब्राह्मण:-हे बाले! तू कौन है और कहां से आई है?

बाला: हे ब्राह्मण! मैं इसी ब्रह्मपुर की रहने

वाली कुंभकार की कन्या हूं। मेरे पिता का नाम प्रजापति है। एक समय मेरे पिता पात्र बनाने के लिये पंजावे पर मिट्टी लेने गये थे, वहां मैं पड़ी हुई मिली, वे मुझे उठा लाये और मेरा पालन पोषण करने लगे। मैं बड़ी हुई मेरा स्वरूप देख कर मेरे पिता को किसी कुंभकार के साथ मेरा विवाह करने को उत्साह न हुआ। सिवाय इसके मेरा प्रण पिता को मालूम था कि मैं विवाह करना नहीं चाहती इसलिये पिता ने मुझे स्वच्छन्द कर दिया है। मेरा नाम विचित्रा है। मैंने सुन रक्खा है, आप ब्राह्मण हैं, जितेन्द्रिय हैं! जितेन्द्रिय साधु ब्राह्मण की सेवा करना सबका परमधर्म है, कृपा करके मुझे अपने पास रहने की आज्ञा दे दीजिये, आपकी झाड़ू बुहारी दिया करूंगी, आपके सहारे मेरा भी कल्याण हो जायगा! आप तो पूर्ण जितेन्द्रिय हैं ही, मैं भी ऐसी ही हूं फिर हानि ही क्या है।

ब्राह्मण ने पास रहने की आज्ञा दे दी, विचित्रा वहां रहने लगी। थोड़े दिनों में ब्राह्मण को ऐसा अनुभव होने लगा कि मैं विचित्रा का पति हूं और विचित्रा मेरी स्त्री है। पश्चात् विचित्रा से चार पुत्र और ग्यारह कन्या उत्पन्न हुईं। पंद्रह संतान और एक स्त्री सोलह प्राणी ब्राह्मण के कुटुम्ब में हो गये। इन सोलह के साथ ब्राह्मण का ऐसा गाढ़ा संबंध होगया कि ब्राह्मण उनको ही अपना स्वरूप मानने लगा! उनके सुख से अपने को सुखी माने, वे प्यासे हों तो ब्राह्मण अपने को प्यासा माने। उनमें से कोई अभिमान करे तो ब्राह्मण अभिमानी बन जाय, उनमें से कोई चिन्ता करे तो ब्राह्मण चिन्ता करने लगे, कोई संकल्प करे तो ब्राह्मण संकल्प करने लगे, वे नाचें कूदें तो ब्राह्मण नाचने कूदने लगे, वे बैठें तो ब्राह्मण बैठ जाय, वे हंसें तो ब्राह्मण हंसने लगे, रोवें तो रोने लगे! उनमें से कोई कथा वार्ता, निन्दा स्तुति सुने तो ब्राह्मण समझे मैं सुनता हूं, उनमें से किसी का विवाह हो तो ब्राह्मण अपने को दूल्हा अथवा दुल्हन समझने लगे! कोई मर जाय तो समझे मैं ही मर गया! वे जहां जांय, वहीं ब्राह्मण जाय! इस प्रकार भूः, भुवः, स्वः, महः, जन, तप, सत्य ऊंचे लोकों में और रसातलादि नीचे लोकों में ब्राह्मण घूमने लगा, उसकी सन्तान महा बल वाली थी, सब लोकों में जाने को समर्थ थी, इसलिये ब्राह्मण चौदह लोकों में घूमने लगा। कभी ऊंचा चढ़ जाय कभी नीचे गिर जाय! यद्यपि चौदह लोकों में सुख कहीं नहीं था, सर्वत्र दुःख का ही अनुभव करता था, फिर भी पूर्वले पाप के कारण दुःख को सुख मानता था, अशुचि को शुचि जानता था और अपने ब्रह्मपने को भूल कर कुंभकार की लड़की की संतान को अपनी संतान मानता था। संतान ही नहीं किन्तु अपना स्वरूप ही मानता था। कुछ दिन तक तो पूर्व पुण्य के प्रभाव से लड़के लड़की आज्ञाकारी रहे, पश्चात् पुण्य क्षीण हो जाने से उसकी संतान दुःख देने लगी। मन मानी करें। ब्राह्मण की एक न सुने, जहां चाहें घसीटे फिरें, तब तो ब्राह्मण घबराया और इनसे छूटने का उपाय सोचने लगा। इतने ही में उसका एक पुराना मित्र वहां आया और ब्राह्मण को झंझट में पड़ा हुआ देख कर कहने लगा:-

मित्रः- भाई! तू ब्राह्मण है, यह कुंभकार की कन्या है कहीं कुम्हारी और ब्राह्मण का मेल

होना होगा, लोक शास्त्र से विरुद्ध है कुम्हारी और कुम्हारी की संतान के साथ तेरा रहना युक्त नहीं है।

हे शिष्य! इतनी बात सुन कर जैसे शृंगि ऋषि वेश्या और वेश्या के पुत्रों को छोड़ कर वन को भाग गये थे, इसी प्रकार ब्राह्मण विचित्रा और विचित्रा की संतान को छोड़ कर अपने स्थान पर आगया और सर्वदा के लिये सुखी हुआ।

हे वत्स! ब्राह्मण ब्रह्म का अंश होने से जीव है, विचित्रा अविद्या है। पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां और एक बुद्धि ग्यारह कन्यायें हैं और प्राण, अहंकार, चित्त और मन चार पुत्र हैं। मित्र सद्गुरु है, जिसने ब्राह्मणपने की स्मृति दिलाई। इन एक अविद्या और पंद्रह पुत्र पुत्रियों को अपना स्वरूप मान कर जीव भेद देखता है और भेद देखने से ही दुःखी होता है। यदि तुझे सुखी होने की इच्छा है तो इन सोलह अनात्म पदार्थों में से आत्म-दृष्टि हटा कर आनन्द स्वरूप अपने अतना में टिक जा! इतना सुनते ही शिष्य के भीतर के नेत्रों के पाट खुल गये, उसके हृदय में जितना आनन्द हुआ उसको वह रोक न सका और झूम २ कर पंचम स्वर से नीचे के पद गाने लगा?

# वेदान्त का पाठ

## इन्द्र वज्रा छन्द।

(१)

वेदान्त का पाठ पढ़ा अहाहा।
सोता हुआ जाग पड़ा अहाहा॥
ना सत्य काया नहीं सत्य माया।
संसार मिथ्या भ्रम ने दिखाया॥

(२)

ना रूप ही है नहिं नाम ही है।
मैं हूं न तू है यक आत्म ही है॥
कर्ता न भोक्ता कुछ भी नहीं है।
चैतन्य सच्चा सुख ब्रह्म ही है॥

(३)

मिथ्या अविद्या अभिमान मिथ्या।
सन्मान मिथ्या अपमान मिथ्या॥
है राग मिथ्या पुनि द्वेष मिथ्या।
अभ्यास मिथ्या अरु क्लेश मिथ्या॥

(४)

ना शोक ही है नहिं मोह ही है।
चिन्ता नहीं है भय भी नहीं है॥
आना न जाना नहिं भुक्ति ही है।
ना बंध ही है नहिं मुक्ति ही है॥

(५)

पांचों हुये हैं यम आज पूरे।
शौचादि भी जो कल के अधूरे॥
योगांग आठों करि आज लीन्हे।
सूर्यादि पांचों सुर पूज लीन्हे॥

(६)

पूरी हुई आज विवेक ख्याती।
वैराग्य ने शीतल कीन्ह छाती॥
छैओं हुये हैं शम आदि पूरे।
पूरी मुमुक्षा अवणादि पूरे॥

( ७ )

तत्त्व पदों का करि शोध लीन्हा ।
कूटस्थ भूमा शिव तत्त्व चीन्हा ॥
कोई नहीं है अपना पराया ।
है आप ही आपन में समाया ॥

( ८ )

आनन्द का सिंधु भरा हुआ है ।
आत्मा सभी का सब में रमा है ॥
आवे न जावे ध्रुव ज्यों खड़ा है ।
खोटे सभी सो शिव ही खरा है ॥

( ९ )

सोता जगाया गुरु जी नमस्ते ॥
रोता हंसाया गुरुजी नमस्ते ।
आत्मा दिखाया गुरुजी नमस्ते ॥
ओहो अहाहा गुरुजी नमस्ते ॥

( १० )

जा जाग भोला ! सुन शिष्य बाबा ।
संसार मिथ्या शिव एक सांचा ॥
दे खोल आंखें तज नींद घेरे ।
हो सर्व त्यागी भज ईश तेरे ॥

( ११ )

सोया बना ही अब सो न भोला ।
क्यों भीख मांगे तज मूढ़ झोला ॥
संसार बेड़ी दृढ़ काट देरे ।
रागादि कूड़ा सब छांट देरे ॥

---

# ईश्वरीय भावों के प्रचार में उन्नति है ।

[ ले० भक्तवर श्रीजयदयाल जी गोयन्दका ]

वर्तमान युग के स्थूलवाद प्रधान वायुमण्डल को देख कर यह अनुमान होता है कि इससे ईश्वर और धर्म की आस्था में बड़ा भारी धक्का लग रहा है। सुना जाता है कि रूसकी ओर ईश्वर एवं धर्म की सत्ता का समूल विनाश करने के लिये जी तोड़ चेष्टा की जारही है। ऐसे बुरे युगमें मनुष्यों के हृदय में ईश्वर और धर्म पर श्रद्धा के बने रहने में बड़ी बड़ी कठिनाइयां हैं अतएव प्रत्येक ईश्वर विश्वासी मनुष्य को इसके लिये शास्त्रों की आलोचना और सत्संग करके ईश्वर-तत्त्वको समझने का प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्य यदि ईश्वर के अस्तित्व और उसके स्वरूप को निश्चय पूर्वक जानले तो फिर उसके द्वारा पाप नहीं बन सकते और काम क्रोधादि अवगुणों से छूट कर शान्ति और परमानन्द को पाकर वह कृतार्थ होजाता है उसके आनन्द और शान्ति का कभी नाश नहीं हो सकता। भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि:-

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥

काम क्रोध से रहित जीते हुए चित्त वाले, परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार किये हुए ज्ञानी पुरुषों के लिये सब ओरसे शान्त परब्रह्म परमात्मा ही प्राप्त हो।

इस बातको दृढ़ निश्चय पूर्वक मान लेना चाहिये कि ईश्वर अवश्य है। ईश्वरके लिये प्रमाणोंकी वास्तवमें आवश्यकता नहीं। वह तो स्वतः प्रमाण है बल्कि उसीकी सत्ता से सब कुछ प्रमाणित हो रहा हो तथापि शास्त्रों में ईश्वर की सिद्धि के असंख्य शब्द-प्रमाण मिलते हैं। वेद, उपनिषद् गीता, भागवत् स्मृतियां आदि हिन्दू शास्त्रों के अतिरिक्त अन्यान्य धर्म ग्रन्थों में भी ईश्वरके अस्तित्व के सम्बन्ध में हम जितने चाहें उतने ही प्रमाण मिल सकते हैं। इससे यहां शब्द प्रमाणों के उद्धरण नहीं दिये जाते। शब्द प्रमाण के सिवा युक्तियों से भी ईश्वर का होना सिद्ध है।

यह सिद्ध है कि संसार में कोई भी वस्तु बिना कर्ताके नहीं होती। अतः इस संसारकी उत्पत्ति पालन और संहार करने वाली कोई शक्ति अवश्य हो उसी शक्ति का नाम ईश्वर है। जब एक छोटा सा यन्त्र भी यन्त्री के बिना बनना और चलना संभव नहीं फिर इतना विस्तृत विश्व जिसमें सूर्य-चन्द्रादि ग्रह नक्षत्र सभी ठीक समय पर अपने अपने कार्य कर रहे हैं, बिना किसी रचयिता वा संचालकके कैसे संभव रहे?

न्यायान्याय करने वाले पुरुषों के लिए कर्त्ता और बिना उचित दण्ड का विधान और दण्ड-दान भी महान् चेतन शक्ति के बिना सम्भव नहीं।

नाना प्रकार के गुण कर्मानुसार जीवों का भिन्न भिन्न योनियों और लोकान्तरों में गमनागमन तथा गतिका विधान भी बिना ईश्वर के संभव नहीं हो सकता।

इस तरह अनेक युक्तियों और प्रमाणों से एक सर्वोपरि चेतन शक्ति का अस्तित्व सिद्ध होता है। यह शक्ति अनादि और नित्य है। सबके नाश होने परभी इसका नाश नहीं होता। यह अपार और अनन्त है। इसीका नाम ईश्वर या परमात्मा है इसी एक चेतन शक्ति को भिन्न २ देशों में भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं। महात्माओं के अनुभव से इसका प्रत्यक्ष होना भी सिद्ध है। ईश्वर के तत्वको जानने वाले महापुरुषों ने जो साधन बतलाये हैं, तदनुसार साधन करने से उसका साक्षात्कार भी हो सकता है।

असल बात तो यह है कि उस परमात्मा को प्राप्त होने से पूर्व वास्तविक यथार्थ तत्व कोई भी मनुष्य नहीं जान सकता। वह कैसा है? निर्गुण है वा सगुण है? इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर नहीं दिया जासकता। वह ऐसा है कि जिसको बताने के लिए निर्गुण सगुण या निराकार साकार आदि कोई भी शब्द या निर्देश पर्याप्त नहीं है। क्योंकि वह वाणी का विषय नहीं है। न वह मन बुद्धिसे समझमें आ सकताहै, क्योंकि वह बुद्धि मन और वाणीसे सर्वथा अतीत है, वह अचिन्त्य है अतर्क्य है, अनिर्वचनीय है। मनुष्य जिस किसी प्रकारसे उसे भजे, सभी उसी का भजन होता है। अतएव जो मनुष्य अपने मनसे भगवान् को जैसा समझ कर साधन कर रहे हैं उनमें कोई परिवर्तन की आवश्यकता नहीं। वास्तव में परामात्मा के लिये साधन करने वालों में कोई भी भूल में नहीं है। अथवा एक तरह से सभी भूल में हैं। जो परमात्मा के लिये साधन

करता है, वह परमात्मा के मार्ग पर ही चल रहा है उसी की ओर आगे बढ़ रहा है, एक दिन वह यथार्थ वस्तु को प्राप्त करलेगा, इसलिये वह किसी भूल में नहीं है। और भूलमें इसलिये है कि जिस वस्तुको परमात्मा के जिस स्वरूप को साध्य या ध्येय मान कर उसकी प्राप्ति के लिये साधन करते हैं, उनके उस साध्य या ध्येय से परमात्मा का वास्तविक स्वरूप अत्यन्त ही विलक्षण है। साधन काल में जो कुछ जानने, मानने या साधन करने में आता है वह तो परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को लक्ष्य कराने वाला संकेत मात्र है, अतएव जहां तक परमात्मा के यथार्थ स्वरूप की उपलब्धि नहीं हो जाती वहांतक सभी भूल में हैं। अवश्य ही यह भूल चिर काल की भूल को मिटा कर परमात्मा के यथार्थ स्वरूप के दर्शन का कारण होती है इसलिये यह बात नहीं सोचनी चाहिये कि भूल मिटाने के बाद परमात्मा के लिये साधन आरंभ करना होगा। भूल तो यथार्थ प्राप्ति के पूर्व मिटती ही नहीं, और यथार्थ प्राप्ति होने के बाद भूल मिटाने के लिये साधन की आवश्यकता नहीं होती, फिर,तो स्वयं ही सब भेद खुल जाता है। इससे पहले जो कुछ होता है सो शाखाचन्द्र न्याय से लक्ष्य को पहचानने के लिये होता है अतएव परमात्मा को जैसा समझ कर जो उसका जिस प्रकार से भजन करता है, उसी प्रकार से ठीक है। परमात्मा में सब कुछ समाता है। शुद्ध सच्चिदानन्दघन के रूप में परमात्मा माया से अतीत, सर्व गुणों से रहित एक हैं केवल विज्ञानानन्दघन हैं और माया के सम्बन्ध से वे समस्त सात्विक सर्व गुण सम्पन्न हैं। संसार के रचयिता पालन कर्ता और संहार कर्ता हैं भगवान् साकार निराकार सगुण निर्गुण सब कुछ हैं। निराकार रूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं "मया ततमिदं सर्वं जगद व्यक्तमूर्तिना" और भक्त के प्रेम से साकार रूप धारण कर लेते हैं। जिस प्रकार अग्नि निराकार रूप से सभी जगह व्याप्त है, प्रकट करने की सामग्री एकत्र करके साधन करते ही वह व्यक्त हो जाती है। वास्तवमें इस उदाहरण से भी परमात्मा का यथार्थ स्वरूप नहीं बतलाया जा सकता, वह तो साधन करने पर स्वयं ही भगवत्कृपा से उपलब्ध होता है।

परन्तु इस प्रकार मानने मात्र से ही परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। समझ कर उपासना करने और बारम्बार श्रद्धा भक्ति पूर्वक चिन्तन करते रहने से ज्यों ज्यों परमात्मा का परम भाव हृदयङ्गम होता है त्योंही त्यों वह परमात्मा के निकट पहुंचता है। ईश्वर का यथार्थ तत्व समझ लेने पर और पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर साधक संसार में पुनः लौट कर नहीं आता। उसकी गति मति आश्चर्यमयी हो जाती है। भगवान् कहते हैं।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन,
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति,
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।

कोई महा पुरुष इस आत्मा को आश्चर्यवत् देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष आश्चर्यवत् इसके तत्त्व को कहता है और दूसरा कोई ही इस आत्मा को आश्चर्यवत् सुनता है और कोई कोई सुन कर भी इस आत्मा को नहीं जानता।

परमात्मा के साक्षात्कार की महिमा अनिर्वचनीय है, उस स्थिति में तो जो कुछ होता है सो जिसको होता है वही जानता है। परन्तु पापों से

छुटकारा तो ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते ही मिल जाता है। हम देखते हैं कि घने जङ्गलों और निर्जन प्रान्तों में भी सरकार की सत्ता के भय से चोर डाकू चोरी डकैती करने का साहस नहीं कर सकते। सरकारी सत्ता वहां अप्रत्यक्ष रहती है, सरकार का कोई कर्मचारी भी वहां उपस्थित नहीं होता। परन्तु परमात्मा की सत्ता तो सब जगह प्रत्यक्ष है। क्योंकि यह तो "सर्वतः पाणिपाद" है। फिर उसके विपरीत चेष्टा क्यों कर हो सकती है। मनुष्य से वहीं तक पाप बनते हैं, जब तक उसे परमात्मा की सर्व व्यापी सत्ताका पूरा निश्चय और विश्वास नहीं होता। जिनके द्वारा जितने पाप बनते हैं, ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध जितने काम बनते हैं, उनके हृदय में उतने ही अंश में ईश्वर की आस्था की कमी है। यह ईश्वर की आस्था हमारे और सारे जीवों के हृदय में जितनी बढ़े उतनाही हमारा और जगत् का कल्याण है ईश्वर। आस्था को मिटाने का प्रयत्न करने में कोई महत्व नहीं है। महत्व तो ईश्वर की आस्था की वृद्धि करने में और ईश्वरीय भावोंका प्रचार करने में है। अतएव प्रत्येक कल्याण कामी और जगत् के हितैषीका यह परम कर्तव्य है कि जहां तक हो सके ईश्वर की सत्ता और उसके स्वरूप को समझने की चेष्टा करे और जैसा समझ में आवे तदनुसार उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करे। साथ ही दूसरों को भी समझाने की चेष्टा करे। धर्म वही है जो ईश्वर की आज्ञा है, जो ईश्वर को मान्य है, जो सब का हित करने वाला है। ऐसा धर्म सदाचार युक्त भगवद्भक्ति है अतएव इस भगवद्भक्ति का साधन और प्रचार मन लगा कर करना चाहिये। ईश्वरीय भाव और इस भक्तिधर्म के प्रचार से ही हमारी और जगत् की यथार्थ उन्नति हो सकती है।

---

# ईश्वर भक्ति

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती]

क्लेश कर्मके विपाक से रहित को ईश्वर कहते हैं, ईश्वर निरतिशय ज्ञान वाला है, सबका बीज है, सबसे पूर्वका है उससे पूर्व कोई नहीं है सबसे बड़ा सबका गुरु है। देश, काल, वस्तु परिच्छेद से रहित है, यानी अमुक में है, अमुक में नहीं है, ऐसे देश करके जिसका टुकड़ा नहीं होता और न काल करके टुकड़ा होता है, प्रातः काल में है, सायंकाल में नहीं, सायंकाल में है मध्याह्न काल में नहीं ऐसा ईश्वर नहीं है यानी सर्व काल में है। इसी प्रकार वस्तु से भी टुकड़ा नहीं होता, कि इस वस्तु में है उसमें नहीं, ऐसा ईश्वर यानी सर्वगत व्यापक है। देश से टुकड़ा न होने से 'अस्ति' काल से टुकड़ा न होने से 'भाति' और वस्तु करके विभाग न होने से 'प्रिय' रूप है इससे सिद्ध हुआ, कि ईश्वर 'अस्ति भाति प्रिय' रूप है। इसी प्रकार अस्ति होने से 'सत्' हुआ, प्रकाशमान होने से 'चित्' हुआ, और प्रिय रूप होने से आनंद स्वरूप हुवा इसलिये ईश्वर 'सच्चिदानन्द' रूप सिद्ध हुआ।

दूसरी सरल रीती से समझिये जैसे वृक्षों

के समुदाय को ही बगीचा या वन कहते हैं तैसे ही ईश्वर व्यष्टि के समुदाय को कहते हैं जैसे बगीचा वन सर्व वृक्षों में व्यापक है, तैसे ही ईश्वर सर्व व्यष्टियों में व्यापक है। यानी समष्टि रूप है, दृश्य अदृश्य सर्व में व्यापक सर्व का आधार और अधिष्ठान है ऐसी व्यापक सत्ता का नाम ईश्वर है जो सबके प्राणों का प्राण, नेत्रों का नेत्र है। यानी यों समझिये कि जगत् ही ईश्वर का स्वरूप है, जैसे रज्जु ही भ्रान्ति काल में सर्प है, रज्जु से भिन्न सर्प नहीं है? और बोध काल में रज्जु ही है, सर्प है ही नहीं, यानी तीनों काल में रज्जु ही है, रज्जु न तो सर्प हुवा, न है और न कभी होगा। तैसे ही ईश्वर ही भ्रांति काल में जगत् है, ईश्वर से भिन्न जगत् नहीं है, और बोध काल में ईश्वर ही है जगत् है ही नहीं, यानी तीनों कालमें ईश्वर ही है, ईश्वर न तो जगत् हुआ, न है, और न कभी जगत् होगा। त्रिकालातीत ईश्वर ही था, है, और ईश्वर ही रहेगा यह ही अपेल सिद्धांत है।

कोई शंका करे कि जब ईश्वर ही है, तो जगत् प्रत्यक्ष देखने में क्यों आता है? और ईश्वर प्रत्यक्ष देखने में क्यों नहीं आता।

समाधानः-जगत् भ्रांति से कल्पित है, जैसे ठूंठ में भूत, आकाश में नीलता, बादलमें हाथीका आकार कान, पूंछ, सूंड दृष्टि आती है और जैसे फटी हुई दीवाल की रेखाओं में महाकाल भैरव की कल्पना करके भय को प्राप्त होकर औरों को भी अपनी कल्पना में बांध लेता है, जो कल्पना में दब जाते हैं, उनको दिखाता है, यह भूत है देखो, देखो, आकाश में हाथी घूम रहा है, देखो कान देखो पूंछ, देखो सूंड, इसी तरह भैरवको देखता है और दिखाता है इसी तरह जगत् को जानो, परंतु जब तक नहीं जान सकोगे, तब तक भ्रांति से कल्पित शरीर के साथ तादात्म्य करके अपने को शरीरधारी हूं, जीव हूं, अल्पज्ञ हूं और विनाशी हूं ऐसी कल्पना में बंधे रहोगे। इसी कल्पना से ईश्वर प्रत्यक्ष दृष्टि नहीं आता, वे भी भूल ही करते हैं, जो कल्पनाओं के नेत्रों से अकल्पित ईश्वर को देखना चाहते हैं। इसलिए इन कल्पित नेत्रों को हटा कर सच्चे नेत्रों से सच्चे ईश्वर को देखना चाहिये। जब सच्चे नेत्रों से देखने लगोगे तो फिर सिवाय ईश्वर के कुछ भी दृष्टि नहीं आवेगा। इसलिये इस कल्पना को दूर करने के लिये अकल्पित सच्चिदानन्द ईश्वर की भक्ति दीर्घकाल, निरंतर, आदर पूर्वक करिये, अगर भक्ति की तीव्र उद्रेकता हो तो दीर्घकाल का भी नियम नहीं है परंतु निरंतर, और आदर पूर्वक तो अवश्य होनी चाहिये। जिस से मिलना चाहते हो उसके अनुसार योग्यता भी बनानी चाहिये, मति तो अति नीच हो और रुचि ऊंची करना, यह बात नहीं बन सकेगी। भला बताइये तो सही अपने घर में तो छाछ भी इकठी नहीं होती और ब्राह्मणों को नोता देकर अमृत पिलाने की वाञ्छा करना। अगर आप कहें कि पुरुषार्थ को सब सामर्थ्य है, सो ठीक है यही शास्त्रकार कहते हैं। योग्यता प्राप्त करिये, योग्यता और पुरुषार्थ एक ही बात है इससे सिद्ध हुआ कि ईश्वर भक्ति तन, मन, धन से अवश्य करनी चाहिये। ईश्वर का स्वरूप ऊपर कह आये हैं अब भक्ति का स्वरूप भक्ति की आवश्यकता, भक्ति क्यों करनी चाहिये, भक्ति के लाभ, भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति, और

ईश्वर प्राप्ति से निजानंद की अभिन्नता संक्षेप से निम्न लिखित लेख द्वारा प्रकट करते हैं।

उपास्य और उपासक की एकता हो जाना यानी अभेद हो जाना, ध्याता, ध्यान, ध्येय, रूपी त्रिपुटी टूट कर केवल ध्येय ही रह जाना यह भक्ति का स्वरूप है। यों तो भक्ति अनेक प्रकार की है और वह विशेष २ मार्गों से प्रकाशित होती है। स्वभाव की वृत्तियों के भेद से पुरुष की भक्तियों का भी विभेद होता है। हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्य, क्रोध वा अहंकार के वश अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिये जो ईश्वर की भक्ति की जाय, उसको तामसी भक्ति कहते हैं। विषय, यश अथवा ऐश्वर्य की कामना करके भेद दृष्टि पूर्वक प्रतिमा आदि में पूजा करके जो ईश्वर भक्ति की जाय वह राजसी भक्ति है। जो व्यक्ति अपना पाप नष्ट करने की इच्छा से अपने संपूर्ण कर्मों को ईश्वर में अर्पण कर देता है और सर्वदा यज्ञादि करता है किन्तु जीव को ईश्वर से अलग देखता है, वह पुरुष अपनी आशा पूर्ण करने के लिए जिस आसक्ति से ईश्वर की पूजा करता है उस आसक्ति को सात्विकी भक्ति कहते हैं। जो मनुष्य ईश्वर के गुणों का श्रवण करते ही ईश्वर को सबके भीतर वर्तमान जानते हैं। जैसे गंगा का जल समुद्र में अभिन्न भाव से मिल जाता है, वैसे ही जो पुरुष अपनी कर्म गति को अवच्छिन्न भाव से ईश्वर में समर्पण करते हैं, उस आसक्ति को निर्गुण वा निष्काम भक्ति कहते हैं। ऐसे भाव से भक्ति करना ही पुरुषोत्तम ईश्वरकी अहैतुकी भक्ति कहलाती है। इस प्रकारकी भक्ति को ही आत्यंतिक भक्ति कहते हैं, इसी भक्ति से तीनों माया के गुणों का अतिक्रमण करके ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है। यही भक्तिका निज स्वरूपहै।

## ईश्वर भक्ति की आवश्यकता।

ईश्वर से अन्य सब आगमापायि हैं आगमापायियों में भक्ति करने से भक्ति भी आगमापायि होगी। और उसी में अगर अविनाशी ईश्वर के भाव से भक्ति होगी तो वह भक्ति भी अगमापायिनी होगी। ईश्वर सर्वव्यापक है इसलिये सर्व में ईश्वर की भावना होसक्ती है, ईश्वर आनन्द स्वरूप है और आनंद समस्त का ध्येय है, इससे ईश्वर की भक्ति सबको करने की आवश्यकता है। ईश्वर के नाम में भाषा का भेद भले ही रहो परंतु वस्तु में नहीं है। जो कोई व्यक्ति इस अभेद भावको स्थिर न करके केवल भेद भावसहित प्रतिमादि का पूजन करता है, मूढतावश भेद को नहीं त्यागता और अभेद भाव नहीं करता, अतएव उसका पूजन केवल राख में होम करने के समान है। यदि उससे पूछा जाय कि क्या ईश्वर सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान नहीं है? तब जवाब तो अवश्य यह ही देगा, कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् व्यापक है, जब कहा जाता है कि तुझ में भी तो है तब भय को प्राप्त होता है। यह तो ईश्वर के सर्वशक्तिमान् पने की टांग तोड़ना और व्यापक पने में धब्बा लगाना हुआ। राग द्वेष सहित ही प्रतिमा का पूजन किया जाय, राग द्वेष से रहित नहीं किया जाय तो अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता इसलिए अंतःकरण शुद्ध करने के लिये, 'यह ईश्वर की प्रतिमा है और ईश्वर सर्व व्यापक है ऐसा भाव करके ईश्वर भक्ति करने की आवश्यकता है।

कृष्णावतार

MURARI ART PRESS, DELHI.

## ईश्वर भक्ति क्यों करनी चाहिये ?

मनुष्य कहीं न कहीं भक्ति कर रहा है, और उन भक्तियों से दुःख उठा रहा है। आचार्यों ने तमाम विषयों में से भक्ति हटा कर ईश्वर में भक्ति करके प्रत्यक्ष सुख का अनुभव किया है। इस कारण से तुमको विषयों की भक्ति करने से अत्यंत दुःखी देख कर और भक्ति का तुम्हारा स्वभाव समझ कर आचार्य कहते हैं कि जस भक्ति को इधर विषयों में लगाते हो, और अत्यंत दुःख पाते हो। उस भक्तिको ईश्वरमें लगादो, और विषयों से हटालो, तो अत्यंत सुख की प्राप्ति होगी। सुख सब चाहते हैं विषयों की भक्ति सुख के लिये ही करते हैं, परंतु सुख की प्राप्ति नहीं होती। अगर यही भक्ति नित्य ईश्वर में करें तो नित्य सुख की प्राप्ति हो। विषयों की भक्ति से जन्म मरण रूपी क्लेश उठाते हैं और यही भक्ति विषयों में से हटा कर ईश्वर में लगादी जाय तो अमर पदको प्राप्त हों, इसलिये ईश्वर भक्ति करनी चाहिये।

## ईश्वर भक्ति से लाभ।

प्रथम तो यही प्रत्यक्ष लाभ है कि जितना काल ईश्वर भक्ति में लगाया जाता है उतने काल में तो शांति मिलती है ऊपरी झंझटें जो व्यर्थ को लग जातीं हैं वे उस समय तो दूर हो जाती हैं, कुसंगी और कुटुम्बी भी हमला करनेसे डरते हैं, स्त्री पुत्रादि जो अपने स्वार्थ के लिये तुम को आराम करने से रोक कर दुःख में प्रवृत्त कर रहे हैं, जो मित्र के समान दीखते हैं परंतु वास्तविक में स्वभाव से ही शत्रु हैं, जिस समय तुम ईश्वर भक्ति में लग जाते हो, उस समय तो इनकी भी दाल नहीं गलती। दूसरा लाभ यह है कि सज्जन पुरुषों में प्रीति बढती है, आप की प्रीति बढने से उनका भी प्रेम बढता है, फिर सज्जनों के संग से आसुरी संपत्ति दूर हो जाती है, दैवी संपति की प्राप्ति होती है। सज्जनों की संगत से सुख की वृद्धि होती है और दुष्ट पुरुषों के संग की उपाधि भी दूर हो जाती है। इतना होने से ईश्वर भक्ति में जो गुह्य रहस्य है जो बुद्धि ग्राह्य है, उस परम रहस्य के विचार करने की सामर्थ्य सज्जनों के संग से प्राप्त होती है। तत्पश्चात् ईश्वर भक्ति में अत्यंत प्रीति पैदा होती है, अनन्य प्रीति होने से ईश्वर अंतर्यामी की प्रसन्नता होती है, ईश्वर की प्रसन्नता होने से सर्व दुःखों की हानि होती है दुःखों की हानि होते ही परमानंद की प्राप्ति ईश्वर भक्ति से होती है।

## ईश्वर भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति।

परमानंद ईश्वर का स्वरूप है, ईश्वर भक्ति से परमानंद को प्राप्त हुआ तो ईश्वर की प्राप्ति ही है। यह नियम है कि जो जिसकी भक्ति करता है उसी को प्राप्त होता है। इसमें कोई शंका करे कि परमानंद को सभी चाहते हैं, उसका समाधान यह है, कि जो परमानंद में सत्यभाव रखते हैं वह परमानंद को ही प्राप्त होते हैं, परंतु परमानंद का भाव करके तुच्छानंद में ही संतोष कर लेते हैं, उनसे क्या कहा जाय, सब स्वतंत्र हैं। चाहे राम भजें चाहे काम भजें, परंतु ये नियम पक्का है, कि जो जिसको भजेगा उसी को अवश्य प्राप्त होगा। इससे सिद्ध हुआ ईश्वर भक्ति के करने वाले ईश्वर को ही प्राप्त होते हैं, इसमें कोई प्रकार का संदेह नहीं है।

# ईश्वर प्राप्ति से निजानन्द की अभिन्नता

ईश्वर प्राप्ति और निजानंद पर्याय शब्द हैं, जैसे राहु का शिर। राहु और शिर एक ही वस्तु हैं, राहुही शिर है और शिर ही राहु है। जैसे ईश्वर और प्रारब्ध, ईश्वर इच्छा ही प्रारब्ध, और प्रारब्ध ही ईश्वर इच्छा है, क्योंकि प्रारब्ध ईश्वर करके ही निर्माणित होती है। इसी तरह ईश्वर प्राप्ति और निजानंद को जानो। भौतिक निजता का त्याग करके आनंद को ग्रहण करो और अब विचार करो आनंद स्वरूप व्यापक ईश्वर भिन्न कहां है। यहही अनन्य भक्ति है, यहही अपना स्वरूप है वह ही निर्विशेष, कूटस्थ, अविकारी, अचल, अच्युत, अविनाशी, सच्चिदानंदादि जो श्रुति, स्मृतियां कथन करती हैं निजानन्द ही है, इससे भिन्न किंचित भी कुछ नहीं है इस रूप से लक्षित होने वाला आत्मा, आत्मा ( परमात्मा ) में ही स्थित होता है, अर्थात् परिपूर्ण स्वरूप से विराजमान होता है, इसी प्रकार की विचार दृष्टिसे देखने वाले के मन में भेद जनित भ्रम कैसे उत्पन्नहो सक्ता है ? अथवा उत्पन्न होकर भी हृदय में कैसे ठहर सक्ता है ? सूर्योदय होने पर आकाश मंडल में अंधकार रह सक्ता है ? अनुलोम, प्रतिलोम ( सृष्टि-संहार ) क्रम से संशय की गांठ खोलने वाली यह ईश्वर भक्ति ही है। इसलिये हे मित्रगणो ! अगर सुख सागर में गोते लगाना है तो तन, मन, धन से ईश्वर भक्ति परायण होना चाहिये।

## छप्पय

पाप सभी कट जांय, भक्ति ईश्वर कीजे।
जग से होय उदास, प्रेम प्रभु में कर लीजे॥
आवागमन नशाय, दुःख सब ही छुटि जावें।
शांति होय भरपूर, दुःख का लेश न पावें॥
निजानंद में मग्न हो, नित्य अमर पद पावगा।
आत्मानन्द प्रतापते, कभी न भव में आवगा॥ १

आशा तृष्णा त्याग, त्याग सब संशय दीजे।
मेरा तेरा भूल, भजन भगवत् का कीजे॥
पन कीजे एकांत, दुःख संसार मिटाओ।
लागो हरि के ध्यान, आप में आप समाओ॥
आत्मानंद में मग्न हो, सत्य अभय पद पावगा।
आत्मानंद हरि कृपासे, ब्रह्मानंद समावगा॥ २

विषय भोगदे छोड़, प्रीति भगवत् से कीजे।
नश्वर है संसार, भूलि परतीति न कीजे॥
दृश्य दृश्य सब त्याग, त्याग मत देखन हारा।
मिथ्या सारा दृश्य, सत्य है द्रष्टा प्यारा॥
दुर्मति दुविधा त्याग कर, हरि से चित्त लगावगा।
आत्मानन्द हो नाश दुख, निर्भय पद को पावगा॥ ३

आवे न कोई दुःख, शांति का मिले खजाना।
तम होवे सब नाश, मूढ हो जाय सयाना॥
माया होवे दूर, शरण भगवत् की लीजे।
क्यों पाता है दुःख, याद दुःख नाशक कीजे॥
मकतन मकतन त्याग कर, महा महा त्यागरे।
विषय भोग सब छोड़, कर ईश्वर में अनुरागरे॥ ४

# भगवान् का अवतार

[ ले० महामहोपाध्याय श्री० पं० गणेशदत्त जी शास्त्री ]

ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य और मोक्ष. जिसमें यह छः पदार्थ होते हुये अनन्त हों अथवा उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, प्राणियों का आवागमन, विद्या और अविद्या का जिसे पूर्ण विज्ञान हो वही सर्वत्र परिपूर्ण भगवान् शब्द का वाच्य है। वह अनन्त शक्तिमान् है, वह सच्चिदानन्द की नाम स्वरूप आत्मक चिर शक्ति है वह दो प्रकार की है एक विद्या शक्ति, दूसरी माया शक्ति। जो शब्द, रूप, रस, गन्ध, या इन्द्रिय व मन बुद्धि से ग्रहण किया जावे वही माया है। माया रचित पदार्थ में आत्माभिमानी अविद्या है। नास्ति, कोऽस्ति, की भांति दिखाना और कुरूप को रूपवान् दिखाना, माया शक्ति का काम है। इसी को अज्ञान कहते हैं। इस प्रकार की अनिर्वचनीय शक्ति वाले को भगवान् कहते हैं। यद्यपि आत्मा जन्मता और मरता नहीं आत्मा के साथ शरीर के योग को जन्म और वियोग को मरण कहा जाता है, परन्तु भिन्न २ पदार्थों का योग हो नहीं सकता क्योंकि आत्मा अति सूक्ष्म चैतन्य स्वरूप है और इन्द्रियां स्थूल पदार्थ हैं, इन दोनों का मिलाप असम्भव है, ऐसी अवस्था में आत्मा का जन्म या अवतार कैसे होगा! आत्मा देहधारी कैसे होगा? मनुष्य होने पर भी वह सर्वज्ञ कैसे होगा? फिर उसे नित्य भी क्यों कहेंगे? हां अनेक जन्मों का वृत्तान्त जानने से वह गतजन्मों की बात जानने वाला योगी जीव हो सकता है, परन्तु सर्वज्ञ ईश्वर नहीं। ईश्वर जीव के समान धर्म अधर्म के आधीन नहीं। इसलिये उस का जन्म लेना असम्भव है। यदि ईश्वर भूत प्रेत के समान प्राण युक्त भौतिक शरीर में प्रविष्ट होता है तो यह कथन भी व्यर्थ है, क्योंकि जो अन्तर्यामी स्वरूप से सब शरीरों में स्थित है वह किसी विशेष शरीर में क्यों कर प्रवेश करेगा। सूक्ष्मदर्शी न होने से बहुधा ऐसी शंकायें की जा सकती हैं परन्तु ऐसी शंकायें वही करते हैं जिनको यह ज्ञान नहीं है कि अनन्त आत्मा अन्त वाले शरीर को क्यों कर धारण कर सकता है। वास्तव में वह आत्मा अजन्मा हो कर भी जन्म वाले की भांति प्रतीत होता है। वह निराकार है, पूर्ण है, उसका किसी से भी वियोग नहीं होता तो भी जन्म लेने वाले की भान्ति गृहीत-जन्मा जान पड़ता है। वह सम्पूर्ण प्राणियों का ईश्वर है। कर्म, धर्म और अधर्म के वश नहीं। तो भी वह शरीर वाले की भांति हो जाता है। वह मायावी मनुष्य रूप से प्रकट होता है।

वह अपनी अनिर्वचनीय विचित्र माया से अपने से अपने में "वह" की सृष्टि रच लेता है। सृष्टि, स्थिति, लय स्वरूप प्रपञ्च जगत् भगवत् आत्मा की माया के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। ईश्वर का जो शरीर देखने में आता है वह जीव के शरीर की भांति भौतिक नहीं मनुष्य के शरीर की भांति आकृति वाला हो कर भी यह मायिक Illusive है। भगवान् के संकल्प से उत्पन्न होता है। वह माया मनुष्य है, उस का स्वरूप अस्ति, भाति, और प्रिय है, नाम रूप उसकी माया है। बड़े का

नाम रूप हटा कर केवल मिट्टी ही एक तत्व पदार्थ है। वैसे ही जगत् व शरीर का नाम रूप उठा देने से केवल सच्चिदानन्द ही है। जो वाणी और मन का विषय नहीं। है। जो अव्यक्त और सर्व शक्तिमान् है वह अपने स्वरूप में ज्यों का त्यों रह कर भी नाम रूपात्मिका शक्ति स्वरूपा मूर्ति को धारण करके भी अव्यक्त ही रहता है। जब शक्ति कर्म से अपने कार्य का प्रकाश करती है तब वह अव्यक्त अवस्था से व्यक्त अवस्था में परिवर्तित होती है। सच्चिदानन्द स्वरूप में कोई उस आत्मा को जान नहीं सकता। परन्तु नाम रूप ग्रहण कर लेने पर ही उसे सृष्टि, स्थिति, और प्रलय कर्ता पुकारा जाता है।

चित्त के ऊपर संकल्प उठता है, संकल्प भी एक शक्ति है। शक्ति भी यद्यपि जड़ है तो भी वह चित्त के दीवे की ज्योति से स्फूर्तिसी मालूम होती है। वह शक्ति चैतन्य की भांति होकर चित्तके दीवेके निकट होती हुई "मैं चित्त हूं" ऐसा निश्चय करती है। इसी को ब्रह्म का सगुण अवस्था में उतरना कहते हैं। इसी को सगुण ब्रह्म का हिरण्यगर्भ और विराट् अर्थात् सूक्ष्म और स्थूल शरीर में अवतार लेना कहा जाता है। वही ब्रह्म संकल्प देख कर भी जब "यह मैं नहीं" निश्चय करता है तब वह अपने अपरिच्छिन्न अखण्ड स्वरूप में रहता हुवा सनातन कहलाता है। वह जान लेता है कि मैं अपनी सत् चित् आनन्द वाली प्रकृति का आश्रय ले कर अपनी माया को वशीभूत करके अनेक अवतार ग्रहण करता हूं। अर्थात् अस्ति, भाति, प्रिय रूप अव्यक्त अवस्था नाम रूप माया द्वारा, आच्छादित की तरह हो जाने से पूर्ण आत्मा हो कर भी मूढ दृष्टि से परिच्छिन्न की भान्ति जान पड़ता हूं। वास्तव में बोधमात्र स्वरूप आत्मा ही की एक मात्र सत्ता जगत् रूप से निरन्तर स्थित हो रही है।

उपरोक्त भगवान् के विराट् शरीर से सहस्रों अवतारों का जन्म होता है और आवश्यक काम करने के पश्चात् विराट ही में उनका प्रवेश हो जाता है। सर्वत्र विस्तृत सूर्य्य को जिस प्रकार छोटे आकार वाला दिखाया जाता है उसी प्रकार सर्वव्यापी अधिष्ठान चैतन्य की घी-भूत ( Densified ) मूर्ति ही अवतार है। निराकार भगवान् का घी-भूत विग्रह ही हम लोगों का उपास्य देव है! यह एक ही समय में साकार और निराकार भी है। भाव में निराकार और स्थूल दृष्टि से साकार है। अब यह सिद्ध हुआ कि भगवान् सर्वात्मा माया के आश्रय से जन्म लेता है। जो अनन्त रूप अखिल विश्वरूप है, जिसने सम्पूर्ण प्रपञ्च को पेट में धारण किया है। वही देवादि देव अपनी माया के प्रभाव से देवकी के गर्भ में से बाल रूप प्रकट हुआ। वह भगवान् किस तरह माया वाली मूर्ति धारण करता है उसका दृष्टान्त भी सुनलो। जैसे कोई जादूगर अदृष्ट भाव से किसी अन्य स्थान में रह कर दूसरे जादूगर को बना डाले और दूसरे जादूगर के द्वारा विचित्र लीलाएं दिखाए वैसे ही चित्तस्वरूप ( बोधमात्र ) भगवान् भी अपने केवल भाव में रह कर भी अपनी माया द्वारा विचित्र रचनाएं रचडालता है परन्तु साधारण जादूगर और भगवान् में अन्तर यह है कि जादूगर का खेल समाप्त होने पर माया वाली सृष्टि नहीं रहती और वह दूसरा जादूगर भी नहीं रहता परन्तु भगवान् माया के उपसंहार काल में भी अपने राम कृष्णादि स्वरूप का उपसंहार नहीं करते, इसलिए भगवान् की मूर्ति नित्य और सनातन रहती है।

निस्सन्देह भगवान् का जन्म मरण नहीं होता परन्तु वह भगवान् आत्म देव अपनी त्रिगुण माया को स्वीकार कर चिदाभास के योग से शरीरधारी को भान्ति प्रकट होता है। भगवान् के शरीर को भगवान् की माया भगवन् की आज्ञा के अनुसार निर्माण करती है और कार्य की समाप्ति में माया तिरोहित हो जाती है।

# अभिलाषा

[ ले० श्री० प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, आश्रम ]

मन क्रम वचन चरण चित लाऊं।
प्रति क्षण तुम्हें भुलाऊं ना॥
अति तुच्छ विश्व के सकल विमोहन।
इन से तुम्हें गमाऊं ना॥ १॥
तीव्र वेग अति चंचल मन से।
नाथ तुम्हें बिसराऊं ना॥
दुष्ट दुराशाओं के दुर्दल से।
स्वामी तुम्हें दबाऊं ना॥ २॥
प्रोद्धत कामादिक भट रण में।
मिरें तो जान दुराऊं ना॥
ज्ञान खड्ग ले हनूं सर्व को।
नेकु शीस झुकाऊं ना॥ ३॥
श्याम सलौनी माधुरी मूरति।
और कछु वर पाऊं ना॥
पड़ा रहूं चरणों में "प्रभु" बस
और कहीं भटकाऊं ना॥ ४॥

---

# अंशावतार और पूर्णावतार

[ले० श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती]

जीव, अंशावतार और पूर्णावतार के कर्म भिन्न २ दृष्टिकोण से देखे जाते हैं जीव भाव का मूल कारण राग व द्वेष होने से जीव का अन्तःकरण कभी भी राग द्वेष से शून्य नहीं होसकता। अंशावतारमें इस तरह राग व द्वेष आदि कारण नहीं होते। अंशावतार, का काम समष्टी कर्म के अनुसार होता है और जिस देश व काल में अंशावतार का प्रादुर्भाव होता है उस देश कालमें उत्पन्न हुवे २ समस्त प्राणियों के प्रारब्धानुकूल कर्म धर्म के अभ्युदय के लिये अंशावतार होता है। अंशावतार किसी देश विशेष और कार्य विशेष के लिये होते हैं और इस कार्य के समाप्त होने पर इनकी आवश्यक्ता नहीं रहती परन्तु पूर्णावतार इन दोनों भावों से पृथक् होता है इस में न तो जीवों की भांति राग व द्वेष होता है और न अंशावतार की तरह भावकी प्रधानता। वह भावों से बिलकुल अलग होता है, इसके सारे काम भावातीत कोटि के होते हैं और ऐसे होने से इसके कामों में सांसारिक धर्म, अधर्म, पाप, पुण्य सत्य, झूठ, न्याय, अन्याय, कर्तव्य, अकर्तव्य कोई भी बन्धन या भाव नहीं रहता है इसके भवातीत स्वरूप में संसार के सभी भेदभाव मिट जाते हैं। इसमें द्वैत और अंहकार नहीं रहता, इसके सब कार्य्य केवल समष्टि जगत् के चिरस्थाई कल्याण को दृष्टि में रखकर होते हैं और समष्टि जगत् के कल्याण का विचार

करके ही इसके कामों में धर्म, अधर्म के स्वरूप का निर्णय होता है। जिस काम से व्यक्तिगत धर्म का सम्बन्ध है परन्तु समष्टि जगत् के कल्याण का सम्बन्ध नहीं वह काम कभी भी पूर्णावतार से नहीं होते वरञ्च पूर्णावतारसे कई ऐसे काम होते हैं जो व्यक्तित्वकी दृष्टि से ठीक नहीं होते परन्तु सामूहिक दृष्टिकोण से उनका होना धर्मके अनुसार होता है। इसलिये पूर्णावतार के कामोंका निर्णय करने के लिये सांसारी लोगोंका व्यष्टिगत दृष्टिकोण काम नहीं दे सकता। हम व्यष्टि रूपसे किसी ऐसे स्थान पर खड़े नहींहो सकते कि जहांसे हम समस्त जगत् की भलाई देख सकें और किसी एक काम पर शुभ कर्म या अशुभ कर्मकी छाप लगा सकें। इसलिये पूर्णावतार के कार्यों पर सम्मति देने के लिये पूर्णावतार के ही दृष्टिकोण की आवश्यक्ता है और यही कारण है कि अंशावतार के कामों को जानने के योग्य होते हुए भी सांसारी लोग पूर्णावतार के कामों के रहस्य को नहीं जान सकते क्योंकि स्थूल जगत् के निवासी ऐसी मेधावी बुद्धि वाले नहीं होते कि वह सूक्ष्म जगत् के भेदों को समझ सकें इसलिये रामादि चरित्र पर शंकाएं कम उठती हैं और पूर्णावतार भगवान् कृष्ण पर अधिक। आप भगवान् कृष्ण के जीवन चरित्र की इस घटना को देखिए।

महाभारत में लिखा है कि जब घोर युद्ध के पश्चात् भी द्रोणाचार्य्य की मृत्यु नहीं हुई और पांडवों की सेना बराबर हार खाती जा रही थी, तो उस समय द्रोण के मारने के लिये यह विधि सोची गयी कि इनके पुत्र अश्वत्थामा की मृत्यु की अत्यन्त शोकप्रद सूचना उनके कानों तक पहुंचाई जाय जिससे वह अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार युद्ध करना छोड़दें और उस समय उनको मार लिया जाय। इस नीति के अनुसार बहुत से लोगों ने द्रोणाचार्य से कहा कि अश्वत्थामा मर गये हैं। परन्तु इनको किसी का विश्वास नहीं आया। द्रोण ने कहा कि "यदि धर्मपुत्र युद्धिष्ठिर इस बात का समर्थन करदें कि अश्वत्थामा मारा गया है तो मैं विश्वास कर लूंगा"। यह एक चिन्ताजनक समय था इस समय भगवान् कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि आप झूंठ कह दीजिये कि अश्वत्थामा मारा गया परन्तु युधिष्ठिर सत्यवादी था उसने असत्य भाषण करने से इन्कार कर दिया। अन्त में जब भगवान् कृष्ण ने इनको अनेक प्रकार से समझाया तो इतना कहना स्वीकार किया कि "अश्वत्थामा मारा गया मनुष्य वा हाथी" क्योंकि उसी दिन अश्वत्थामा नाम का एक हाथी मारा गया था परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के कहने के अनुसार उसने यह भी स्वीकार कर लिया था कि अश्वत्थामा मारा गया इतने शब्द ऊंचे स्वर से उच्चारण कर दूंगा और दूसरे शब्द धीरे से फिर ऐसा ही हुवा और द्रोणाचार्य मारे गये।

अब विचार कीजिये कि जन्म से सत्यवादी होने पर भी एक झूंठ बोलने के कारण युधिष्ठिर को नरक देखना पड़ा परन्तु भगवान् कृष्ण जिनके कहने से युधिष्ठिर ने असत्य भाषण किया था नरक में न जाकर सीधे अपने धाम को चले गये ऐसा क्यों हुवा? जब सांसारी लोग भी अन्याय करने वाले को दंड देते हैं भगवान् कृष्ण को दंड क्यों नहीं मिला? उसका उत्तर यह है कि पूर्णावतार के कार्य विधि के विषय में यही सिद्धान्त निश्चय किया गया है कि पूर्णावतार किसी भाव के आधीन में होकर जगत् कल्याण बुद्धि से काम करता है इसलिये यहां

पर भी भगवान् कृष्ण ने सोचा कि द्रोणाचार्य जिस समय तक अधर्मी दुर्योधन की ओर हैं तब तक इनकी मृत्यु के बिना धर्म की विजय और संसार का कल्याण होना असम्भव है। एक ओर तो युधिष्ठिर की सत्य प्रतिज्ञा की रक्षा द्वारा व्यक्तिगत धर्म का पालन था और दूसरी ओर पापियों के नाश से समस्त जगत् का कल्याण था। इसलिये समष्टिगत और व्यष्टिगत धर्म के विचार से द्रोणाचार्य का मरना ही उस समय धर्म था और इसके लिये यदि किसी को झूठ भी बोलना पड़ा तो झूठ भी धर्म था। पूर्ण ज्ञानी, पूर्णावतार भगवान् श्री कृष्ण के हृदय में इस धर्म संकट की मीमांसा का निर्णय स्वतःसिद्ध था इसलिये इनको इस संसार के कल्याणार्थ किसी झूठ के बुलवाने में भी कुछ शंका नहीं हुई। इसके अतिरिक्त स्वाभिमान और स्वार्थ से रहित होने के कारण इनके भावातीत स्वरूप के साथ सत्य या असत्य भाषण करने का कुछ भी संबन्ध नहीं था और यही कारण है कि यह पाप पुण्य से अलिप्त संसार के सब कार्य करते हुवे फिर अपने धाम को चले गये। इनका दृष्टिकोण सांसारिक लोगों के दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न था परन्तु युधिष्ठिर की दृष्टि इतनी ऊंची नहीं थी। यदि युधिष्ठिर यह समझ लेते कि इस समय जगत् के कल्याण के लिये झूठ बोलना आवश्यक है और ऐसा समझ कर वह यह कर्म करते तो उनको भी कुछ दोष न होता और उनको नरक दर्शन न करना पड़ता। भगवान् अवतार धारण करके सब कर्म करते हुये भी कर्मों से लिपायमान नहीं होते यही मनुष्यों और भगवान् के अवतार में भेद है।

---

# भगवत् गुणगान

[ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी, आश्रम]

यह एक साधारण बात है कि जब कोई किसी की श्लाघा करता है तब वह अत्यन्त प्रसन्न होता है, और उस स्तावक के लिये सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर हो जाता है। श्रद्धालु शिष्य गुरु का गुणगान करता है, सेवक स्वामी का गुणगान करता है, मित्र मित्र का गुणगान करता है, और भक्त भगवान् के गुणों का गान करता है। प्रेम की अत्याकर्षण शक्ति प्रेमी का गुणगान, प्रेमी की श्लाघा करना प्रेमी के नाम में ही समाई हुई है। शिष्य गुरु को तन, मन, धन तथा सेवा द्वारा प्रसन्न करके परम पद की प्राप्ति में कृतकार्य होता है। सच्चा सेवक अपने स्वामी को योग्य सेवा तथा गुण वर्णनादि से निजाधीन कर लेता है। एवमेव दो मित्र पारस्परिक प्रशंसा से एक प्रेम बन्धन में जकड़े हुये होते हैं। मात्र इसी प्रकार अनन्य भक्त गुण कीर्तनादि से अपने परम इष्ट देव निज प्रियतम को पा लेता है। ध्याता निज ध्येय में सर्वगुणारोप करके ही ध्यानादि करता है। पुत्र निज माता को ही कामदुघा समझकर अम्मा २ कह कर पुकारता है। लोभी पुरुष सर्व प्रकार से धन को ही ध्येय जान कर इस प्रकार वर्णन करता है।

टका धर्म टका कर्म टका ही परमं पदम् ।
यस्य गृहे टका नास्ति हा टका टक टकायते ॥

उसके लिये टका ही धर्म है, टका ही कर्म है, तथा टका ही परमपद है। वह टके के लिये किसी की हाथ जोड़ स्तुति करता है, किसी के चरण पकड़ता है, परन्तु यदि वह ही लगन सर्वाधिपति जो धन जन सब का अधिपति है उस भगवान् में लगावे तो शास्त्र कहते हैं:-

आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया ।
तथा चेद्विश्वकर्त्तारं को न मुच्येत्बन्धनात् ॥

धन की कामना से जैसे मनुष्य धनी की स्तुति करता है यदि उसी लगन से विश्व के कर्ता त्रिलोकी नाथ की स्तुति करे तो कौन मुक्त न हो, अपितु सब मोक्ष को प्राप्त हो जावें। चराऽचर विश्व के सकल पदार्थ नाशवान् तथा अनित्य हैं, अनित्य स्त्री, पुत्र, धनादि में प्रीति करने से नित्य वस्तु की प्राप्ति होना ऐसे असम्भव है जैसे ऊपर भूमि में बीज डाल कर फल की आशा करना। लौकिक पदार्थों में प्रीति करने से लौकिक सुख की प्राप्ति हो सकती है। माया के ससर्ग से मायिक सुख प्राप्य है। प्रकृति के उपासकों को प्राकृतिक सुख अवश्य मिल सकता है परन्तु अक्षय सुख की प्राप्ति असम्भव है। राजा का सेवक वा ( प्रेमी ) राजा को सेवा द्वारा प्रसन्न करने पर धन वस्त्रादि ही राजा से प्राप्त कर सकता है परन्तु वह वस्तु जो सब की अभीष्ट है नहीं ले सकता। वह तो राजाधिराज भगवान् को जो प्रसन्न कर लेता है वही प्राप्त करता है। वह है भगवत् का धाम जिसको भगवान् ने गीता में निज भक्त अर्जुन के प्रति कहा है।

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्त्तंते तद्धाम परमं मम ॥

जिस स्वयं प्रकाश पद को न सूर्य, न चन्द्र, और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है, और जहां पर पहुंच कर पुनः संसार में नहीं आते वह मेरा परम धाम (परम पद) है। परन्तु सहसा कोई उस का पार नहीं पा सकता। सीढी २ चढने से प्राप्त हो सकता है। भगवान् कहते हैं मुझे तो मेरे भक्त जो मेरे ही गुणगान करते हैं, मुझ में ही परायण रहते हैं, मुझे सर्वोत्पत्ति का कारण मानते हैं, मुझे ही सर्व प्रवर्तक जानते हैं, श्रद्धाभाव से युक्त मुझ को ही भजते हैं, चित्त और प्राणों को मेरे में जोड़ कर निरन्तर मेरे गुणों का गान करते हैं तथा मुझ में ही सन्तुष्ट होकर रमण करते हैं, मैं उनके अज्ञान रूप अन्धकार को ज्ञान रूप दीपक से नष्ट करके परम पद की प्राप्ति देता हूं। जैसे कि मेरे भक्त प्रह्लाद ध्रुव आदि जो बाल्यभाव से ही मेरे परायण हो गये हैं जिनको माता पिता कुटुम्ब परिवार का यत्किंचित् भी मोह न था। जो प्रह्लाद पिता के दिये हुए ( पर्वत से डालना, अग्नि में जलाना, हाथों के पैर के नीचे दबवाना आदि ) दुःसह दुःखों के आने से भी मुझे न भूला, ऐसे भक्त मुझे परम प्रिय हैं। भागवत् में भगवान् निज भक्त के इस प्रकार लक्षण वर्णन करते हैं कि "जिसकी वाणी गद्गद् हो जावे, चित्त मेरे प्रेम में द्रवीभूत हो जाये, कहीं मेरे विरह रूप अनल से तप्त हो हीक फोड़ कर रुदन करने लगे, तथा कहीं प्रेम मग्न हो उच्च स्वर से हंसने लगे, कभी लज्जा रहित हो मेरे गुण गान करे कभी नृत्य करे ऐसा मेरा भक्त तीनों लोकों को पवित्र करता है। जिसके चित्त में न राग है,

न द्वेष है, न क्रोध है, न भय है, न लज्जा है, जो सब से निराश हो केवल मेरी ही आशा रखता हो ऐसा मेरा भक्त मुझे परम प्रिय है। उनके लिये तो भगवान् यहां तक कहते हैं कि:-

जहां भक्त मम पगधरे तहां धरूं मैं हाथ।
लारे लागो ही फिरूं कबहुं न छोड़ूं साथ॥

जब सब से नाता तोड़ कर विषयों से मन मोड़ कर एक उसी में लगन लगे तब प्यारे को ज्योति झलकती है। गजराज को जब तक निज बल का भरोसा रहा तब तक खूब ऐंचातानी की परन्तु जब बल का भी भरोसा न रहा तब उसी "निर्बल के बलराम" को पुकारा। तुरन्त भगवान् ने नंगे पैरों पहुंच कर उसे ग्राह से मुक्त किया। द्रौपदि को जब पांडव, द्रोण, भीष्मादि का भी भरोसा न रहा तब उसी अनाथों के नाथ, दीनों के दयाल, निराश्रयों के आश्रय, निराधारों के आधार, मोर मुकुटधारी, व्रजविहारी के कातर स्वर से गुणगान करने लगी तब घटघटवासी अन्तर्यामी ने जाना कि इसको मेरे बिना कोई अवलम्ब नहीं तब तो "वसन रूप भये श्याम" भगवान् चीर रूप हो गये और दश सहस्र हाथियों के समान बलवान् दुःशासन को भरी सभा में तिरस्कृत कर द्रौपदि की लाज रक्खी। इसी प्रकार भारत युद्ध स्थल में टटीरी के अण्डों की रक्षा की थी। ऐसे कृपालु भगवान् को त्याग कर जो मूढ इतस्ततः भटकते हैं वे व्यर्थ परिश्रम करते हैं। जैसा कि सनत्कुमार संहिता में कहा है:-

यो वासुदेवादन्यत्र मोक्षं प्रार्थयते कुधीः।
अग्नि भ्रान्तेः स खद्योतं शीत त्रासाय कल्पते॥

जो मूर्ख वासुदेव भगवान् से अन्यत्र मोक्ष की इच्छा करते हैं वे अग्नि की भ्रान्ति से शीत-त्राण के लिये जुगनु को कल्पना करते हैं। परन्तु भगवान् का वास कहां है इसके लिये एक बार नारद जी ने भगवान् से पूछा "कि भगवन! आप कहां रहते हैं? कोई आप से मिलना चाहे तो किस प्रकार मिले?" भगवान् बोले:-

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

हे नारद!

ना मैं वसूं वैकुण्ठ में योगिन मन न समाऊं।
जहं मम भक्त प्रेमयुत गावें तहां बसत सुख पाऊं॥

कोई काशी, कोई हरिद्वार, कोई वृन्दावन, कोई जगन्नाथ जाते हैं परन्तु भगवान् तो जहां भक्त है, वहां हैं। भक्त के लिये ही तो:-

पद धोऊं रथ हांकों मांजों बासन छान छवाऊं।

ऐसे वचन कहे हैं। भक्त सुदामा के चरण "पानी परात को हाथ छुयो नहीं नयनन के जल सौं पग धोये" आप ही ने तो धोये थे। भारत में अर्जुन भक्त का रथ आप ही ने तो हांका था। युधिष्ठिर के यज्ञ में आपने ही तो बर्तन मांजे थे। नामदेव भक्त की छान आपने ही तो छवाई थी। अर्थात् आप तो भक्तों के लिये ही अवतार धारण करते हैं जैसी अपने भक्त की रुचि देखते हैं तैसा ही रूप बना लेते हैं। भगवन् में नारद जी का वचन है।

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि॥

श्री भगवान् (जिन का चरण ही तीर्थ है) अपने यश का सुनना बहुत प्रिय समझते हैं, जब मैं गान करता हूं तब मानो बुलाये गये की न्याईं शीघ्र हृदय में उपस्थित होकर दर्शन देते हैं। अर्थात् जिस समय नारद जी भगवान् के गुणगान करते थे

तुरन्त भगवान् दर्शन देते थे । भागवत् में एक स्थल पर भगवद्गुण गान की महिमा इस प्रकार कथन की है कि:-

नैकान्तिकं तद्धि कृतेपि निष्कृते
मनः पुनर्धावति चेदसत्पथम् ।
तत्कर्म निर्हारमभीप्सतां हरे,
गुणानुवादः खलु सत्त्व भावनः ॥

पापों का शुद्धयर्थ प्रायश्चित्त पूर्ण रूप से शोधक नहीं होता, क्योंकि प्रायश्चित्त के करने पर फिर भी कदाचित् मन कुमार्ग को दौड़ता है, परन्तु यदि पापों को समूल नष्ट करना चाहे तो भगवद्गुण गान करे । प्रायश्चित्त करने से किंचित्काल पर्यन्त मन अवरुद्ध रहता है परन्तु भगवत् के गुणानुवाद से मन स्थिर होकर भगवत्परायण हो जाता है, किसी भी पाप में प्रवृत्ति नहीं होती । रामायण में भी भगवान् ने कहा है कि । "चौथी भक्ति मम गुणगणन करे कपट तजि गान" भगवत् की घोषणा है:-

नित्यं वदामि मनुजा स्वयमूर्ध्व बाहु-
र्यो मां मुकुन्द नरसिंह जनार्दनेति ।
जीवो जपत्यनुदिनं मरणे रणे वा,
पाषाण काष्ठ सदृशाय ददाम्यभीष्टम् ।

हे मनुष्यो ! मैं नित्य हाथ उठा कर कहता हूं कि जो मुझे मुकुन्द, नरसिंह, जनार्दनादि नामों से मरते समय वा रण में जपता है वह पाषाण वा काष्ठ के सदृश भी क्यों न हो उसे अभीष्ट फल देता हूं । गीतामें कहा है "ज्ञानी तथा अन्य भक्तमुझे कालान्तर में प्राप्त होते हैं परन्तु जो सब ओर से मन को रोक कर मेरे में ही नियुक्त करते हैं तथा मेरा ही गुणगान करते हैं, उनको मैं सहज में प्राप्त हो सकता हूं । कोई ध्यान से, कोई सांख्य योग से, तथा कोई कर्म योग से मुझे प्राप्त करते हैं परन्तु जो दूसरों से सुनकर ही मेरे गुणगान करते हैं वे भी मुक्तिको प्राप्त होते हैं ।

भगवान् का जो जिस रूप तथा नाम का प्रेमी होता है उसको उसी रूप में दर्शन देते हैं । मुसलमान अल्लाह कहते हैं, ईसाई गौड ( God ) कहते हैं, इत्यादि अनेक मत नाना रूपों तथा भिन्न भिन्न नामों से जिस प्रभुको पुकारते हैं वह एक ही है । श्रुति में कहा है:-

अहं प्रशास्ता सर्वस्य ।

मैं ही अखिल विश्व का शासक हूं । और-

अहं विष्णुश्च सर्वेश्च देवी विघ्नेश्वरस्तथा ।
एकोहं पंचधा जातो नाट्ये सूत्रधरो यथा ॥

जिस प्रकार सूत्रधार (नट) अनेक रूप धारण करता है इसी प्रकार मैं भी विष्णु, शंकर आदि रूपों में परिणित होता हूं अर्थात् जिस जिस रूप को जो २ भक्त श्रद्धासे उपासता है उसकी अचल श्रद्धा को मैं उसीमें धारण करता हूं । यह ही भगवद्वचन है । सूरदास जी कृष्णावतार के उपासक हुये उनको कृष्ण रूप में ही दर्शन दिये, तुलसीदास जी रामावतार के उपासक हुये उनको राम रूप में ही दर्शन दिये । कहते हैं तुलसीदास जी एकवार वृन्दावन में कृष्ण भगवान् के मन्दिर में गये और वंशी हाथ में लिये भगवान् की सुन्दर मूर्ति देख कर निज इष्ट के गुणों का गान करते २ कहने लगे कि:-

भली छवि है आज की भले बने हो नाथ ।
तुलसी मस्तक जब नवे धनुष बाण हो हाथ ॥

बस फिर क्या था भक्त वत्सल भगवान् तुरन्त ही वंशी की जगह धनुष बाण हाथ में ले राम रूप बन गये । तुलसीदास जी ने परम

प्रसन्नता से दर्शन किये। भगवान् तो "जे जेहि भाव नीक तेहि सोई" जो जिस भाव से देखता है उसको वैसे ही हैं। विशेषतः कलियुग के जीवों को तो मात्र यही उपाय है।

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे होम यज्ञैश्च कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

सत्ययुग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञ से तथा द्वापर में होम और यज्ञ से जो फल प्राप्त होता है वह कलि में केवल कीर्तन से लभ्य है जैसा कि आगे के श्लोक में कहा है:-

ध्यानात्कोटि गुणं स्तोत्रं स्तोत्रात्कोटि गुणं जपम्।
जपात् कोटि गुणं गानं गानात्परतरं न हि॥

ध्यान से कोटि गुणा अधिक स्तोत्र है, स्तोत्र से कोटि गुणा जप, जप से कोटि गुणा गान, गान से बढ़ कर भगवत् प्राप्ति का अन्य कोई सरल उपाय नहीं है। जितने भी भक्त हुये हैं सबने भगवत् गुणगान से भगवत् को पाया है।

भगवत् के गुण गान कर सकल कामना त्याग।
मिथ्या प्रेमी जगत के मिथ्या इन का राग॥
मिथ्या इनका राग सकल स्वारथ के रागी।
तज कर सबकी आश ईश भज हो वैरागी॥
ध्यान धारणा त्याग 'प्रभु' को टेरो गजवत्।
नंगे पांवों आय भक्त को हेरो भगवत्॥

---

# भक्ति का चमत्कार

[ले० श्री शिवनारायण जी भटनागर सम्पादक भारत]

कहते हैं कि लोक और परलोक दोनों का आनन्द ज्ञान या भक्ति से ही प्राप्त होता है। परलोक की तो हमें खबर नहीं परन्तु जहांतक इस लोक का सम्बन्ध है ज्ञान या भक्ति दोनोंमें से किसी के भी प्राप्त होजाने से मनुष्य सुखी रहता है और जो इस लोक का सच्चा सुख है वही दूसरे लोक का सुख हो सकता है, इसलिए हम अनुमान करते हैं कि उस लोक में भी जरूर आनन्द मिलता होगा।

वैसे तो यह दोनों ही मार्ग कठिन है परन्तु भक्ति में सरलता है। जहां ज्ञान में मनको डावांडौल होना पड़ता है और मस्तिष्क को विचारों की धाराओं का मुसाफिर खाना बनना पड़ता है, वहां भक्ति में चित्त सदैव प्रसन्न रहता है। वास्तव में ज्ञान के अथाह समुद्र के भवंर में पड़ कर डूबने से बचना उन्हीं मनुष्यों का काम है जिनके अन्तःकरण शुद्ध होते हैं। भक्ति, अटूट श्रद्धा और अटल विश्वास का नाम है। भक्त के हृदय में अगाध प्रेम होता है और वह इस प्रेम में ही मग्न रह कर आनन्द का अनुभव करता है।

मनुष्य के साथ जिन वृत्तियों का प्रादुर्भाव होता है उनमें भक्ति और भाव की वृत्तियां सब से प्रबल होती हैं। बालक में जब कि उसका हृदय सांसारी प्रलोभनों में फंसा हुआ नहीं होता भक्ति के

भाव बहुत देखने में आते हैं परन्तु ज्यों २ वह बढ़ा होता जाता है साधरण तौर पर यह भाव दबते जाते हैं, जिस प्रकार पीतल को मैल ढक लेता है और उसका रंग, रूप बदल जाता है तथा उसकी उपयोगिता कम होजाती है उसी प्रकार मनुष्य के मन पर बुरी वासनाओं का मैल चढ़ जाता है जो इसे संसार में बहुत दुःखी रखता है। यदि इसे सौभाग्य से कोई सद्गुरु मिल जावे तो वह उसके मन पर से बुरी वासनाओं का मैल साफ करके न केवल उसे चमकीला पीतल बना देता है बल्कि उसे सुवर्ण की भान्ति चमका देता है और यदि उसके हृदय में अगाध भक्ति उत्पन्न होजावे तो उसका अन्तरात्मा ब्रह्म में लीन हो जाता है, दुई का परदा उठ जाता है, भेद भाव मिट जाता है, जैसे कहा है:-

'मन तो शुदम तो मन शुदी'

मैं तू होगया और तू मैं होगया। भगवान् कृष्णने गीता में कहा है कि "जो मेरा भक्त है मैं उसे अपनाता हूं, द्रोणाचार्य जैसे बलवानों पर विजय दिलवाना भगवान् कृष्ण का ही काम था, अन्यथा वही गाण्डीव धारी अर्जुन था जिसे दो चार लुटेरों ने मार पीट कर सीधा कर दिया था। भक्त के संकट दूर करने की चिन्ता भक्त को नहीं बल्कि भगवान् को होती है। अर्जुन और भीष्म की प्रतिज्ञा पालन करने की चिन्ता कृष्ण को हुई। इसीप्रकार द्रौपदी की लाज रखने की चिन्ता भगवान् को हुई। प्रहाद भक्त को भस्म करने वाली अग्नि से बचाने की चिन्ता भगवान् को हुई और उसने उसे बचाया। इतना ही नहीं बल्कि भगवान् अपने भक्तों के वश में होते हैं। प्रेम और भक्ति का बन्धन भगवान् को इतनी दृढ़ता से बान्ध लेता है कि भक्त जो कुछ चाहता है इनसे करा लेता है भगवान् को प्रेम के पाश में बान्धने के लिए भक्त शिरोमणी सूरदास जी कहते हैं-

हाथ छुड़ाए जात हो, निबल जानके मोय।
हृदय में से जाओगे, तब मरद गिनेंगा तोय॥

कितना दृढ़ विश्वास है जिसने दूसरे को अपना आपा सौंप दिया उसका उस पर अधिकार होगया। इस प्रेम के आदर्श में भगवान् और भक्त का भेद मिट जाता है। भगवान् भक्त और भक्त भगवान् बन जाता है॥

यह मात्र भक्ति की शक्ति है परन्तु सच्ची भक्ति या सच्चा ज्ञान सद्गुरु के बिना प्राप्त नहीं हो सकता, यह राह बड़ी पेचदार है जब तक कोई पथ प्रदर्शक न हो, अपने आदर्श पर पहुंचना कठिन है; इसलिए साधारण मनुष्यों को चाहिए कि कोई सद्गुरु तलाश करके अपना मन उनके चरणों में रख कर अपनी चिन्ता आप करना छोड़दें और अपने को एक ऐसे महापुरुष के सुपुर्द करदें जो इनके सम्बन्ध में इनसे कहीं अच्छा सोच सकता हो। इस तरह मनुष्य का कल्याण हो सकता है और वह सांसारिक दुःखों से निवृत्त होकर परमानन्द को प्राप्त कर सकता है।

दुनियां के लोग साधु महात्माओं की बातें मानने से डरते हैं उसका कुछ यह कारण भी है कि आजकल भगवां वस्त्रों में ऐसे कुपात्र देखे जाते हैं जो साधुओं के नाम को भी बट्टा लगाने वाले हैं और साथ ही साधारण लोगों का यह भी खयाल है कि साधु महात्मा सब को साधु बनाना चाहते हैं परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। सद्गुरु अपने शिष्य की मनोवृत्ति देख लेता है और जो जिस कार्य को करने के योग्य होता है उसको वही काम सुपुर्द करता

है। महर्षि चाणक्य ने अपने शिष्य चन्द्रगुप्त को साधु बना कर जङ्गल में नहीं बिठाया बल्कि उससे विदेशी आक्रमण कारियों को जिन्होंने ऋषि भूमि को गुलाम बना लिया था पराजय करा कर इसके शिर पर भारतीय साम्राज्य का मुकुट रक्खा। समर्थ गुरु रामदासजी ने अपने शिष्य शिवाजी को साधु बना कर नहीं बिठाया बल्कि उसको यवनों के मुक़ाबले में खड़ा करके उससे हिन्दू धर्म्म और हिन्दु जाति की रक्षा कराई और मस्तक पर राज तिलक किया। मुझे विश्वास है कि अब भी भारत को स्वतंत्र कराने वाली ज्योति किसी सद्गुरु की कृपा से संसार को अपना चमत्कार दिखा कर भक्ति के नाम को चार चान्द लगाएगी।

## भगवत् प्यारे

करते नहीं द्वेष किसी से सब से मैत्री रखते हैं।
करुणा करते सब जीवों पर ममत्व शून्य जो होते हैं॥
अहंकार को याद न करते सुख दुःख में सम रहते हैं।
सामर्थ्य युक्त हो क्षमावान जो पृथ्वी के सम होते हैं॥
जो मिले सन्तुष्ट उसी में चित्त जिनका स्थिर है रहता।
दृढ़ निश्चय वाले होते हैं मन निश्चल जिनका होता॥
मन बुद्धि तदर्पण करते, करते ध्यान सदा उनका।
भगवत् को प्यारे होते हैं ऐसे योगी भक्त सदा॥
आचरण जिनके लख करके उद्वेग नहीं कोई पाता।
लोकों के संसर्ग से भी जिसे संताप नहीं होता॥
आनन्द, क्रोध, भय, त्रास से जो मुक्त होकर रहते हैं।
प्राणाधिक व प्राण स्वरूप, भगवान् को प्यारे होते हैं॥
स्पृहा नहीं किसी की करते अन्तर्बाह्य पवित्र रहते।
व्यवहार कुशल हैं सब प्रकार से उदासीन जगसे रहते॥
ममताहीन निष्काम कर्मों आर्तनाद से सदा परे।
आत्म स्वरूप भगवत् के होते ऐसे जो आचार करें॥
इच्छित पदार्थ की प्राप्ति से प्रसन्न हो नहीं फूलते।
अनुकूल के प्रति कूल होने पर नहीं जो झुरते॥
वियोग की चिन्ता न करते योग की कांक्षा नहीं।
शुभ अशुभ का त्याग करते भक्तप्रिय होते वही॥
विषमता मन में न लाते मित्र अरि सम मानते।
मानापमान समान जाने दुख सम व्यवहारते॥
शीतोष्ण से विचलित न होते धैर्य मन में राखते।
लिप्त न होते विषय में आसक्ति से हैं भागते॥
निन्दा स्तुति समान गिनते सत्यासत्य न भाषते।
अनिकेत, स्थिर बुद्धि होकर यथा विधि उपासते॥
पूर्ण श्रद्धावान होकर स्वधर्माचरण करते हैं।
ऐसे ज्ञानी भक्त सदा भगवत् को प्यारे होते हैं॥

---

## ईश्वरावतार

[ ले० श्री मदनगोपाल जी "सिंहल" ]

प्रेम की शक्ति प्रबल है। समस्त संसार इसके आधीन है। संसार ही क्या इस संसार के स्वामी भी इसकी डोरी से बंधे हुवे हैं। पिंजरे में धंसे हुए पक्षी की भांति जगत् नाथ इस प्रेम के प्रबल कोट में घिरे हुवे हैं। अपनी माया द्वारा चर अचर को कटपूतलियों के समान नचाने वाले नटवर इस के हाथ के

खिलौने हैं। यह अपनी शक्ति से उस निराकार को साकार बनाता है, उस अजन्मा को जन्म धारण कराता है और उस अनादि अनन्त को एक छोटे से जीव के शरीर में ले आता है। यह इस प्रेम की शक्ति है।

पाठक वृन्द यह प्रेम ही भगवान् के अवतार का हेतु है। कर्म बन्धन में फंसे हुवे जीवों का उद्धार करने के लिये वह व्यास और कपिल बन कर आता है तो पापी जीवों पर अपार प्रेम और दया दर्शाने के लिए क्षीरसागर की शेष शय्या को त्याग कर राम और कृष्ण बन कर पृथ्वी तल पर कूद पड़ता है। वेद भगवान् कहते हैं:-

रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव, तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते, युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश ॥

ऋ० मं० ६ अ० ४ सू० ४७ म० १८

ईश्वर अपने रूप को अपने प्रेमी भक्त के दिखाने के लिये अनेक प्रकार से धारण करता है। ईश्वर अपनी माया का आश्रय लेकर असंख्य रूपों को धारण करता है। यों तो उसके सैकड़ों रूप हैं किन्तु उन सब में दश मुख्य हैं। इसी लिये अवतारों में दश अवतार मुख्य हैं।

अवतार चार प्रकार के होते हैं आवेश, प्रवेश, स्फूर्ति और आविर्भाव।

यदि आप जल को अग्नि पर रक्खें तो कुछ ही समय के पश्चात् उस जल में अग्नि का अवतार होगा और वह जल अत्यन्त गर्म होने के कारण अग्नि का काम करेगा, शरीर पर गिर जाने से छाले डाल देगा परन्तु थोड़ी देर बाद शीतल हो जायगा। इसी प्रकार भगवान् का आवेशावतार होता है, यमदग्नि की मृत्यु पर अपनी माता का रुदन देख परशुराम में ईश्वर की शक्ति का आवेश हुवा बस उसी दिन से वह अवतार होगये। उन्होंने इक्कीस बार ब्राह्मण द्रोही क्षत्रियों का वध किया। इस संहार के बाद उनकी वह आवेश शक्ति निकल गई और वह फिर पूर्ववत् ब्राह्मण कुमार रह गये। इसी कारण वह भगवान् राम से युद्ध भी न कर सके। यह हुवा भगवान् का 'आवेशावतार'

यदि लोहे के गोले को अग्नि में गर्म करें तो कुछ देर पश्चात् अग्नि उसमें प्रवेश कर जायगी और वह लाल हो जायगा, घास फूस पर डालने से उनमें आग भी लगा देगा। इसी पुकार भगवान् का प्रवेशावतार होता है। दुःशासन के अत्याचार से पीड़ित द्रौपदी की टेर सुन कर भगवान् श्याम सुन्दर ने प्रवेशावतार धारण कर उसके चीर में प्रवेश किया। इसी कारण तो खैंचते खैंचते चीर का ढ़ेर लग गया, दुःशासन की भुजा थक गई किन्तु चीर का अन्त न आया! भगवान् के इस प्रकार के अवतार का नाम है "प्रवेशावतार"।

यदि दो बादल आपस में टकरायें तो उनसे अग्नि प्रकट होती है परन्तु जरा देर में ही छिप जाती है इसी प्रकार जगदीश का स्फूर्ति अवतार होता है। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से पूछा "क्या इस खम्भे में ईश्वर हैं" प्रह्लाद ने उत्तर दिया 'हां'। बस खम्भे से दैवी तथा आसुरी भाव टकराये और दोनों के संघर्ष से स्फूर्ति अवतार भगवान् नृसिंह प्रकट होगये। यह हुवा भगवान् का 'स्फूर्ति अवतार'।

यदि दो चीजें आपस में रगड़ी जायें तो उनके संघर्ष से सर्वव्यापक अग्नि साकार होजाती है। इसी प्रकार जब दैवी और आसुरी सम्पत्ति का संघर्ष होता है तो वह सर्वव्यापक निराकार से साकार

होकर साधुओं की रक्षा के निमित्त राम, कृष्ण के रूप में दौड़ा चला आता है। यह है 'आविर्भाव-अवतार'।

पाठको! आपने देखा भगवान् केवल इस प्रेम के कारण ही तरह तरह से शरीर धारण करते हैं। वह तो अपने प्रेमी भक्तों के दुःख दूर करने के लिये ही पृथ्वी तल पर आते हैं, फिर चाहे उन्हें अपने इस कार्य्य की पूर्ति के लिये दुष्टों का नाश ही करना पड़े। उनका प्रेमी चाहे कैसा ही और कोई भी हो वह इसका विचार नहीं करते। जिस समय उनका प्रेमी उनमें अनन्य शरण होकर उनका आह्वान करता है वह उसका आचरण नहीं देखते, उसकी अवस्था नहीं देखते, उसकी विद्या नहीं देखते, उसका कुल नहीं देखते, उसका धन नहीं देखते, उसकी सुन्दरता नहीं देखते, उसका पौरुष नहीं देखते। बस देखते हैं तो केवल उसका प्रेम और उस प्रेमके कारण ही वह कहा करते हैं:-

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विजः।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

मैं तो भक्तों के आधीन हूं, वह मुझे जैसी प्रेरणा करेंगे मुझे वैसा ही करना पड़ेगा, भक्तों ने मेरा हृदय पकड़ लिया है. मुझे तो संसार में भक्त ही प्यारे है और मैं उन्हीं के आधीन हूं।

"बोलो भक्त वत्सल परमेश्वर की जय"

# गीता से हमें क्या सीखना चाहिये?

[ से० श्री० पं० गंगाप्रसाद जी अग्निहोत्री ]

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय। (गीता २)

संतोष का विषय है कि आजकल थोड़े से भारतीय धर्म्म भीरु धनवान् गीता भक्तों का ध्यान गीता के प्रचार की ओर जाने लगा है। कोई कोई धनवान् गोभक्त गीता प्रचार के लिये सहस्रों रुपयों का दान करते रहते हैं। अभी उस दिन समाचार पत्रों में यह समाचार छापा गया था कि पिलानी के दानवीर श्रीयुत घनश्यामदास जी बिड़ला ने विद्यास्नात पंडित मदन मोहनजी मालवीय को पचास सहस्र रुपये इसलिये दिये हैं कि वे उस रकम से गीता का प्रचार करें। आशा है कि पूज्य मालवीय जी ने ज्ञानयज्ञ के दीक्षित उक्त बिड़ला जी की इच्छा के अनुसार गीता प्रचार का काम आरंभ कर दिया होगा।

गीता के जो मार्मिक पंडित गीता प्रचार के काम में लगे हुये हैं, उनकी सेवा में मैं यह प्रार्थना करता हूं कि गीता प्रचार के साथ साथ वे जनता में इस भावना का भी प्रचार करते जांय कि गीता संनिपात हो जाने पर सुनने की वस्तु नहीं है। ऐसा

होता तो गीता गायक गोविंद श्रीकृष्ण उसे अर्जुन को तब नहीं सुनाते जब वे पूर्ण युवा और स्वस्थ थे। उनके प्रयत्न से यह बहुत संभव है कि इस समय जो अधिकतर लोग गीता को मृत्यु शय्या पर सुनाने की चेष्टा करते हैं, वे उसे अर्जुन की नाईं यथा समय सुनेंगे, उस पर समाहित चित्त से विचार करेंगे और उसकी नाईं, इस समय की आवश्यकतानुसार बर्ताव करेंगे।

गीता को मनोनिवेश पूर्वक पढ़ने से यह ज्ञात हो जाता है कि गीता की शिक्षा इस लोक तथा परलोक के हितों से ओत प्रोत भरी हुई है विदेशी विद्वान् गीता का आदर इसीलिये करते हैं कि उसके दीर्घकालीन अनुभव जन्य उपदेश मनुष्य की सांसारिक उन्नति के प्रबल सहायक हो सकते हैं। गीता को सुनकर अर्जुन न तो समाधि लगाने वाला योगी ही बना था और न वाक्य ज्ञान का कोरा पंडित ही बना था। गीता को पढ़ कर वह योगस्थ कर्म्मयोगी बना था। उसके योगस्थ कर्म्म योगी बनने से ही उसे इस संसार तथा परलोक में कल्याण की प्राप्ति हुई थी।

जिस प्रकार अर्जुन को गीता सुनते समय अपने जन्म सिद्ध अधिकारों की रक्षा की आवश्यकता थी, उसी प्रकार प्रत्येक भारतवासी को इसबात की आज आवश्यकता है कि वह अपने जीवनाधार सात्विक भोज्यान्नों की रक्षा और उनकी वृद्धि के उपाय स्वयं करें और अपने मित्रों से उनके करने का आग्रह करें। इस दशा में गीता के प्रेमी पाठकों को गीता से जो अमोघ और अमूल्य शिक्षा मिल सकती है उसका उल्लेख संक्षेप में नीचे किया जाता है। विज्ञ पाठकों से प्रार्थना है कि वे इन पर विचार करें और अर्जुन की नाईं अपने विचारों को स्थिर करके तदर्थ मनसा, वाचा और कर्म्मणा सच्चा उद्योग करें।

गोपाल श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि इस संसार में सफल और यशस्वी बनने के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि मनुष्य जिस काम को हाथ में ले उसे वह पूर्ण पुरुषार्थ और निर्भीकता के साथ किया करे। यथा:-

क्लैब्यं मास्मगमः पार्थ।

इस समय जितने भारतवासी भारतीय गोधन की रक्षा के काम में अपने मन की लगन से वा बाहरी दबाव से लगे हुए हैं, उन्हें चाहिये कि वे अपने अभीष्ट काम को अर्जुन की नाईं पूर्ण पुरुषार्थ के साथ करें। गवामिव भोजी लोगों की कृपा के भिखारी बन कर उस काम को न करें। पिंजरापोलों और गोशालाओं का प्रत्येक सदस्य परम पुरुषार्थी और निर्भीक होकर जब घड़ी के प्रत्येक पुर्जे की नाईं सदा गोधन की रक्षा का उचित उपाय करता रहेगा, तभी उक्त संस्थाओं का उद्देश्य गोरक्षा सिद्ध होगा। जिन गोभक्तों ने पुरुषार्थ पूर्व्वक राय बहादुरी और राय साहिबी आदि को प्राप्त करने का प्रयत्न किया है और उन्हें वे प्राप्त कर सके हैं, वे थोड़ा सा ही विचार करें तो उन्हें ज्ञात हो सकता है कि जिस लगन के साथ उन लोगों ने उक्त उपाधियों को प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ किया है, उस लगन से गोधन की रक्षाके लिए कभी उद्योग नहीं किया उस लगन पुरुषार्थ और निर्भीकता से वे तदर्थ उद्योग करते तो वे गोरक्षा के कार्य्य में अवश्य ही अर्जुन की नाईं सफल होते। इसमें विंदुमात्र भी शंका नहीं है। अब तक इस विषय में उन लोगों ने

जो क्लीवता की है उसे छोड़ कर अब वे अर्जुन की नाईं पूर्ण पुरुषार्थ के साथ उद्योग करना सीखें तभी उनका गीता प्रचार और गीता का पाठ सफल होगा।

आगे चल कर गोविंद श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं।

योगस्थः कुरुकर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

हे अर्जुन! बिगड़े हुए काम को यदि सुधारना है तो सब प्रकार के तत्कालीन कामनाओं की इच्छा को छोड़ कर उस काम को तुझे संपूर्ण मनोवृत्ति को एकत्र कर करना चाहिए। उस काम के करने में तुझे जो सफलता वा असफलता हो उसे एकसी मान कर उस काम को कर। किसी काम को पूर्ण चतुरता के साथ करना ही 'योग' कहाता है।

इस समय जिन सज्जनों ने गोरक्षा का बीड़ा उठा रखा है वे थोड़ा सा है। विचार करें तो उन्हें ज्ञात हो सकता है कि जिस गोपरिपालन की शास्त्रीय विधि का भारत में आज सहस्रों वर्षों से लोप हो चुका है, उसका पुनः प्रचार करना है तो वह तभी होगा जब गोपाल श्रीकृष्ण के उक्त मंत्र के अनुसार काम किया जायगा। अर्थात् जब पिंजरापोलों और गोशालाओं के कार्य्यकर्त्ता, गोपरिपालन विधि को स्वयं अधीत कर उसका प्रचार और परिपालन करेंगे। इस प्रचार कार्य्य के करने में कुछ दिनों तक सफलता और असफलता को एकसा ही मानना पड़ेगा। काम के आरंभ करते ही उसकी सफलता की आशा करना कृपणता है। यह कृपणता ही गोरक्षा के काम को सफल नहीं होने देती।

आज कल के धनवान् कहा करते हैं कि हम तो बनिये हैं। हम उसी काम को करते हैं जिसमें चार पैसे मिल सकते हैं। ऐसे धनवान् गोभक्तों को भगवान श्रीकृष्ण के उक्त उपदेश पर बहुत अधिक ध्यान देना चाहिये और योगस्थ होकर गोपरिपालन की शिक्षा का बहुत सावधानी और चतुराई से प्रचार करना चाहिये। गोरक्षा के विषय में गोपरिपालन की शिक्षा का सावधानी से प्रचार करना ही योग करना है।

गोरक्षा के काम में योगस्थ होना ही बस नहीं है। किंतु उस काम में सफलता प्राप्त करने के लिये यथेष्ट बुद्धिमानी भी आवश्यक है। निम्न लिखित मंत्र में गोपाल श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं।

बुद्धौ शरणमिच्छस्व कृपणाः फल हेतवः।

अर्थात् गोरक्षा को सफल बनाने के लिये गोपरिपालन का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करना और उसका प्रचार करना अत्यंत आवश्यक है। गोशाला या दुग्धालय खोलते ही उससे धन कमाने की इच्छा रखना कृपणता है। ऐसे कृपण लोग इस महायज्ञ को कभी सफल नहीं कर सकते। भाव यह है कि इस बिगड़े हुए काम को-गोरक्षा के काम को-सुधारने के लिये अभी यथेष्ट ज्ञान और धन खर्च करने की आवश्यकता है। केवल थोड़ा सा दान दे देने से वा वर्ष छः महीनों में घंटे आधे घंटे के लिये गोशाला समिति की बैठक में चले जाने से गोरक्षा संपन्न नहीं हो सकती उसकी सफलता के लिये पूर्ण ज्ञान और उदारता की आवश्यकता है। भगवान् आगे और भी कहते हैं।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्म्मसु कौशलम्।

अर्थात् हे अर्जुन! उक्त कारणों को ध्यान में रख कर तू योग कर। हाथ में लिए हुए काम को

पूर्ण कुशलता के साथ करना ही 'योग' है।

अब गोभक्तगण उक्त मंत्र पर थोड़ासा ही विचार करें तो उन्हें ज्ञात हो सकता है कि अकेले गीता के पाठ मात्र से वा पिंजरापोल के मेंबरों की सूची में, प्रसन्नता से वा किसी के दबाव से नाम लिखा लेने मात्र से गोरक्षा नहीं हो सकती। गोरक्षा के लिये जितना ज्ञान आवश्यक है उतना ज्ञान प्राप्त कर जब गोरक्षा की जायगी तभी वह हो सकेगी। वैसा न करना अर्थात् गोरक्षा का आवश्यक ज्ञान प्राप्त न करना गीता के पाठ तथा गोरक्षा की विडंबना करना ही है। इस पाप से बचने का सहज उपाय यही है कि गोसाहित्य के पठन पाठन द्वारा गोरक्षा का प्रयत्न करना ही सच्ची गोरक्षा का फलप्रद उपाय है।

गोरक्षा के काम में जिस मनोयोग की अत्यंत आवश्यकता है, उसका ज्ञान गीता प्रेमी भक्तों को नीचे लिखे हुए मंत्र से हो सकता है।

श्रुति विप्रतिपन्नाते यदा स्थास्यति निश्चला:।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥

अर्थात् वेदों के भिन्न भिन्न अर्थों के मंत्रों को पढ़ कर तेरी जो बुद्धि चंचल हो गई है, वह बुद्धि जब मनकी वृत्तियों को एक करने से निश्चल हो जायेगी तब तू योग कर सकेगा।

इस समय गोभक्तों की बुद्धि को नाना प्रकार की कल्पनाएं चंचल बना रही हैं। कोई गोभक्त कहते हैं कि सरकार से कहना चाहिये कि वह कानून बना कर गोवध को रोक देवे। कोई कहते हैं कि सरकार से यह कहा जाय कि वह गोचर भूमि को कर मुक्त कर देवे। कोई कहते हैं कि गोधन के बाजारों में जाकर लोगों को उपदेश दिया जाय कि वे लोग अपने गोवंशज प्राणियों को कसाइयों के हाथ न बेचा करें। कोई कहते हैं कि कसाइयों के हाथ में पड़े हुए गोकुल के प्राणियों को धनसे खरीद कर उनकी प्राण रक्षा की जाय। कोई कहते हैं कि प्रत्येक गांव में नानाप्रकार के रजिष्टर रखे जांय। उनमें गोकुल के प्राणियों का विवरण लिखा जाय उससे गोरक्षा हो जायगी। कोई कहता है कि प्रत्येक हिन्दु अपने घर गौ का पालन किया करे और वह उसे अहिंदु के हाथ न बेचा करे। ऐसा करने से गोरक्षा हो जायगी। तात्पर्य उक्त प्रकार की बातों को सुन सुन कर गोभक्तों की बुद्धि अधिकाधिक चंचल होती जाती है। उस चंचल बुद्धि की चंचलता तभी मिटेगी जब वह इस बात को ध्रुव सत्य मानेगी कि गोपरिपालन कि शिक्षा के प्रचार और प्रयोग से ही गोधन का विकलांग होना बन्द होगा। और जब पशुओं का विकलांग होना घटेगा तभी गोवध बन्द होगा। जब यह भावना प्रत्येक गो भक्त के मनमें स्थिर होगी तभी वह योगस्थ होकर गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार और प्रयोग कर सकेगा गीता के अनन्य भक्तों को उक्त मंत्र से यह शिक्षा लेकर गोरक्षा के काम को सफल बनाना चाहिये।

भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि मनुष्य जब अपने मनको प्रसन्न रखता है तभी वह योगस्थ हो सकता है। अतः सांसारिक कामों को सफल करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वे अपने मनको सदा प्रसन्न रखा करें। मनके प्रसन्न रखने से सब दुःख दूर हो जाते हैं। साथही मनकी वृत्तियां एकत्र होकर मनुष्य को योगस्थ बना सकती हैं। यथा:-

प्रसादे सर्व दुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्य्यवतिष्ठते ॥

जो मनुष्य योगस्थ हो सकता है, उसके अंतरंग बहिरंग लक्षणों का वर्णन भगवान् ने गीता के दूसरे अध्याय के पचपनवें मंत्र से एकहत्तरवें मंत्र तक बहुत अच्छा किया है। निरंतर अभ्यास करते रहने से मनुष्य उन लक्षणों को प्राप्त कर सकता है। गोरक्षा का तप करने वाले लोगों को उचित है कि वे उनकी प्रसन्नता को प्राप्त कर गोरक्षा के काम में लगे रहा करें।

गोपाल श्री कृष्ण अर्जुन से आगे लिखे हुए मंत्र में कहते हैं कि इस संसार के हर एक काममें सफलता पाने के दो मार्ग होते हैं जिनकी चर्चा मैंने बहुत पहले की थी और अब पुनः तुझे उसका रहस्य बताता हूं। जिन दो मार्गों से सांसारिक कामों में सफलता होती है, उनके नाम ज्ञान और कर्म हैं। ज्ञानकी सहायता से ज्ञानी लोग उपाय ढूंढ़ते हैं और कर्म्मनिष्ठ लोग उन उपायों से काम कर सफलता प्राप्त करते हैं। वाष्प और विद्युत् की शक्ति का पता ज्ञानी लोगोंने लगाया है उस पतेको काममें लाकर धनवान् लोग आज दिन वाष्प और विद्युत् की शक्ति से बड़े बड़े कल कारखाने चला कर जो लाभ उठा रहे हैं, उसे भारत का बच्चा बच्चा जानता है। उक्त ज्ञान और कर्मयोग के महत्व की भगवान् ने जिस मंत्र में चर्चा की है वह मंत्र इस प्रकार है।

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ ॥
ज्ञान योगेन सांख्यानां कर्म योगेन योगिनाम् ॥

भारत के जो धेनुभक्त पिछले पचास वर्षों में धेनु का निवारण कर गोरक्षा को सफल बनाने में लाखों नहीं करोड़ों रूपये खर्च कर चुके हैं, पर अभीतक उन्हें इस काममें लेश मात्र भी सफलता नहीं हुई है, वे गोपाल श्री कृष्ण के उक्त मंत्र में कहे, हुए सिद्धांत पर विचार करें तो उन्हें, तत्क्षण नहीं तो विचारांत में ज्ञात हो सकता है कि उनकी असफलता का कारण यही है कि वे प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन और अनादर कर सफलता की आशा करते हैं। जिस अपालन रूप अज्ञान के कारण धेनुवंश के प्राणी बहुत बड़ी संख्या में विकलांग बनाये जाते हैं, उस अपालन को विद्वानों द्वारा बताए हुए गोपरिपालन के जो उपाय ढूंढे गये हैं, उन उपायों का गोसाहित्य द्वारा जब जनता में कर्म्म योगी धेनुभक्तों द्वारा प्रचार किया जायगा, तभी धेनुरक्षा सफल होगी अन्य लोग उस बात को भलेही न मानें। पर गीता के अनन्य भक्तों को इस सिद्धान्त को मान कर धेनुरक्षार्थ उद्योग अवश्य ही करना चाहिये। वे भी यदि इस भगवदाज्ञा की उपेक्षा ही करेंगे तो उनका गीता का पठन पाठन तथा उसके प्रचार का यत्न एक ढकोसलाही कहा जायगा।

गीता पढ़ कर जो लोग केवल ब्रह्म विद्या के कोरे गीत गाया करते हैं किंतु अपने देश भाईयों के अन्न वस्त्र के कष्टों को दूर करने के अभिप्राय से कर्म्म योग का अनुष्ठान नहीं करते, उन्हें गोपाल श्री कृष्ण के कहे हुए निम्न लिखित उपदेश पर विशेष रूप से विचार करना चाहिये।

यस्त्विंद्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ॥
कर्मेन्द्रियैः कर्म योगमसक्तः स विशिष्यते ॥

अर्थात् जो लोग ज्ञानी लोगों द्वारा ढूंढे हुए उपायों को काम में लाने के लिये अपनी कर्मेंद्रियों को काम करने में लगाते हैं, साथ ही उनके फलके लिये आतुरता नहीं करते वे ही लोग इस संसार में

सफल हो सकते हैं। किंतु इसके विपरीत जो लोग कर्मेंद्रियों से काम नहीं करते किंतु इंद्रियों के विषयों को भोगने की इच्छा किया करते हैं वे ढोंगी हैं। उनके किये न तो संसार की ही भलाई हो सकती है और न अपने परमार्थ की ही उन्हें प्राप्ति हो सकती है।

जो धेनुभक्त धेनुरक्षा के नाम पर करोड़ों रुपयों के दान की थोथी घोषणा करना जानते हैं किंतु गोपरिपालन की यथार्थ शिक्षा का प्रचार करने में पांच पैसे तक खर्च नहीं करते वे लोग धेनुपाल श्रीकृष्ण के उक्त उपदेश पर थोड़ा सा ही विचार करें तो उन्हें ज्ञात हो सकता है कि उनकी धेनुरक्षार्थ की हुई थोथी घोषणाओं से सच्ची धेनुरक्षा कभी नहीं होगी। और जब जनता को उनके मिथ्याचरण का ज्ञान हो जायगा तब वह उनकी थोथी गोभक्ति के लिये उन्हें कोसेगी। अतः धेनुभक्तों को चाहिये कि वे जनता को धोखा न देवें। किंतु अपने धनबल, जनबल और प्रज्ञाबल को यथार्थ धेनुरक्षा के तथ्यपूर्ण उपायों का सेवन करने में अर्थात् जनता में गोपरिपालन की शिक्षा का यथेष्ट प्रचार करके धेनुरक्षा के कर्म्म को संपन्न करने में ही लगाते रहें। योगेश्वर श्रीकृष्ण से उक्त उपदेश को सुन कर अर्जुन ने कर्मानुष्ठान द्वारा ही अपना जन्म सिद्ध राज्य प्राप्त किया था। धेनुभक्त लोग जब गोरक्षार्थ कर्म्मानुष्ठान करेंगे तभी वे धेनुरक्षा को सफल कर सकेंगे। उनके पिंजरापोलादि के केवल मेम्बर, सभापति, वा मंत्री बन कर सदा अकर्मण्य बने रहने से यथार्थ धेनुरक्षा कभी नहीं होगी। यथार्थ धेनुरक्षा के लिये उन्हें यथेष्ट कर्म्मानुष्ठान ही करना होगा।

काशी जैसे पावन धाम में सत्संग भवन में बैठ कर जो गीता और गोविंद के भक्त केवल गीता का पाठ किया करते हैं उन्हें कर्मयोगी भगवान् के इस उपदेश पर पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये कि मुझे न तो संसार में ही कोई वस्तु अप्राप्य है और न परलोक में हा, तो भी मैं सदा कर्म्मानुष्ठान इसी लिये करता रहता हूं कि जनता मेरा अनुकरण कर सदा सुखी बनी रहे। जब षडैश्वर्य संपन्न भगवान् लोगों के हितार्थ कर्मानुष्ठान करते रहते हैं तब उन महाराजाधिराज, राय बहादुर, और राय साहब आदि धेनुभक्तों को सदा सक्रिय धेनु पालन कर उसकी शिक्षा का प्रचार क्या नहीं करते रहना चाहिये जो अपनी धेनुभक्ति का ढोल बड़ी बड़ी सभाओं के सभापति बन कर स्वयं पीटा करते हैं। ऐसे अकर्मण्य और कीर्तिलोलुप गोभक्त धेनु-पाल श्रीकृष्ण के नीचे लिखे हुए मंत्र को समझ कर पढ़ें।

- यदि ह्यहं न वर्तेयं जातुकर्मण्यतंद्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

इस समय भारत में विकलांग धेनुधन की संख्या इसीलिये बढ रही है कि धनवान् धेनुभक्त न तो स्वयं गवायुर्वेद की शिक्षा के अनुसार धेनुपालन करते हैं और न धेनुपरिपालन की शिक्षा का प्रचार ही करते हैं। उनका अनुकरण कर अज्ञान जनता विकलांग धेनुधन की संख्या बढाती जाती है। वह संख्या तभी घटेगी जब गीता के धनवान् भक्त लोग स्वयं अपने घर गवायुर्वेद की शिक्षा के अनुसार धेनुपालन करेंगे और जनता में धेनुसाहित्य के प्रचार द्वारा धेनुपालन की शिक्षा का पर्याप्त प्रचार करेंगे। गीता के उक्त मंत्र के पाठ का पुण्य उन्हें तभी मिलेगा जब वे स्वयं धेनुपालन स्वरूप

कर्मानुष्ठान करेंगे। वे उसे नहीं करते इसलिये उन्हें धेनुधन को नष्ट करने का पाप लग रहा है। जो धेनुभक्त गीता के उक्त मंत्र का प्रति दिन पाठ करते हैं, परंतु उसके अनुसार, इस समय की अत्यंत आवश्यकता जो धेनुपालन है, उसकी लेशमात्र भी चिंता नहीं करते, वे भगवान की उक्त आज्ञा का अपमान करने के कहीं अधिक दोषी हैं। उनका यह काम है कि वे स्वयं भगवान की, लोक हितार्थ उक्त आज्ञा का परिपालन करें और जो लोग उस आज्ञा का पालन करने के लिये पूर्ण रूप से समर्थ होने पर भी, अज्ञान वश उसका पालन नहीं करते हैं, उन्हें उसके पालन का ज्ञानोपदेश करें। इस काम को वे यदि नहीं करते हैं तो उनका गीता पाठ व्यर्थ ही है। क्योंकि भगवान् गीता में इस बात को स्पष्ट रूप से कह चुके हैं कि जो लोग उनकी समयानुमोदित आज्ञा का अनुष्ठान नहीं करते वे प्रकांड पंडित होने पर भी नष्ट हो जाते हैं। इस अनिष्ट परिणाम से बचने के लिये गीता के अनन्य सेवन धेनुभक्तों को धेनुपालन का स्वयं अनुष्ठान करना चाहिये। साथ ही इसका प्रचार भी पर्याप्त मात्रा में करते रहना चाहिये।

धेनुपाल श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन जब यह सृष्टि उत्पन्न की गयी थी, तभी लोगों को समझा दिया गया था कि तुम लोगों को अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये अपने अपने कर्त्तव्य कर्म्मों का अनुष्ठान करते ही रहना पड़ेगा। कर्तव्य कर्म्म का अनुष्ठान तुम्हें कामधेनु का फल देगा। अर्थात् वह तुम्हारी सब मांगों को पूरी करता रहेगा। यथा-

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्ट कामधुक्॥

भगवान् का यह मंत्र धेनुभक्तों को यही उपदेश देता है कि आप लोग उचित रूप से धेनुपालन करें। आपकी उचित सेवा से प्रसन्न होकर गोवंश आपके लिये पर्याप्त मात्रा में सात्विक भोज्यान्न तथा व्यापार द्रव्य पैदा करेगा। उसे खा पीकर तथा बेच कर तुम लोग धनी और सुखी होगे। तात्पर्य गोपरिपालन तुम्हारे लिये कामधेनु का काम देगा।

आगे चल कर श्रीकृष्ण ने यह भी स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि जो मेरी उक्त आज्ञा को नहीं मानेंगे अर्थात् गोपरिपालन नहीं करेंगे, उन्हें दुःखी होना पड़ेगा। यथाः-

एवं प्रवर्त्तितं चक्रं नानुवर्त्तयतीह यः।
अघायुरिंद्रिया रामो मोघं पार्थ स जीवति॥

अर्थात् जो धनवान् गोपरिपालन की उपेक्षा कर, मिल और नाना प्रकार की फैक्ट्रियों को चला कर धन कमाते हैं और उनके चलाने में गोवंश के प्राणियों के चमड़े तथा चर्बी का प्रयोग करते रहते हैं उन्हें समझ रखना चाहिये कि उनका जीवन व्यर्थ ही है। क्योंकि उनकी कृति द्वारा जनता के भोज्यान्नों की उपज कम होती जाती है। इसीलिये भगवान् के बताये हुए कर्तव्यकर्म रूप चक्र को न चलाने के वे दोषी हैं। इसीलिये उनके जीवन को भगवान् ने व्यर्थ कहा है। उनके जीवन को व्यर्थ कह देने में भगवान् को संतोष नहीं हुआ वे उनके जीवन को पापमय भी कहते हैं। जो सज्जन एक ओर गीता के पाठ और प्रचार का आग्रह करते हैं और दूसरी ओर उनकी आज्ञा का पालन करने

में आना कानी करते हैं उन्हें भगवान् की उक्त आज्ञा को मनन पूर्वक समझ कर उसका आदर करना सीखना चाहिये।

इस समय परमेश्वर की उक्त आज्ञा का पालन इसी काम में है कि भारत भर के धनवान् मिलकर गोपरिपालन का प्रबंध करें। गोपरिपालन का प्रबन्ध होते ही भगवान् का उक्त कर्तव्य कर्म का चक्र चलने लगेगा। भाव यह है कि गोकुल का यथोचित परिपालन होते ही जनता के लिये सात्विक भोज्यान्नों की विपुलता हो जायगी। उससे जनता सुखी और संतुष्ट होगी।

ऊपर कहे हुए सुख समाधान देने वाले कर्तव्य चक्र को भारतीय धनवान् अपने पुरुषार्थ से स्वयं चला सकते हैं। उसके चलाने में सरकार की वा गवामिषभोजी लोगों की विन्दु मात्र भी सहायता आवश्यक नहीं है। अपने हितोंका अपने आपको प्रबन्ध करना होता है। उस प्रबन्ध के करने में क्लीवता, कृपणता, और कायरता करना अपने जीवन को धेनुपाल श्रीकृष्ण के पूर्ण शब्दों में, पाप-मय बनाकर व्यर्थ करना ही है। कहना नहीं होगा कि गीता को पढ़ कर अपने जीवन को पापमय और व्यर्थ बनाना मनुष्यत्व से बाहर की बात है।

अन्त में गीता के अन्य भक्तों तथा प्रचारकों से इस जनकी बारंबार यही विनीत प्रार्थना है कि गीता में धेनुपाल श्रीकृष्ण ने सांसारिक हितों को प्राप्त करने के जो अमोघ और शीघ्र फलप्रद उपाय बताये हैं, जिनका संक्षेप में ऊपर उल्लेख किया गया है, उनकी ओर भारतीय जनता का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करने की कृपा कीजिये। इस समय भारतीय जनता को अपने अन्न वस्त्र के प्रश्न को सरल और सुलभ बनाने की अत्यधिक आवश्यकता है। गीता के उप-देशों की सहायता से भारतीय जनता अपने अन्न-वस्त्र के प्रश्नों की कठिनता और जटिलता पर विजय प्राप्त कर सकती है। गीता के उपदेशों का यथार्थ ज्ञान जनता में फैला देने से जनता उससे लाभ उठा सकती है। जनता के समस्त मंगलों की आदि जननी गौ ही है। उसके यथार्थ परिपालन की शिक्षा गोसा-हित्य तथा आदर्श गोशालाओं की स्थापना द्वारा सुगमता से फैलाई जा सकती है।

नागपुर की धेनुरक्षण सभाने जिस प्रकार उदारता पूर्वक मेरे सातों आवश्यक पुस्ताओं को स्वीकृत कर धेनुपरिपालन की शिक्षा के प्रचार की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करना प्रारम्भ कर दिया है, ठीक उसी प्रकार भारत भर के पिंजरापोलों और धेनुशालाओं के संचालकगण, इन प्रस्ताओं को स्वीकृत करने की तथा व्यापक उपायों से काम लेने का प्रबन्ध कर सकें तो गोपाल श्रीकृष्ण के उक्त उपदेश का आदर करने का पुण्य उन्हें मिल सकता है। साथ ही उस पुण्य के प्रताप से वे समूचे भारत को अन्नवस्त्र का सुख पहुंचा कर उसे सुखी और संतुष्ट कर सकते हैं।

आशा है कि गीता के अनन्य भक्त गीता से उक्त उपदेशों को अवश्य ही सीखेंगे। गीता के अनन्य भक्तों को गोपाल श्रीकृष्ण का निम्न लिखित मंत्र सदा स्मरण रखना चाहिये।

येत्वेदमभ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः॥

अर्थात् जो लोग गीता को पढ़कर उसके ज्ञान से अपनी वर्त्तमान आवश्यकता को पूरी नहीं कर

सकते वे प्रकांड पंडित होने पर भी नष्ट हो जाते हैं गीता के भक्तों को इस पाप से बचना चाहिये। अपनी वर्त्तमान आवश्यकता को पूर्ण करना हमें गीता से सीखना चाहिये। यह सीखना ही गीता का आदर करना है।

---

## इच्छा

( ले० मदन गोपाल सिंहल )

इच्छा है मन एक ही ना है लाख करोर ।
एक बार करके दया देखो मेरी ओर ॥
देखो मेरी ओर पड़ी है झोली खाली ।
दाता तुमने नहीं दर्श की भिक्षा डाली ॥
क्या है मन में सोच, लेत क्या मोर परिक्षा ।
जो की इतनी देर पूर्ण करने में इच्छा ॥

## श्रीचैतन्य तत्व

[ले० आचार्य श्री मदनमोहन जी गोस्वामी, भक्तितीर्थ भागवत रत्न वृन्दावन ]

तत्व निरूपण के प्रथम प्रमाणकी आवश्यकता होती है। क्योंकि, विना प्रमाण के प्रमेय वस्तु का निरूपण नहीं हो सकता। प्राचीन शास्त्रवेत्ताओं ने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, सम्भव, ऐतिह्य इन आठ प्रकार के प्रमाणों को स्वीकार किया है। इन्हीं प्रमाणों के द्वारा श्रीचैतन्य महाप्रभु की भगवत्ता प्रतिपादित हुई है।

श्री चैतन्यदेव के समकालीन महात्माओं ने स्वरचित ग्रन्थों में चैतन्य लीला वर्णन की है उसमें प्रत्यक्षानुभव विशेष रूप से दिखाई देता है। क्योंकि उन महात्माओं ने श्रीचैतन्य लीला का अनुभव दिव्य नेत्रों से किया था। वही अनुभव अपने अपने ग्रन्थों में लिखा है। ग्रन्थों के पाठ करने से पता चलता है कि, श्रीचैतन्यप्रभु के स्वयं भगवान् होने में किञ्चित् भी संदेह नहीं है। सुतरां श्रीचैतन्यदेव स्वयं भगवान् हैं, यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध होती है। भगवान् पदका अर्थ शास्त्र में इस प्रकार वर्णन किया है।

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान वैराग्ययोश्चापि षण्णां भग इतींगना ॥

भावार्थ यह है कि, समस्त ऐश्वर्य, समस्त वीर्य, समस्तयश, समस्तशोभा, समस्तज्ञान, समस्त वैराग्य, उक्त छः ऐश्वर्य का नाम भग है। जोभग विशिष्ट है वही भगवान् है। अर्थात् ऐश्वर्यादिषड् गुण तत्व को ही भगवान् कहते हैं। दुर्वितर्क्य शक्ति प्रकाशित करने का नाम ऐश्वर्य है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी ने दुर्वितर्क्य शक्तिका प्रकाश किया था। द्विभुज होकर भी षड्-भुज रूप दिखलाया था। पराक्रम का नाम वीर्य है। महाबली कलियुग राजा को नाम प्रचार कर पराजय किया था। श्रेष्ठ प्रचार का नाम यश है। जब श्रीचैतन्य देव का जन्म हुआ था उस समय सब लोगों ने हरिनाम कीर्त्तन किया था। "श्री शब्द" का अर्थ है शोभा श्रीचैतन्यदेव के सौन्दर्य को देख कर मनुष्य पशु आदि मुग्ध हो जातेथे।

"ज्ञान" शब्द से विद्या का बोध होता है। श्रीचैतन्यदेव ने अपनी विद्याबल से दिग्विजयी को

पराजय किया था। "वैराग्य" शब्द का अर्थ है विषयादि में अनासक्ति होना। श्रीचैतन्यदेव ने संन्यास धारण कर जो संसार के कार्य में अनासक्ति का विलक्षण परिचय दिया था वह किसी से छिपा नहीं है। श्रीचैतन्यदेव के उक्त विलक्षण भावों से आकर्षित हो समस्त जनता को निश्चय होगया था कि यह साक्षात् भगवान् हैं। सुतरां श्रीचैतन्यदेव का भगवत् पना शास्त्रानुगत् अनुमान प्रमाण से सिद्ध हो चुका।

श्रीचैतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण भगवान् की भांति सद्धर्म के वक्ता हैं, असुरजनों के शासक हैं, साधुजनों के सुखकारी हैं, जगन्नाथ माधव (जगाई मगाई) प्रभृति महापापियों के सद्गति दाता हैं। साक्षात् श्रीकृष्ण ने ही चैतन्य रूप से अवतार लिया है। श्रीकृष्ण और चैतन्य में किञ्चित् भी भेद नहीं है।

शब्द प्रमाण से भी श्रीचैतन्यदेव का भगवत् पना सिद्ध होता है। श्री भगवद्गीता में भगवान् का वाक्य है यथा:-

"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत"।
"धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे"॥

श्रीभगवान् धर्म रक्षा के लिए युग युग में अर्थात् सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग में अवतीर्ण होते हैं। परन्तु कलियुग में प्रत्यक्ष रूपधारण कर दीखते नहीं हैं इसमें एक वचन पाया जाता है। यथा:-

अन्यान्य रूपएवैवो दृश्यते न कली हरिः।
कृतादिष्वेव तेनासौ त्रियुग परिपठ्यते॥

सत्य, त्रेता, द्वापर इन तीन युगों में तद्रूप से ही प्रत्यक्ष होते थे इसीसे भगवान् का एक नाम त्रियुग भी था। यह विष्णुधर्मोत्तर का वचन है। अतएव कलियुग में अवतार का निषेध सिद्ध होता है। किंतु पावनावतार की निषिद्धता नहीं सिद्ध होती है। उक्त वचन से चतुर्भुजाकृति अवतार की निषिद्धता सिद्ध होती है। कलियुग पावनावतार श्रीचैतन्य देव का अवतार निषिद्ध पर नहीं है। श्री चैतन्यदेव प्रच्छन्न भक्तावतार हैं। श्रीराधामाधव और उनके स्वरूप से आच्छन्न होकर भक्ताभिमान से अवतीर्ण हुये हैं। इसी से श्रीप्रह्लाद जी ने कहा है कि:-

छन्नः कली तदभक्तियुगोऽथ सत्यम्।

श्री बृहन्नारदीय ग्रंथ में भी स्पष्ट लिखा है यथा:-

अहमेव कली विप्र नित्यं प्रच्छन्न विग्रहः।
भगवद्भक्तरूपेण लोकान्रक्षामि सर्वदा॥

उक्त वचन श्रीभगवान् का है। श्रीचैतन्यदेव स्वयं भगवान् हैं इस संबन्ध में श्रीभागवत् श्रीविष्णु सहस्र नाम आदिशास्त्रों में अनेक प्रमाणों का समावेश देखा जाता है।
यथा:-

कृष्णावर्णं त्विषाकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजंतिहसुमेधसः॥

अनंत संहितामें भी देखने में आता है। यथा श्री भगवद्वाक्यम्:-

अवतीर्णोभविष्यामि कली निज गणैसह।
शचीगर्भे नवद्वीपे स्वधुनी परिवारिते॥ १॥
अप्रकाश्य मिदं गुह्यं न प्रकाश्यं बहिर्मुखैः।
भक्तावतारं भक्ताख्यं भक्त भक्तिप्रदं स्वयम्॥ २
यन्माया मोहिता केचिन्नशास्यन्ते बहिर्मुखाः।
ज्ञास्यन्ति मद्भक्तियुक्ताः साधनेष्वासिनोऽमलाः॥ ३

कृष्णावतार कालेया स्त्रियो ये पुरुषाः प्रियाः ।
कलौतेऽवतरिष्यन्ति श्रीदामसुबलादयः ॥ ४ ॥
चतुःपञ्चि महान्तस्ते गोपाद्वादश बालकाः ।
धर्मसंस्थापनार्थाय विहरिष्यामि तैरहम् ॥ ५
कालेनष्टं भक्तिपथं स्थापयिष्याम्यहं पुनः ।
गच्छन्तु भुवि ते पुत्राः जायन्तां भक्तरूपिणः ॥
धर्म संस्थापनं काले कुर्वन्तु ते ममाज्ञया ।

इन वचनों से श्रीचैतन्यदेव की भगवत्ता शब्द प्रमाण से भी सिद्ध होती है।

अर्थापत्ति प्रमाण से भी श्रीचैतन्यदेव की भगवत्ता प्रमाणित होती है। यथाः-'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य इत्यादि' अनुपलब्धि प्रमाण भी चरितार्थ है यथाः- ❀ 'अष्टादश महादोषैरहिता भगवत्तनुः श्रीचैतन्यदेव में अष्टादश महादोषों में एक भी दोष देखने में नहीं आता अतएव अनुपलब्धि प्रमाण से भी भगवत्ता सिद्ध होती है। सम्भव प्रमाण से भी श्री चैतन्यदेव की भगवत्ता सिद्ध होती है यथाः-

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः ।
यथा विदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥

जैसे उपचय शून्य सरोवर से असंख्यासंख्य प्रवाहों का आविर्भाव होता है इसी तरह सत्व गुण निधि हरि भगवान् से भी असंख्य अवतारों का प्रादुर्भाव होता है। भगवद् अवतारों में श्रीचैतन्यदेव का भी अवतार सम्भव है। ऐतिह्य प्रमाण से भी भगवत्ता सिद्ध होती है। श्री नवद्वीपधाम में स्वयं श्रीयशोदानन्दन श्रीशचिनन्दन रूप से अवतीर्ण हुए हैं इस बातको सभी स्वीकार करते हैं।

सांख्य तत्व कौमुदी में ऐतिह्य का लक्षण लिखा है।

"ऊचुर्वृद्धाः इति ऐतिह्यम्"

परम्परा से जो बड़े लोग कहते चले आये हों उसको "ऐतिह्य" कहते हैं। जैसे इस वटके वृक्षपर यक्ष निवास करता है। इसको किसी ने देखा नहीं तथापि उसका मान्य किया जाता है। इसी तरह अभक्तों के प्रत्यक्ष न होने पर भी श्रीभगवान् का प्राकट्य सब लोग स्वीकार करते हैं। जैसे पूर्णचन्द्र का प्रकाश छिप नहीं सकता इसी प्रकार श्रीचैतन्यावतार की महिमा भी छिप नहीं सकती। श्रीचैतन्यदेव ने "भक्ति" की अपूर्ण छटा दर्शाई। श्री कृष्ण प्रेम प्रवाह में देश को प्लावित किया और वैष्णव धर्म के झंडे को गगन चुम्बी बनाया। यशोदानंदन श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी मधुर ललित लीलाओं से वृन्दावन भूमिको पवित्र किया। शचिनन्दन श्रीचैतन्यचन्द्र ने अपने भक्तोंके प्रिय स्थानों की खोज और प्रतिष्ठा कर उनका पुनरुद्धार किया। ऐसे परम दयालु चैतन्यतत्व का आस्वादन जीव मात्र को करना उचित है।

———

❀ अष्टादश महादोष विष्णुधामल में इस प्रकार वर्णित हैं:-

मोहस्तन्द्रा भ्रमो रुक्ष रसताकामउत्क्लणाः । लोलतामदमात्सर्यो हिंसाखेदपरिश्रमः ॥
असत्यं क्रोध आकांक्षा आर्तका विस्व विभ्रमः । विषमत्वं परापेक्षा दोषाः अष्टादशोदिताः ॥

# पतित की पुकार

[ले० श्रीरमाशंकर जी मिश्र "श्रीपति"

( १ )

अकारण-कारण, अघ-दल-दलन, भव-भय-हरण तुम नाथ हो,
करुणाअयन ! आश्रय-रहित का, नित्य गहते हाथ हो।
सुनते सदा तुम दीन-जन की, देव ! करुण पुकार हो,
हो नाथ ! नाथ, अनाथ के, तुम पतित के आधार हो ॥

( २ )

दुर्भाग्य के दुःखद सघन-घन, घिर रहे चहुं ओर हैं,
है कर रहा भव-सिंधुगर्जन, हा ! न मिलता छोर है।
तृष्णा-तरंगें उठ रही हैं, मोह-तम छाया हुआ,
अज्ञान- संझावात को भी, क्रोध सा आया हुआ ॥

( ३ )

उठते अनेकों कामना के भंवर भी विकराल हैं,
नैराश्य-ग्राह दिखा रहे चहुं, काल के से गाल हैं।
माया-प्रवाह प्रचंड, दारुण दुख में जीवन-तरी,
है डूबती मझधार में अब, पाप भार प्रभो ! भरी ॥

( ४ )

देता भला आपत्ति में कब, कौन किस का साथ है,
हा ! डूबते का एक तुम बिन, कौन गहता हाथ है।
सनकादि सुर गाते सुयश, सब भान्ति नाथ ! समर्थ हो,
तब दीन के उद्धार में क्यों, देर करते व्यर्थ हो ॥

---

# परम भक्तिनी प्रेमाबाई

[ले० बाबा श्री राघवदास जी सम्पादक "कल्याण"

श्री भगवद्भक्तिनी प्रेमाबाई के निवास स्थान तथा जन्म के संबन्ध में अभीतक कुछ निश्चय नहीं हुआ फिर भी कुछ संशोधकों का यह मत है कि श्रीप्रेमाबाई का जन्म १७०३ संवत् के लगभग हुआ है।

आपका विवाह एक कुलीन वंश में हुआ था। एक पुत्र होने पर इनके पूज्य पती का देहान्त होगया।

तदुपरान्त इस महासाध्वी पतिव्रता स्त्रीने अपना जीवन भगवद्भक्ति में ही लगा दिया। घरमें जो काम काज रहता था उसको करके वह मध्याह्न के समय कथा श्रवण करने मन्दिर में जाया करती थी। भागवत् कथा श्रवण, हरि कीर्तन, दुखी तथा संत जनों का आतिथ्य सत्कार, यह उनका नित्य कर्मसा था। भगवद्भक्तिनी प्रेमाबाई नाम स्मरण में भी खूब लीन रहती थी। भगवत् कीर्तन श्रवण कर आप गद्गद हो जाती आंखों से प्रेमाश्रु टपक पड़ते थे।

आपके हरि कीर्तन श्रवण के संबन्ध में एक प्रसिद्ध आख्यायिका है। जो पाठकों के लाभार्थ यहां दी जाती है।

ऊपर लिख आये हैं कि भगवद्भक्तिनी प्रेमाबाई भागवत् श्रवण करने प्रति दिन जाया करती थी। एक दिन प्रेमाबाई कथा श्रवण करने जा ही रही थी इतने में कई भूखे यात्री जो तीर्थ भ्रमण करने घर से चले थे और जिनके पास खाने पीने

का कुछ सामान नहीं था प्रेमाबाई के आतिथ्य सत्कार का परिचय पाकर उनके घर पर आये। प्रेमाबाई ने अब कथा श्रवण जाना उचित न समझ कर अतिथि सत्कार करने का निश्चय किया परन्तु इधर कथा श्रवण न होने से भगवच्चरित्र का रसास्वादन करने का अवसर चला जायगा यह सोचकर उन्होंने अपने पुत्र को जो उस समय १० वर्ष का बालक था बुला कर कहा "बेटा! आज मैं कथा सुनने न जासकूंगी इसलिये तुमही चले जावो और ध्यान से कथा सुन कर फिर यहां आकर वह मुझे सुना देना"। साध्वी माता की आज्ञा पाकर वह बालक कथा श्रवण करने मन्दिर में गया। इधर तीर्थ यात्री स्नानादि से निवृत्त होने के लिये नदीपर गये और उधर प्रेमाबाई ने बड़े भक्ति भावसे भोजन तयार किया। अतिथियों के लौट आने पर प्रेमाबाई ने उनको प्रेम से भोजन कराया और अवशिष्ट भाग पुत्रसहित-जो तब तक कथा श्रवण कर लौट आया था-स्वयं भक्षण किया। भोजनोपरान्त प्रेमाबाई मन्दिर में हुई कथा सुनने केलिये अपने पुत्र के पास आकर बैठी। तीर्थयात्री भी कथा सुनने लगे। उस दस वर्ष के बालक ने सर्वथा अबोध होते हुये-भक्तिनी माता की कृपा से-सर्व कथा बड़े ही प्रेम से माता को सुनाई। महाराष्ट्र के भगवद्भक्त चरित्र लेखक महिपति जी ने उस कथा का विवरण बहुत ही सुन्दर भाषा में किया है। कथा भी भगवान् की बाललीला सम्बन्धी थी जो इस प्रकार है।

"भगवान् वृन्दावन में कभी इस गोपि के घर जाते और उसके यहां से दधि माखन चुराते, कभी किसी दूसरी गोपी के घर जाकर दधि चुराते। इससे गोपियां दुःखी होकर यशोदामाई के पास आयीं और उन्होंने भगवान् की शिकायत की। यशोदामाई भी कई दिनों से शिकायत सुनते २ दुःखित होगई थी अतएव सबके विचार से निश्चय हुआ कि भगवान् बालकृष्ण को रस्सी से बांध दिया जाय। प्रथम तो भगवान अपनी चातुरी से किसी प्रकार बांधे नहीं जासके पर जब देखा कि यशोदामाई बहुत निराश होगई है, तब किसी प्रकार पकड़ में आये और बांधे गये। इस पर उपस्थित गोपियां प्रसन्नता से हंसने लगीं"।

कथा का इतना भाग सुन कर भगवद्भक्तिनी प्रेमाबाई ने गोपियों की बड़ी भर्त्सना की। भगवान् को कोई बंध मुक्त नहीं करता यह देख कर इस प्रेमरूपा साध्वी को बहुत कष्ट हुआ। उसका गला भर आया। आंखोंसे अश्रु झर झर गिरने लगे। तब प्रेमाबाई अपने पुत्र से बोली "बेटा' यह घर का सारा बोझ तुम पर सौंपकर मैं अभी वृन्दावन जाती हूं और भगवान् को मुक्त कराती हूं,,। इतने शब्द मुंह से निकलने थे कि प्रेमाबाई का आत्मा इस नश्वर शरीर को छोड़कर भगवत्स्वरूप में लीन होगया। प्रेमाबाई की यह कृष्ण भक्ति देखकर आये हुये तीर्थ यात्रियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। अकस्मात् प्रेमाबाई के मृत शरीर पर पुष्प और तुलसी दल भी आ गिरे। यह देख कर भक्त समुदाय गद्गद होगया और उसने एक स्वर से प्रेमाबाई का जय जयकार मनाया।

---

# भगवान् की प्राप्ति के उपाय

[ ले० भक्तरत्न मुं० मराधुप्रसाद जी (मथुरेश) रिटायर्ड जज जयपुर ]

मिथारण्य में अठासी हजार ऋषियों की महासभा में यह विचार उपस्थित हुआ कि भगवान् की प्राप्ति का सुगम उपाय क्या है और संसार भर के बड़े २ विद्वान्, तपस्वी, योगी, समस्त सुप्रसिद्ध महोपदेशक नारद, व्यास आदि महर्षियों ने अपनी २ सम्मति देकर निर्णय करना आरम्भ किया कि कलिकाल के विषयी मंद बुद्धि मनुष्यों के उपयुक्त अति सुगम साधन कौनसा है।

एक ऋषी ने व्याख्यान में कहा "माननीय महत्पुरुषो! जब कभी दूर देश में जाने की आवश्यकता होती है तो पहली रीति यह है कि जिन लोगों ने भली प्रकार यात्री लोगों से सुन कर मार्ग का निश्चय कर लिया हो उनसे पूछा जाय। इससे बढ कर दूसरी बात यह है कि स्वयं उनयात्रियों से सुन कर निश्चय किया जाय और सबसे उत्तम विश्वास के योग्य यह है कि उस देश के रचयिता स्वामी से पूछा जाय। आप सब स्वीकार करेंगे कि जिन लोगों ने यात्रियों से सुन कर कथन किया और स्वयं यात्रियों ने कहा, इन दोनों से अधिक प्रमाण और अंगीकरणीय वस्तु उस देशके स्वामि का स्वयं अपने मुख से कथन ही होगा, जिसने वह देश बसाया और अहर्निश उसमें निवास करता है।

(बहुधा श्रोतागण बोल उठते हैं अवश्य २ निस्सन्देह) तब व्याख्याता आगे बोलते हैं:-

अब सावधानी से विचार कीजिये कि मनुष्य जिस भगवत्धाम में पहुंच कर भगवान् से मिलना चाहता है उसके विषय में सनकादिक नारदादिक मुख्य यात्री उस धाम में पहुंचे हुवे हैं उनसे सुन कर वेदव्यास शुकदेव आदि महाऋषि मुनि आदिक भगवत् धाम प्राप्ति का मार्ग भक्ति के सिवाय दूसरा नहीं बतलाते, और स्वयं उसके द्रष्टा नारदादिक मुक्त कंठ से ऐसा ही कहते हैं और इन दोनों को प्रामाण मान कर वेदव्यास रचित अष्टादश पुराण, ब्रह्म सूत्र तथा श्रीमद्भागवत महापुराण, इतिहास महाभारत और श्री नारद रचित पंच रात्रादि के सिद्धान्त पर दृष्टि डाली जाय तो यही सिद्ध होता है कि भगवत् की प्राप्तिका मुख्य साधन केवल शुद्ध भावात्मिका भक्तिही है, परन्तु इस सामग्री पर परिपूर्ण श्रद्धा न रख कर आगे कदम बढाया जाय तो शतशः भगवद्वचन ऐसे मिलेंगे जिन से नारद, वाल्मीकि, वेदव्यास प्रतिपादित सिद्धान्तोंही की पुष्टि होती है। यथा हिः-

बुद्धावतार

MUHARI ART PRESS, DELHI.

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपो त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

भगवान् स्वयं श्रीमुख से आज्ञा करते हैं कि न मुझे कोई अष्टांग योग द्वारा प्राप्त कर सकता है, न कोई ज्ञान या धर्मानुष्ठान, वेद शास्त्र के पठन पाठन या तप दान के द्वारा मुझे वश में ला सकता है। हे उद्धव ! मैं तो उत्कृष्ट भक्ति से ही प्राणी को प्राप्त हो जाता हूं। और देखिए:-

अहंभक्त पराधीनोह्यस्वतन्त्र इव द्विजाः ।
साधुभिर्ग्रस्त हृदयैर्भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

मैं यद्यपि स्वतंत्र हूं किसी के आधीन नहीं तो भी भक्तों के पराधीन की तरह वश में हूं। जिन साधुओं का हृदय मुझसे ग्रस्त है उनकी परम गति मैं ही हूं:-

अनपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शिनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः ॥

निष्काम, मननशील, शान्त चित्त, किसी से वैर न रखने वाले, समदर्शी भक्त के मैं पीछे २ इसलिये चलता हूं कि उनके चरणों की रज से अपने को पवित्र करूं।

न मे प्रियतमः कश्चिदात्मयोनिर्न शंकरः ।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा यथा भवान् ॥

एकादश स्कंध में उद्धव जी से आप आज्ञा करते हैं कि मुझे उतना प्यारा कोई नहीं जितने तुम भक्त लोग प्यारे हो। मेरा पुत्र ब्रह्मा, शिव शंकर, दाऊ जी, लक्ष्मीभार्या, या खास मेरा आत्मा भी भक्तों के बराबर प्यारा नहीं।

भगवत्गीता में तो आपने भक्त और भक्ति की महिमा बहुत कुछ वर्णन की है और भक्ति को ही मुख्य साधन कहा है।

अनन्य चेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्य युक्तस्य योगिनः ॥

भगवान् आज्ञा करते हैं कि जो अनन्य भाव से नित्य मेरा स्मरण करता है ऐसे योगी को मैं अत्यंत सहज में मिल जाता हूं।

फिर इसी अध्याय के २२ वें श्लोक में कहते हैं-

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तस्थानि भूतानि येन सर्वमिदंततम् ॥

वह पर पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है।

नवें अध्याय की समाप्ति का श्लोक इसी अर्थ को पुष्ट करता है-

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥३२॥

अर्थात् मुझ में मन लगा, मेरा भक्त हो मेरा ही यजन कर, मुझ को ही नमस्कार कर ऐसा करने से मुझ को ही प्राप्त होगा।

इसी प्रकार ११वें अध्याय के अन्तिम श्लोक में कहा है।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संग वर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडवः ॥ ५५ ॥

अर्थात् जो ऐसा भक्त हो वो ही मुझे पावेगा। और कहां तक बताया जाय गीता के अन्तिम अध्याय को देखिये:-

भक्त्यामामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वतः ।
ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

तात्पर्य यह है कि भक्ति से ही मुझे तत्व करके जानता है और उसके अनन्तर मुझ में प्रवेश करता है। अब अन्त में सबसे श्रेष्ठ गुप्त रहस्य जो

बतलाया गया है वह क्या है ?

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

इस में एष्यसि शब्द पर ध्यान दीजिये, जिस का अर्थ है प्राप्त होगा, मिलेगा जो कुछ भी समझो भगवान् ने अपनी प्राप्ति का उपाय एक बार नहीं बारम्बार वह ही भक्ति रूपी रत्न बतला दिया है। अब और किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रही, न किसी और साधन के खोज की जरूरत ही रही।

प्रथम व्याख्याता का कथन सुन कर दूसरे एक महोपदेशक ने इस प्रकार अपना व्याख्यान आरंभ किया:-

मान्यवर महाशयो ! पूर्व व्याख्याता ने अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया कि भगवान् भक्ति से मिलते हैं, परन्तु श्रुति कहती है कि-

तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

और ( ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः ) इत्यादि-वेद वाक्यों से पाया जाता है कि परमात्मा के ज्ञान से मुक्ति होती है। ज्ञान के बिना मुक्ति और किसी साधन से नहीं होती। वेद वाक्य से बढ कर और कोई प्रमाण मान्य नहीं होसकता। उपासना या भक्ति से तो केवल अन्तःकरण की शुद्धि और मन की चंचलता निवृत्त होती है। अन्तःकरण में तीन दोष होते हैं। मल, विक्षेप, आवर्ण। इनमें से निष्काम कर्मसे मल दोष, उपासना से विक्षेप (चंचलता) और केवल ज्ञान से आवर्ण दोष मिटता है। इसलिये जब तक स्वरूपका अपरोक्ष ज्ञान न हो तब तक संसार में जन्म मरण रूपी महाकष्ट से जीव का छुटकारा कदापि संभव नहीं।

अहं ब्रह्मास्मि, तत्वमसि आदि जो महा-वाक्य श्रुति ने बतलाये हैं वह ही मुख्य साधन मानने योग्य हैं।

इसका निर्णय अति आवश्यक है। अन्यथा भक्ति को मुख्य साधन मानने में प्रधान प्रमाण जो वेद हैं उनसे विरोध होता है।

उक्त दोनों व्याख्यानों को सुन कर एक तीसरे वृद्ध महर्षि खड़े होकर इस प्रकार भाषण करते हैं:-

पूज्य महानुभावो ! पूर्व दो वक्ताओं के कथन में विवाद इस विषय का प्रतीत होता है कि प्रथम महाशय भगवत्प्राप्ति का मुख्य साधन भक्ति अथवा उपासना वर्णन करते हैं और दूसरे अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान को मुक्ति का साधन बतला कर भक्ति को केवल अन्तःकरण की शुद्धि का कारण सिद्ध करते हैं। परन्तु ज्ञान और उपासना इन दोनों शब्दों का अर्थ क्या है इस पर तो ध्यान दीजिये। ज्ञान नाम जानने का है और उपासना शब्द समीप स्थिति का द्योतक है। किसी पदार्थ या चैतन्य व्यक्ति के स्वरूप को भली प्रकार जान लेने से वह सुख और लाभ नहीं हो सकता जो उसके मिल जाने और पास बैठने से प्राप्त होता है। यदि किसी बड़े चक्रवर्ती महाराज से मिलने की इच्छा हो तो उनकी आकृति और स्वभाव तथा शुभाशुभ गुणों के ज्ञान मात्र से सन्तोष कदापि न होगा। निकट जाकर दर्शन स्पर्श हो जाने पर ही प्रसन्नता संभव होगा।

"तमेव विदित्वा" इत्यादि श्रुति में जो विद् धातु है वह भी उपासनार्थ में ही है। ( वेदनं स्यादुपासनम् ) अन्यथा उपक्रम से उपसंहार तक बारम्बार विद्-धातु का प्रयोग उस स्थल में करने की क्या आवश्यकता थी ?

इसके उपरान्त निर्णय विषय भगवान की प्राप्ति है। ज्ञान से यदि मुक्ति हो भी गई तो जैसे जल की बूंद समुद्र में मिल कर सिंधु रूप हो जाय वह ही दशा समझलो। आनंद और रस का आस्वादन कदापि नहीं हो सकता। वह तो आस्वादक आस्वाद्य पृथक् रहने से ही हो सकेगा। इसमें एक दृष्टान्त है। उससे भली भांति तात्पर्य प्रकट हो जायगा।

एक हीरकमणि की अति मनोहर मूर्ति एक स्थान में विराजमान है और उसमें बिजली की ऐसी मैशीन लगी हुई है जिसका प्रकाश चारों ओर कई कोसों तक इतना स्वच्छ और तीव्र जारहा है कि सूर्य्य के मध्याह्न काल के प्रकाश से भी अधिक प्रतीत होता है। एक साइन्स (पदार्थ विद्या) के विद्वान महाशय उस प्रकाश की खोज में चले और कई दिन रात बड़ी २ कठिनाइयों को सहन करते हुवे उस प्रकाशित स्थल तक जा पहुंचे। प्रकाश इतना उत्कट था कि नेत्रों में चकाचौंधी छागई। बहुत कष्ट से एक मील के अनुमान पांव बढ़ाते हुवे चारों दिशाओं में गये भी। परन्तु वहीं रुक गये आगे न जासके और ऐसा निश्चय करके आनंद में मग्न होगये कि प्रकाश की थाह नहीं है, यह तो व्यापक तथा सुख रूप है। दूसरे एक अष्टांग योग के ज्ञाता योगी महाशय ने भी साहस करके खोज लगायी कि उक्त प्रकाश नित्य और अखंड होने पर भी घट घट में ज्योति रूप से विद्यमान है और उसको अन्तःकरण द्वारा आनंदमय अनुभव कर समाधिस्थ हो बैठे।

इसके अनन्तर एक अनुरागी सज्जन उसमें प्रविष्ट हुवे और इनको उस प्रकाश में पहुंच जाने पर भी सन्तोष नहीं हुआ किन्तु यह लालसा बढ़ी कि जिस व्यक्ति से यह प्रकाश आरहा है उसके निकट पहुंचें। वह नाना प्रकार की बाधायें उपस्थित होने पर भी रुके नहीं, बढ़ते ही चले गये और अन्त में उस दिव्य व्यक्ति के समीप प्राप्त होकर उसके साथ संबन्ध जोड़ कर परम प्रेम रस में निमग्न होगये। यह तो दृष्टान्त हुआ अब दार्ष्टान्त सुनिये। पहला पुरुष ब्रह्मज्ञानी है उसे प्रकाश की व्यापकता और आनंद रूपता का अनुभवमात्र सन्तोष जनक होगया। दूसरे योगी महाशय को उससे कुछ अधिक लाभ तो हुआ परन्तु जो बात तीसरे सज्जन भक्त को प्राप्त हुई किसी को न हुई। भक्त तो समीप पहुंच कर भी, शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य, और मधुर इन पांच भावों में से कोई एक संबन्ध जोड़ कर रसका आस्वादन करता है। उसकी दृष्टि में वह प्रकाश जो ब्रह्मज्ञानी और योगी को तुष्टि तथा शान्ति प्रद होगया था उसके इष्ट दिव्य विग्रह के चरण नख का प्रकाश सिद्ध होगया। अपने प्रियतम के साथ लीला विनोद का अनुभव करके जिस अखंड रसका आस्वादन भक्त को होता है वह ज्ञानी या योगी को स्वप्न में भी नहीं प्राप्त हो सकता। "अहंब्रह्मास्मि" इत्यादि महावाक्यों से आत्मसाक्षात्कार होनेपर जन्म मरण से रहित अवश्य होजाता है परन्तु शुकदेव नारद आदि परम ज्ञानी परम हंसों ने जीवन्मुक्त होने पर भी भगवद्भक्ति का ही अवलम्ब रक्खा। अतएव मेरी सम्मति में पहले वक्ता का कथन ही परम आदरणीय है "ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते" यह तीन स्वरूप जो श्रीमद्भागवत में बतलाये हैं इस दृष्टान्त से प्रकाशित होगये। वेदान्ती ब्रह्मज्ञानी जिसे ब्रह्म कहते हैं वह व्यापक प्रकाश समझो और

योगियों के लिये परमात्मा का लक्ष्य तथा भक्तों को भगवान् को भाव पूर्वक प्राप्ति निश्चित होगई।

उक्त व्याख्यान को सुन कर मुनि नारद बड़े हर्ष के साथ खड़े होकर कहने लगे।

वाह वाह व्यख्याता महाशय ने क्या उत्तम रीति से दृष्टान्त के द्वारा ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् इन शब्दों का मर्मार्थ प्रकाशित कर दिया है। मैं उन्हें धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। मुझे भी स्वयं भगवान् के श्रीमुख से कहे हुये वचनामृत से पता लगा है वह मैं सर्व भक्तजनों के समक्ष प्रकट कर चुका हूं इस अवसर पर पुनः निवेदन किये देता हूं कि:-

नाऽहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

भगवान् आज्ञा करते हैं कि न मैं वैकुंठ में निवास करता हूं न योगियों के हृदय में। मेरे भक्त जहां गान करते हैं वहां ठैर जाता हूं। इसमें तिष्ठामि क्रिया में विशेष चमत्कार यह है कि "स्था" धातु गति के निरोध में आता है अर्थात् जहां भक्त मेरा गान करते हैं वहां मैं स्थिर होजाता हूं, आगे जानेको कदम नहीं उठा सकता। वैकुंठ और योगियों के हृदय में वास करता हुआ बाहिर निकल भी जाता हूं परन्तु भक्तों का गायन जहां सुनता वहीं बंधन में आजाता हूं। आहा! धन्य है! भगवान् भक्तवत्सल को, उनको जितना प्रेम भक्तोंके साथ है दूसरे किसी के साथ नहीं है। यही कारण है कि भक्त जहां उनका कीर्तन करते हैं वहां आप अवश्य विद्यमान रहते हैं। यों तो साधारणतया सब जगह मौजूद हैं तथापि विशेष रूपसे अपनी स्थिति का स्थान भगवान् ने यहां स्पष्ट कर दिया है परन्तु भाइयो! गान शब्द पर जरा ध्यान देने की जरूरत है। कीर्तन कहो चाहे गान एक ही बात है। भगवत् नाम या उनके गुणों का कीर्तन किस प्रकार होना चाहिये:-

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

तिनके से भी अपने को नीचे दरजे का मान कर, वृक्ष से भी बढ़ कर सहन शील और अभिमान रहित होकर, औरों का मान आदर करते हुए हरि कीर्तन करना चाहिये। जब ऐसा होकर भगवान् के नामों या गुणों का कीर्तन गायन के साथ किया जाय तब ही यथार्थ कीर्तन कहा जायगा और साधारणतया मुख से नाम अथवा गुणों के उच्चारण की अपेक्षा गायन द्वारा करने में विशेषता यह है कि गाने या गाना सुनने वाले का चित्त एक जगह ठैर जाता है। इसीलिये कहा है कि:-

ज्ञानात् परतरं ध्यानं ध्यानात् परतरं जपः।
जपात् परतरं गानं गानात् परतरं नहि॥

ज्ञान से ध्यान का दरजा बड़ा है ध्यान से जपका और जप से गानका परन्तु गान से बढ कर कोई साधन नहीं अतएव जहां गान है वहीं भगवान् की स्थिति कही गई है। कलियुग में भगवान् की प्राप्ति का साधन इस से बढ कर दूसरा नहीं है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौनास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

नारदजी के इस उपदेश को सब ने सहर्ष स्वीकार किया और सभाविसर्जित हुई।

---

# भक्त की टेर

[ ले० श्री स्वामी आनन्द भिक्षु जी सरस्वती ]

आखिर यह क्या ? यह आंख मिचौनी कैसी ? अभी-अभी तो सामने था, अब कहां छिपा है? अय ! अणु अणु में चमकने वाले मुझे मत दुखा, हर जगह व्यापक रहने वाले, मेरे सामने आजा ! आजा ! आजा ! मैं तुझे आखों पर बैठाऊंगा, कि हृदयान्तर में छुपाऊंगा । तू मेरा है । मैं तेरा बनूंगा, आजा ! मैं तेरे लिये बेचैन हूं । तेरे लिये तड़फ रहा हूं क्या तुझे मेरा बेचैनी अच्छी लगती है ? क्या तू यह पसन्द करता है कि मैं तेरे लिये इतना परेशान हूं, इतना हैरान हूं और तू मुझे अपनी प्यारी सूरत तक भी न दिखलाये ? प्यारे, आजा ! आजा ! अब न सता । सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करने वाले, मेरे हृदय को भी प्रकाशमय करदे सूर्य और चन्द्रमा को कान्ति प्रदान करने वाले मेरी आंखों में भी प्रकाश दे ।

"तेजोऽसितेजो मयि धेहि" ।

तू शान्ति का भंडार है मेरे प्रेम रहित हृदय को भी शान्ति दे । तू आनन्द स्वरूप है । मुझे भी आनन्द दे । तू ज्ञान है । तू ज्योति है मेरे हृदय में भी ज्ञान का प्रकाश कर । मेरे दग्ध हृदय को शान्त कर मेरे सामने आजा लो मैं आंखों को बन्द किये लेता हूं आजा ! आजा ! मेरी आंखों में समाजा, मेरे मस्तिष्क में समाजा, मेरे सिर के बालों में बसजा, मेरे रोम २ में बसजा, मुझ में बसजा, फूल की तरह बसजा, सुगन्धि की तरह बसजा, बच्चों को आंखों में प्यारी नींद की तरह घुल २ जा । तू मेरा पिता है, तू मेरी माता है, मैं तेरा बच्चा हूं ।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव । त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

× × ×

तू ही मेरा धर्म है । तू ही मेरा कर्म है तू ही मेरा प्राण है तू ही मेरा धर्म है । मैं तेरे बिना नहीं रह सकता आजा ! आजा !!

देख, अब मुझ से तेरा वियोग नहीं सहा जाता । पर क्या तू मुझ से प्रथक् भी है ? नहीं, तू मुझमें है मैं तुझ में हूं तू मुझ से प्रथक् नहीं हो सकता, तू सर्व व्यापक, है घट घट में विराजमान है और अणु २ में समाया हुआ है । तेरी सत्ता से कोई स्थान, कोई पदार्थ, खाली नहीं पर मुझे तू दिखाई क्यों नहीं देता ? क्या मैं तुझे देख नहीं सकता ? मैं तेरे देखने के योग्य नहीं ? अधिकारी नहीं ? पात्र नहीं ? आखिर मुझे क्या हुआ ? मुझ में क्या खोट है ? पापी हूं तो तू भी तो पतित पावन है । क्या तू पतित पावन नहीं ? ऐसे ही यह उपाधी तुझे मिल गई ? अच्छा तो यह उपाधि तू अपने पास रख । मैं तुझे पुण्यात्मा बन के, धर्मात्मा कहलाके, नहीं पाना चाहता । ज्ञानी और योगी बनके भी तुझ से मिलने की आवश्यकता नहीं । मैं तुच्छ हूं, मैं गरीब हूं, मैं निर्धन हूं । गरीबी मेरा जीवन है, मेरा धर्म है, मेरी साध है, मेरी साधना है । तू गरीब निवाज है, तो आजा ! आजा ! मैं तुझे चाहता हूं, प्यार करता हूं, तेरा प्रेम तेरा प्यार ही मुझ गरीब का सर्वस्व है । मेरे सारे जीवन की कमाई है, मेरी साधना की विभूती है । मैं इस विभूती को लेकर अपने को संसार

के सम्राट् का भी सम्राट् समझता हूं। मेरे प्यारे! मुझे प्यार करनेवाले, अब न तरसा आजा! आजा! क्या तू मुझ से बहुत दूर है? नहीं, तू तो मेरे पास ही है? मेरे हृदय ही में रहता है, मेरे साथ ही रहता है। तेरे बिना तेरे साथ के बिना मैं जीवित ही कैसे रह सकता हूं। तूतो मेरा जीवन आधार है। मेरे प्राणों का प्राण है। आजा! आजा!

ओ! आजा! विश्व मुक्तिदा आजा!
आपदों के उद्धार मुक्तिदा आजा!!

मैं तेरे लिये व्याकुल हूं। तू इतना निष्ठुर है मेरे सामने तक नहीं आता। क्यों? क्या, इसमें कोई रहस्य है? हां तू महान् है। महान् से महान् है। मैं छोटे से छोटा हूं। शायद इसीलिये मैं तुझे देख नहीं पाता। पर तूतो सूक्ष्म भी है। हां अत्यन्त सूक्ष्म है। मैं इस स्थूल चक्षु से तुझे देख नहीं सकता कठोपनिषिद् में लिखा है:-

अणोरणीयान् महतो महीयान्।
आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्॥
तमक्रतुः पश्यति वीत शोको।
धातु प्रसादान्महिमानमात्मनः॥

फिर क्या मैं तुझे एकदम देख नहीं पाऊंगा? मूर्ख मैं अब तेरे दर्शन नहीं कर सकूंगा। फिर तेरे दर्शन नहीं कर सकूंगा। तेरे दर्शन कोई और बुद्धिमान पुरुष ही पा सकता है। परन्तु तू तो दीनबन्धु है, भक्त वत्सल है। अपने भक्त जनों के लिये तूने क्या नहीं किया? क्या नहीं करता? और क्या नहीं करेगा? योगी, यति, त्यागी, संन्यासी सब तेरी ही दया और कृपा के भरोसे नाना प्रकार के दुःख उठाते हैं, आपदायें झेलते हैं, अपमान सहते हैं। तू अकेला ज्ञानियों का होगया, तो यह बेचारे यहां वहां दोनों जगह से गये। इन्हें लोक परलोक दोनों जगह निराशा रही। नहीं, तू किसी एक का नहीं। एक का हो भी नहीं सकता। तू सबका है, तेरे सब हैं। तू प्रेम का भूखा है तू भाव देखता है तू बाहर नहीं देखता, अन्दर देखता है। देश और भाषाका आडम्बर तुझे पसन्द नहीं। किसी के जेब और गांठ से तुझे सरोकार नहीं। निरा ज्ञान भी तू नहीं चाहता। तू केवल सचाई, हृदय की पवित्रता और शुद्ध आचार व्यवहार देखता है। तुझे शब्द-जाल और फिलासफी नहीं भाती। तर्क और विज्ञान की आवश्यकता नहीं तेरी दृष्टी प्रेम पर रहती है। तू भक्ति भावका चातक है। हां, प्रेम पूर्ण अखंड प्रेम, निश्छल प्रेम का तू उपासक है। नहीं! नहीं! उपासक कैसा तू तो साक्षात् प्रेम स्वरूप है। प्रेम की प्रतिमा है। प्रेम है। प्रेम! प्रेम!! मैं तेरा प्रेमी हूं तेरा भक्त हूं। तेरे प्रेम-मंदिर के द्वार का एक तुच्छ भिखारी हूं। मेरी झोली में अपने प्रेम-केवल अपने प्रेम की भिक्षा डालजा। अपनी प्यारी सूरत दिखाजा। ऐं मुझ से यह परदा कैसा? भिक्षुक को परदे से कहीं भीख दी जासकती है? ऐ मेरे दिल में रहने वाले, मेरी निगाहों में फिरने वाले, ख्यालों में रहने वाले तू मुझ से कबतक छिपेगा। आजा! आजा!. अच्छा मेरे सामने क्यों नहीं आता मुझे दिखाई क्यों नहीं पड़ता? क्या तुझे देखने वाली आखें मेरे पास नहीं हैं? यदि इन आखों का दोष है यह तुझे नहीं देख सकतीं तो मैं इन्हें अभी निकाल फेंकूंगा। यह मेरे किसी काम की नहीं। भक्त सूरदास ने शायद अपनी आंखे इसीलिये फोड़ डाली थीं कि वह उनसे तुझे नहीं देख सकता था। उनमें मलीनता आगई थी,

विष भरगया था। तुझे देखने के लिये पवित्र आखों की जरूरत है। अवश्य ही तुझे देखने वाली आखें और होती हैं, निराली होती हैं, और वह हरेक के पास नहीं होतीं। हर एक को नहीं मिलती, इसमें आखों का दोष क्या। यह दोष तो बैरी मनका है। यही दुष्ट सब कुछ करता धरता रहता है। इसी की चंचलता और कुटिलता से दूसरे मारे जाते हैं। यह बड़ा पापी है। स्वयं पाप करता है और दूसरों को दण्ड दिलाता और दूषित करता है। कितने ही भोले भाले मनुष्य इसके दाव घात को न समझ कर इन गरीब और निर्दोष इन्द्रियों के माथे दे देते हैं। मनुष्य को अपने मनको टटोलना चाहिये। इसे संयम करना चाहिये। इसी की क्रूरता से मनका फेरने वाला हाथ और शुभ मार्ग पर चलने वाला पैर कहां से कहां पहुंच जाता है। धर्म, कर्म, ज्ञान, ध्यान, दान, पुण्य जप, तप इत्यादि अनेक पवित्र कार्य अपवित्र हो जाते हैं। मनुष्य लक्ष्य भ्रष्ट होकर क्या से क्या करने लगता है। मैं इस दुष्ट मन का दमन करूंगा। इसके प्रचंड वेग का शमन करना मैं अपना कर्तव्य समझूंगा। मेरी आखों का दोष नहीं। मैं इन्हें नहीं फोड़ूंगा इनसे मुझे तेरे दर्शन करने हैं। इन्हें तूने एक विशेष कार्य के लिये बनाया है। मैं इनकी उपयोगिता से यथेष्ट लाभ उठाऊंगा। संसार में यह एक अनोखी वस्तु हैं। इन्हें तूने मुझे इसीलिये प्रदान की हैं कि इनसे मैं तुझे देखूं, तेरे प्रकृति के सौन्दर्य का आनन्द लूं, और दूसरों को सत्य पता पहुंचाऊं। क्यों? यही बात है न?

× × ×

अहा! कल सांयकाल को यमुना-तट पर बैठे हुये आकाश में कैसे सुन्दर २ दृश्य दिखाई देते थे, बलिहारी प्रभो! तू अद्भुत, तेरी महिमा अपरम्पार। क्यों कोई इन सुन्दर और अत्यन्त मनोहर २ दृश्यों को बिना आखों के कैसे देख सकता है? लो देखो! मेरा प्रभु आकाश से उतरता है। इन नीले पीले बादलों से आता है। वह देखो! बादलों की गर्जना के साथ आता है। कुछ आहट पाकर वह आगया। ऐं! आ कहांसे गया? वह तो सर्वत्र व्यापक है। वह था कहां? उसे आना जाना कहां? पर मेरे पास कहां? मेरे पास क्यों नहीं आता? क्या नहीं आयेगा? आजा! आजा! प्रभो! मैं तेरा पुत्र हूं, पापी हूं, अपराधी हूं, पर जो कुछ हूं तेरा हूं, तेरी शरणागत हूं। हां तेरी दी हुई चीजों का मैंने उचित् उपयोग नहीं किया। और अब भी यथोचित उपयोग नहीं कर रहा हूं। तेरी वेद प्रतिपादित आज्ञाओं का मुझसे ठीक पालन नहीं होसका मैं तेरी उपासना करता हूं। यह भी शायद मुझ से ठीक नहीं बन पड़ती। क्षमा चाहता हूं। अब चूक नहीं होगी। मुझे वैदिक धर्म का अनुयायी होने का गर्व है। तेरे प्रेम संदेश को यथा शक्ति मैं सबको सुनाने का प्रयत्न करता हूं। अपने भाइयों की सेवा करने में मुझे आनन्द मिलता है। मैं दम्भ और अहंकार से भी यथा शक्ति बचने की कोशिश करता हूं। परन्तु फिर भी मैं जानता हूं, मैं क्या हूं, कैसा हूं, क्या करना है, और मुझे क्या करना चाहिये? मेरी बुद्धि कैसी और कितनी है। आ! मैं इस समय तुझे बड़े विनीत भाव से पुकारता हूं। तू तो घट २ की जानता है। तू अन्तर्यामी है। क्या तू मेरे भावों को नहीं जानता? जरूर जानता है, हां, हां, जरूर जानता है। मनुष्य मनुष्य को धोखा दे सकता है। कभी २ अपनेको भी धोखेमें डालदेता है। परन्तु

क्या कोई बुद्धिमान् से बुद्धिमान मनुष्य मुझे भी भ्रान्ति में डाल सकता है ? नहीं, कदापि नहीं ? तेरे सामने किसी का बहरूपियापन नहीं चल सकता। तू खोटा खरा समझ लेता है। मनुष्य अपनी अज्ञानता से चाहे जैसा भी अपने को समझ ले पर अन्त में उसे अपने असली रंगरूप में आना ही पड़ता है। उस समय वह अपने मिथ्याभिमान, मूर्खता और आडम्बर पर पछताता है। शिर धुनता है। रोता और चिल्लाता है। पर उसे शान्ति नहीं मिलती। शान्ति मिले भी कैसे ? शान्ति का भंडार छोड़ कर अशान्ति की अग्नि में कूद कर कोई शान्ति लाभ कर सकता है ? शान्ति तो तेरी ही गोद में प्राप्त हो सकती है।

× × ×

पिता ! क्या मैं ने तुझे पाने की कोशिश नहीं की ? नहीं, मैंने की है और अब भी कर रहा हूं। परन्तु जैसी चाहिये थी वैसी नहीं बन पड़ी। मैंने अपने विचार से बहुत से हाथ पैर मारे, परन्तु गड्ढे से निकल कर दल २ में फंस गया। जन्म के अपनों को छोड़ कर धर्म से साथियों को अपनाया। काम के भोग को त्याग कर त्याग के भोग को गले का हार बनाया। दान के काम को छोड़ कर नाम के काम के पीछे पड़गया। हा ! यह सब मेरी निर्बलता थी। बुद्धि की निर्बलता थी। चरित्र की निर्बलता थी। मुझे उन ढकोलसे बाज़ियों से बचने की आवश्यकता थी। अब क्या करूं ? बहुत गई थोड़ी रही इतने में क्या होगा ? क्या बनेगा ! उफ ! मेरा जीवन खोही गया ! अब !

× × ×

यह तृष्णा किसी न किसी रूप में पीछे लगी रही। चित्त शान्त नहीं हुआ। हृदय की ग्रंथि न खुली। संस्कार और आये दिन के भले बुरे कामों की वासनाओं से यथार्थ सफलता न हुई। भिक्षुओं का बाना धारण करते हुये पुरानी खू-बू न गई। कुटियों में रहते हुये महलों की वासना बनी ही रही। पर्ण कुटीर बनाते हुये भी आनन्द-भवन की चाहना रही। तपोवन की पवित्र पंच-वटी न बन सकी। भीख की झोली गले में डाले हुये भी मेरा राजसी मस्तिष्क बना रहा। नम्रता, विनय शीलता गरीबपने का भाव हृदय में न ठहरा। अमीरों, दरबारियों, महलों और गद्दीदारों के द्वार खट-खटाये। परन्तु उन ऊंची दुकानों में नीरस पकवान ही निकला। इन मठ धारियों के आगे झोली फैलाते हुये मुझे सच्ची भीख न मिली और मैं सच्चा भिखारी भी न बन सका। जिस बाने को मैंने धारण किया था उसकी लाज यथेष्ट रूप से मैं न रख सका। इसका मुझे दुःख है, पश्चात्ताप है। कदाचित् इसी से तू मुझे दर्शन नहीं देता। मेरे सामने नहीं आता। मैं इस धार्मिक वेश में भयानक जन्तु बना हुआ हूं इस पवित्र बाने को अपवित्र और लज्जित कर रहा हूं।

× × ×

भगवन् ! तेरी ही प्रसन्नता के लिये तो मैंने इस संसार की रंगस्थली में अनेक प्रकार के नाटक खेले हैं, स्वांग रचे हैं। मैं आपके सामने अनेक बार कई २ विचित्र २ रूपों में पार्ट लेकर आया हूं। मेरे नकली स्वरूपों का नट कार्य्य कैसा भी हुआ हो। अभिनय तो सदैव ही खेलता रहा।

भक्ति के [illegible]

भक्ति के चार प्रधान आचार्य

Murari Art Press, Delhi.

इसलिये हे जगनायक ! सूत्रधार ! यदि मेरे इन कार्यों से तू प्रसन्न हुआ है तो मेरे मनोरथों को पूर्ण कर। अगर मैं अपने कार्य में असफल हुआ हूं तो मुझे संसार की नाटक-शाला से बाहर निकाल दे। मुझे जिस योग्य समझता है यह स्मरण रहे, इस पर भी इस बार भी यदि तूने ध्यान न दिया तो मैं कहीं का न रहा।

× × ×

आह! मैं बड़ा पापी हूं। बड़ा अधर्मी हूं। मुझे तेरा दर्शन न होगा। क्या सचमुच न होगा? होगा क्यों नहीं? होगा। जरूर होगा न होगा तो मैं जीऊंगा भी नहीं, जी सकता भी नहीं। बिना जल के कहीं क्या मछली रही है? बिना वायु के क्या कोई प्राणी रह सकता है? या कभी रह सका है? क्या बिना जगदाधार के यह जगत् रह सकता है? नहीं, कभी नहीं। जब यह अपने २ जीवनाधार के बिना नहीं रह सकते तो मैं भी अपने प्राणाधार के देखे बिना कैसे रह सकता हूं? और वह भी मुझे कैसे त्याग सकता है? मुझे निराश नहीं होना चाहिये?

सांसारिक माता पिता भी जब अपने बालक की आवाज सुन कर अपने स्थान पर ठहर नहीं सकते तो मेरा पिता मुझे कैसे छोड़ सकता है, और मेरे आर्तनाद पर कैसे नहीं आयेगा।

ओ! मैं कीच में लथपथ हूं। आजा! और मुझे उठा कर गले लगाले। मैं पापी सही पर तू तो दयालु है। पतित सही पर तू तो पतित-पावन है। हां हां अब कृपा दृष्टि हो जाय। मैं जो कुछ हूं, जितना हूं, जिस तरह हूं, जैसा हूं, जहां हूं, जिस अवस्था में हूं जिस दशा और जिस संस्कार में हूं और जैसी भी मेरी वासनायें हैं तुझ से अपूकट नहीं हैं। तेरा हूं, अच्छा या बुरा हूं, किसी और का नहीं हूं, तेरे नाम पर जीता हूं, तेरे नाम पर ही मरूंगा, मैं तेरा था, तेरा रहने की कोशिश की और अब तेरा ही हो चुका। हां हां तेरा ही तो होचुका। तेरा हूं, केवल तेरा हूं। तू मेरा बनजा मुझे अपनाले और मेरे सामने आजा। मैं सिर्फ तुझ को ही चाहता हूं, तुझी को भोगता हूं। यही मेरी भिक्षा है। इसी का मैं भिक्षु हूं। मुझे और कुछ नहीं चाहिये। यही मेरा स्वराज्य है। यही मेरा साम्राज्य है। इतने में मेरी आंख खुल गई, मैंने देखा मैं अपने माता के चरणों में लोट रहा हूं और वह बड़े प्यार से मेरा सिर सहला रही हैं। प्रभु ने मुझे मेरी माता, मेरी प्यारी अम्मा के रूप में दर्शन दिया।

---

# दो अक्षर

[ ले० श्रीदुर्गाप्रसाद जी गुप्त ]

राम नाम दुई आखर हिय हितु जानु,
राम लखन सम तुलसी सिवधन आनु।

राम जाने राम! इन दो अक्षरों में क्या खूबी है? क्या जादू है? क्या मिठास है क्या प्रभाव है? जो इन अक्षरों के जपने वालों की एक दम काया पलट जाती है, नकशा ही बदल जाता है, कुजात भी सुयश भाजन होजाते हैं।

सुनिये, अपनी ओर से कुछ न कह कर हम इन दो अक्षरों का रसिक के मुख से ही इनका चमत्कार सुनाते हैं,

बड़े २ वेद शास्त्रों में तो न जाने, इनका क्या प्रभाव होगा, परन्तु वर्णमाला के अक्षरों में भी तो यह बादशाह बने बैठे हैं।

एक छत्र इक मुकट मणि सब वरणन पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के वरण विराजत दोउ।

ताड़ने वाले ताड़गये होंगे, गुसाईंजी का कथन है, कि "र" रेफ होकर और "म" अनुस्वार हो कर सब अक्षरों पर छत्र और मुकुट की तरह विराजते हैं, क्यों ? है ना कमाल की बात, क्या किसी और अक्षर में भी यह बात है ?

× × ×

यह संसार अंधकारमय है। उजाले के अभाव में जीव को पद पद पर ठोकर लगती है। यदि शम, दम नियमादि से हृदय शुद्धि करते हैं। तो तृष्णा राग द्वेष आदि बाहिर अंधेरा फैला देते हैं यदि दान, धर्म, उपकार आदि द्वारा बाहिर प्रकाश करते हैं, तो बड़प्पन, अभिमान, विषय विकार भीतर अंधेरा कर देते हैं। हाय हाय जीव विचारा क्या करे कुछ ठिकाना है संसार के दुर्व्यवहार का ? देखिये दो अक्षरों के आढ़ती क्या नफे का सौदा बताते हैं:-

राम नाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो जो चाहत उजियार॥

भीतर और बाहिर उजाला करने के लिये दरवाजे पर दीपक रखना बिल्कुल ठीक है। शरीर रूपी मकान के द्वार रूपी मुख की देहरी रूपी 'जीभ' पर राम नाम मणि बाहिर और भीतर प्रकाश कर देगी, कितना बढ़िया रूपक बांधा है।

× × ×

गणित शास्त्रवाले इस बातको भली भांति जानते हैं कि गणित में शून्य का कुछ मान नहीं होता। परन्तु अंक ( हिन्दसा ) साथ होने से शून्य का मान दश गुणा बढ जाता है इस कारण अंक की अति आवश्यकता है। अंक के बिना शून्य ( ० ) किसी काम की नहीं।

राम नाम को अङ्क है, सब साधन हैं सून।
अङ्क गये कुछ हाथ नहीं, अङ्क रहे दश गून॥

यम नियम शम दमादि साधना तो शून्य है। राम नाम के दो अक्षर अंक हैं। इन अक्षरों के बिना वे किसी काम के नहीं।

× × ×

शरीर के अन्दर कितने विकार भरे पड़े हैं यह बात तो वैद्य ( Doctor ) ही जानते होंगे। परन्तु कामादि खल और राग द्वेषादिक विकार तो प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहे हैं। मकान के अन्दर से दुष्ट को धक्के लगा कर निकाल देने और फिर किवाड़ बन्द करलेने से उसके वापिस आने का खटका नहीं रहता। हमारे इन दो अक्षरों में भी यही करामात पूरी २ है।

तुलसी राके कहत ही निकसत पाप पहार।
फिर आवन पावत नहीं देत मकार किवार॥

"रा" कहते ही मुख खुला और पाप बाहिर निकल गया फिर "म" कहते ही मुंख बन्द होगया और पाप नहीं आने पाये।

कहांतक कहें इन दो अक्षरों का चमत्कार। इस चमत्कार में हमारी तो आंखे चुन्धिया गईं। समय मिला तो फिर कभी . . ... ... ... ...

# मनुष्य के लिये भगवद्भजन ही कल्याणकारी है

[ ले० श्री सुरेशचन्द्रदत्त जी ]

नुष्य योनि में जन्म ग्रहण करके ईश्वर प्राप्ति करना यही मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य जीवन में रह कर यदि ईश्वर प्राप्त नहीं किया तो फिर इस असार संसार में चक्कर खाते रहिये। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" इस सूत्र से स्पष्टतः ज्ञात हो जाता है कि ब्रह्म जो परमात्मा है यही केवल सत्य है और यह संसार मिथ्या है। तब फिर इस मिथ्या चीज (संसार) पर गुमान क्यों करें! प्राप्त तो ऐसी चीज करनी चाहिये, जो सत्य है, जो अविनाशी है। यह जगत् तो विनाशी है, मिथ्या है, दुःख स्वरूप है। जब तक इस मिथ्या संसार में रहोगे तब तक सुख क्या चीज है, इसका अनुभव नहीं कर सकोगे। तब आप कह सकते हैं कि संसारमें सच्चा सुखी कौन है? हम क्या, हमारे शास्त्र भी यही कहते हैं- सच्चा सुखी वही है जो हरि नाम लेता है। चाहे हरिनाम लेने वाले को रहने की जगह न हो, न खाने पीने को आहार हो, न अङ्ग पर सुन्दर वस्त्र हों, परन्तु इन चीजों से वंचित रहने पर भी हरिनाम लेने वाले को जो सुख है वैसा सुख संसार में क्या राजा क्या महाराजा, क्या वकील क्या बैरिष्टर किसी को नहीं। हमारी मोटी दृष्टि से भले ही इन सांसारिक लोगों को सुख दीखता हो, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो ये सब सुख कोई काम का नहीं है। अगर सच्चा सुख अनुभव करना है, इस संसार के दुखों से छुटकारा पाना है, तो परमात्मा को प्राप्त करो। परमात्मा को प्राप्त करने से ही सच्चे सुख का आनन्द लूटोगे और मोक्ष को प्राप्त होगे। परमात्मा को प्राप्त करने के लिए हमारे ऋषि मुनियोंने अनेक मार्ग बता दिए हैं।

सबसे सहज मार्ग है "हरिनाम लेना" इससे सहज मार्ग दूसरा कोई नहीं है। जहां जाइए, जहां बैठिए, हरिनाम हरिनाम जपते जाइए। परमात्मा स्वयं मिल जायंगे। उनके मिलने ही से आपका सोलहों आना काम बन जायगा। तब आप इस सांसारिक सुख को तुच्छ समझोगे, तब इस दुःखमयी दुनिया से छुटकारा पाजावोगे। तभी अपका कल्याण होगा, तभी आपका जन्म सार्थक होगा। कलियुग में हरिनाम लेने के सिवाय और कोई दूसरा साधन उपयुक्त नहीं है। क्योंकि बृहन्नारदीय पुराण में लिखा है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्तेव नास्तेव नास्तेव गतिरन्यथा॥

कलियुग में ध्यान, यज्ञ, तप इत्यादि से ईश्वर प्राप्ति करना बहुत कठिन है, क्योंकि भागवत् में ऐसा कहा है:-

कृते यद्ध्यायते विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तना॥

अर्थात् कृतयुग याने सत्ययुग में विष्णु के ध्यान से जो फल होता है त्रेता में यज्ञ करने से जो फल होता है, द्वापर में जो परिचर्या या सेवा से जो फल होता है कलियुग में संकीर्त्तन ही से वह फल

होता है ? तुलसीदास जीने लिखा है:-

ध्यान प्रथम मख युग दूजे,
द्वापर परितोषित प्रभुपूजे ।
कलि केवल मल मूल मलीना,
जाय पयोनिधि जन मन मीना ॥

अर्थात् सत्ययुग में शुद्ध सतोगुण अधिक था, तेत्रा में यज्ञ करने का प्रभाव था, ऐसा ही द्वापर में पूजा करने से परमेश्वर संतुष्ट होते थे, पाप के समुद्र रूपी कलियुग में मनुष्यों का मन मछली होरहा है इसीसे केवल हरिनाम ही आधारहै ।

साधुगणोंने कलि का स्वभाव (अर्थात् विविध दोष युक्त) जान कर भी सार ग्राही बोल कर आदर किया है । क्योंकि कलियुग में संकीर्तन ही से केवल परम पद लाभ किया जा सकता है । शुकदेव जी ने परीक्षित से कहा है:-

कलेर्दोष निधेराजन् अस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्त्तनात् देव कृष्णस्य मुक्त संगः परं व्रजेत् ॥

अर्थात् हे राजन ! कलिकाल सब दोष का आकर होने से भी इस में एक महान् गुण यह है मनुष्य कृष्ण नाम संकीर्तन करने ही से सांसारिक शक्ति शून्य होकर ब्रह्मपद को प्राप्तहोसकता है । तुलसी दासजी ने भी कहा है:-

नहि कलि कर्म न भक्ति विवेकू ।
राम नाम अवलम्बन एकू ॥

अर्थात् कलियुग में कर्मोपासना ब्रह्मज्ञान व भक्ति नहीं है, इसलिये राम नाम का जप करना यही एक आधार है । देखिये हरिनाम का प्रभाव:-

नारद जानेउ नाम प्रताप्,
जग प्रिय हरि, हर प्रिय आप् ।
अपर अजामिल गज गणिकाउ,
भये मुक्त हरिनाम प्रभाउ ॥

स्मृति में कहा है

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥

अब हमें यह जानना चाहिए कि हरि कीर्तन किस प्रकार करना चाहिए चैतन्यदेव ने कहा है:-

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदाहरिः ॥

अर्थात् तृण की अपेक्षा नीच, तरु की अपेक्षा सहिष्णु और अभिमानशून्य हो कर एवं सब को यथायोग्य सन्मान दे कर हरिनाम कीर्त्तन करना चाहिए।

## * भवपथ का पथिक *

( लं० श्री शोभारामजी धेनुसेवक )

भवपथ में भ्रमते २, सर्वस्व नशा चुकाहूं ।
अब तो शरण में तेरी, सर्वेश ! आ चुकाहूं ॥ १ ॥
ऐसी न योनि कोई, जिसमें न मैं भ्रमा हूं ।
तुझ से विमुख हो अगणित, मैं जन्म पाचुका हूं ॥ २ ॥
पाई न शान्ति मैंने, छूटी न भ्रान्ति मेरी ।
तुझको भुलाके कितनी, आपत्ति उठा चुका हूं ॥ ३ ॥
भव भ्रम से अब थकित हूं, भयभ्रान्ति से चकित हूं ।
चंचल हृदय को तेरे, चरणों में लाचुका हूं ॥ ४ ॥
जग से तटस्थ होकर, भव रुचसे स्वस्थ होकर ।
तेरी शरण मे आकर, ममता को डा चुका हूं ॥ ५ ॥
तन मन वचन से तेरा, मैं हूं है नहीं मेरा ।
मेरा तू नाथ, सेवक, तेरा कहा चुका हूं ॥ ६ ॥
अब मत मुझे भुलाना रोते को मत रुलाना ।
छविसिन्धु ! तेरी छवि पर, चित्त से लुभा चुका हूं ॥ ७ ॥

# भगवत् के दश अवतार

[डा० श्रीमती सरलादेवी भगवद्भक्ति आश्रम]

## १. मत्स्यावतार

भवलातल मध्यस्थो हत्वा तु मधुकैटभौ ।
उद्धृता येन वै वेदास्तस्मै मत्स्यात्मने नमः ॥

सृष्टि के आदिमें चैत्र शुक्ला तृतीया के दिन अपराह्न कालमें भगवान् विष्णु ने मत्स्यावतार धारण किया । भक्त वत्सल भगवान् अनन्तनाग रूपी शय्या पर शयन करते हैं । शयन करते २ उनको सृष्टि रचने की इच्छा हुई । तब उनके स्वेद से दो मधु व कैटभ नाम के दैत्य उत्पन्न हुये और नाभि कमल से ब्रह्माजी वेदों के सहित उत्पन्न हुये ।

भगवान् ने ब्रह्मा से कहा कि तुम सृष्टि रचो । इतने में मधु व कैटभ ने आकर ब्रह्मा जी से वेद हरण करलिये और समुद्र में जा छिपे । ब्रह्मा वेदों को न पाकर दुःखित हुये, क्योंकि ज्ञान बिना सृष्टि की रचना कैसे हो सकती है । ब्रह्मा ने विष्णु की स्तुति की । उसको सुन कर विष्णु ने कहा धैर्य धरो मैं वेदोंका उद्धार करूंगा । पश्चात् विष्णु भगवान् ने ध्यान से दैत्यों का कृत्य जाना। अतः उन्होंने विशाल मत्स्य रूप धारण कर समुद्र में प्रवेश किया और दैत्यों से युद्ध कर उनको मार वेद ब्रह्माजी को लाकर दिये । ऐसे मत्स्यावतार को नमस्कार है ।

## २. कूर्मावतार

स सागर वनां विभ्रत् सप्त द्वीपां वसुन्धराम् ।
यो धारयति पृष्ठेन तस्मै कूर्मात्मने नमः ॥

वैशाख पूर्णिमा के दिन सायंकाल में कूर्मावतार हुवे । पूर्व काल में देवता दैत्यों से पराजित होकर विष्णु भगवान् की शरण में गये और अपना दुःख सुनाया । भगवान् ने देवताओं से कहा जाओ दैत्यों से मिलाप करो और समुद्र को मन्दराचल की मथानी, नागराज की रस्सी बना कर मथो । उससे अमृत निकलेगा । अमृत पीकर तुम अमर होजाओगे । जयश्री के लिये देवताओं ने दैत्यों से मेल कर लिया । राजा बलि ने मंदराचल को लाकर समुद्र में रक्खा । नागराज का रस्सी बनाया । विष्णु के सहित देव दैत्यों ने समुद्र का मंथन किया परन्तु आधार न होने से मन्दराचल नीचे को धंसने लगा, तब श्रीभगवान् ने कूर्मावतार ले मंदराचल रूपी रई को अपनी पीठ पर ठहराया । समुद्र मंथन करने पर प्रथम कालकूट विष निकला उसको सब नागों ने ग्रहण किया और शेष से महादेव के कण्ठ की शोभा बढ़ी । तदनन्तर ऐरावत, उच्चैश्रवा, लक्ष्मी आदि १४ रत्न निकले और अन्त में अमृत कलश लिये हुये धन्वंतरि जी प्रकट हुये । दैत्यों को लक्ष्मी

तथा अन्य रत्न न मिलने का दुःख था अतः उन्होंने शीघ्रता से धन्वन्तरि के हाथ से अमृत कलश छीन लिया और अपने निवास स्थान की ओर चलदिये। तब विष्णु जी ने मोहिनी रूप धारण किया। दैत्य उस विश्व विमोहिनी स्त्री को देख कर अमृत को भूल गये। इसी अवसर में भगवान् ने देवताओं को अमृत पिलादिया और फिर देवों ने दैत्यों से युद्ध कर विजय प्राप्त की। ऐसे कूर्मावतार भगवान् को हमारा नमस्कार है।

## ३. वाराहावतार

एकार्णवेहि मग्नां गां वाराहं रूपमास्थितः।
उदधार महीं योऽसौ तस्मै क्रोडात्मने नमः॥

भाद्रपद की शुक्ला तृतीया के दिन अपराह्न काल में वाराह अवतार हुआ। कश्यप जी से दिति में एक बड़ा पराक्रमी शौर्यशाली हिरण्याक्ष नाम का दैत्य उत्पन्न हुआ था। उसका निवास पाताल में था। परन्तु वह स्वर्गवासी देवताओं को बहुत दुःख दिया करता था। उसने यह समझ कर कि मनुष्य उत्पन्न होकर देवताओं का अर्चन, पूजन, बलि आदि कृत्य करेंगे। अतः ब्रह्मा ने जो मनुष्यों के निमित्त पृथिवी बनाई थी, उसको वह हर लेगया। उसने सोचा कि यदि पृथ्वी न रहेगी तो मनुष्य भी नहीं रह सकेंगे। भगवान् ने जब सृष्टि को न देखा तो ध्यान से हिरण्याक्ष का कर्तव्य जान कर वेदमय वाराहावतार लिया। और पाताल में जाकर हिरण्याक्ष को मार पृथ्वी का उद्धार किया। ऐसे वाराहावतार को हमारा नमस्कार है।

## ४. नृसिंहावतार

नारसिंहः वपुः कृत्वा यस्त्रैलोक्य भयंकरम्।
हिरण्यकशिपुं जघ्ने तस्मै सिंहात्मने नमः॥

वैशाख शुक्ला चतुर्दशी के दिन सन्ध्या काल में नृसिंह खम्भ से उत्पन्नहुये हैं। पूर्वकाल में कश्यप ऋषि से दिति में हिरण्यकशिपु नाम का पुत्र हुआ उसने अन्न जल त्याग कर सहस्रवर्ष पर्यन्त बड़ा कठोर तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न करके यह वर प्राप्त किया कि मैं न रात को मरूं न दिन को, न घर, न बाहर, न अस्त्र से, न शस्त्र से, न देव से, न दैत्य से, न गन्धर्व से, न किन्नरों से, न मनुष्य से, न शूल, आयुध पवनादि से मरूं। दैत्य यह वर पाकर अहंकारी होगया उसने राज्य में आकर अपने अनुचरों से कहा कि देवताओं को यज्ञ की बलि न लेने दो और उनका सारा ऐश्वर्य अपने काम में लाओ। देवता उसके भय से जहां तहां मनुष्य रूप धर विचरने लगे। दैत्यराज ने अपनी प्रजा से कहा कि तुम न देवपूजो, न ईश्वर का ध्यान धरो क्योंकि देवों का देव ईश्वर और मालिक मैंही हूं। मेरी ही पूजा करो, मेराही नाम लेवो, मेरा ही ध्यान धरो, मैं तुम्हारा राजा और स्वामी हूं। दैत्यों ने अपने राजा की आज्ञानुसार वैसा ही किया। भगवान् ने जब यह लीला देखी तो दैत्यों के विनाश के लिये वैष्णव भक्त प्रह्लाद पुत्र उसको दिया। प्रह्लाद अपने पिता को बहुत प्यारा था। जब वह बड़ा हुवा तो पिता ने उसे पढ़ने के लिये पाठशाला में भेजा। ईश की अनुकम्पा से उसके हृदय में विष्णु की अनन्य भक्ति थी। वह पाठशाला जाकर अपने गुरू से कहने लगा कि हे गुरू जी!! मेरी पट्टी पर राम-नाम लिखदो। गुरु ने प्रह्लाद की बात सुन कर कहा कि पुत्र! तेरा पिता राम का बैरी है। उस का नाम न ले परन्तु प्रह्लाद ने न माना हारकर गुरु प्रह्लाद को राजा के पास लाये और उसकी भक्ति कथन की। दैत्यराज यह सुनकर अप्रसन्न

हुवे । पिता ने पुत्र को बहुत समझाया परन्तु प्रह्लाद ने अपना अटल निश्चय रक्खा और कहा:-

"नहिं छोड़ूं रे बाबा रामनाम"

पिताने क्रुद्धहोकर पहाद को जल में डुबाया, पहाड़ से गिराया, सर्पसे कटाया, अग्नि में जलवाया परन्तु हरिभक्त को आंच भी नहीं आई और बाल भी बांका न हुआ । तब पिता ने क्रुद्ध होकर पहाद को खम्भ से बान्धा और तलवार से मारने लगा भक्त-वत्सल अपने बालक भक्त का दुःख कैसे देख सकते थे तत्क्षण ही खम्भ को फाड़ कर नृसिंह रूप में प्रकट हुये और दैत्यराज को मारकर पहाद को अटल राज्य दिया । ऐसे नृसिंहावतार हमारी रक्षा करें ।

## ५. वामनावतार

वामनं रूप मास्थाय बलिं संयम्य मायया ।
इमे क्रान्ताखयो लोकास्मैस्मै क्रान्तात्मने नमः ॥

भाद्रपद शुक्ला द्वादशी के दिन मध्याह्न समय कश्यप ऋषिसे अदितिमें वामन प्रकटहुवे । जब वामन भगवान् का जन्म हुवा तभी बली के यज्ञ में खलबली मचगई थी । बली राजाने अपने गुरूसे इसका कारण पूछा शुक्राचार्य ने बताया कि दैत्यों का वैरी वामनावतार हुवा है अतः यदि वामन तुम्हारे यज्ञ में आवे तो उनके साथ तुम वचनबद्ध न होना । और मुंह मांगा देने के लिये भी न कहना । परन्तु राजा ने कहा हे गुरो ! मैं ऐसा कदापि नहीं करूंगा मैं तो उनको मुंह मांग दान दूंगा । इतने मेंही बाहर वामन भगवान् आये हैं ऐसा राजासे द्वारपाल ने कहा राजा ने कहा शीघ्र भीतर लेआवो मैं आज उनको दान देकर कृत् कृत्य होऊंगा । वामन ने आकर राजा की बड़ाई की और कहा कि हमें अग्नि की रक्षा के लिये तीन पैर भूमि चाहिये । राजा देने को तैयार हुवे तो बालक ने कहा जल लावो तब जल के कलश में शुक्राचार्य बैठ गये वामन ने तिनका चुभा कर उस को आंख फोड़ दी । अतः शुक्राचार्य निकल भागे । जल लेने पर वामन भगवान् ने एकदम अपना रूप ऐसा बढाया कि दो पैर में त्रिलोकी नापली और तीसरे पैर में दैत्य के शरीर को भी नापलिया । तब अन्य दैत्यों ने बड़ा कोलाहल किया । भगवान् ने उन सबको मार डाला और बलि राजाको पाताल का राज्य दिया और कहा कि वैवस्वत मनवन्तर की समाप्ति होने पर तुमको स्वर्ग का राज्य मिलेगा । ऐसे वामनावतार को नमस्कार है ।

## ६. परशुरामावतार

जमदग्नि सुतो भूत्वा रामः परशु धृग् विभुः ।
सहस्रार्जुन हन्त्रे तस्मै उग्रात्मने नमः ॥

वैशाख शुक्ला तृतिया के दिन मध्याह्न समय जमदग्नि ऋषि के परशुराम अवतार हुवा । एक समय ऋषियों ने भगवान् की स्तुति प्रार्थना की । श्रीहरि जमदग्नि के पुत्र परशुराम के रूप में अवतरे । इसी समय एकदिन कार्तिकवीर्य नामका राजा शिकार खेलने आया । जमदग्नि ऋषि ने कामधेनु के प्रताप से उस राजा की खूब राजसी ठाठ से सेवा की । राजाका मन उस गौ को लेनेको हुवा । उन्होंने ऋषिसे गौ मांगी । ऋषि के गौ न देनेपर राजाने जमदग्नि को मारडाला और गौ को लेजाना चाहा । परन्तु वह उड़कर स्वर्ग को चली गई । ऋषि के मरने पर उसकी स्त्री छाड मारकर रोने लगी । रोनेकी आवाज

सुन कर परशुराम आये और कहा कि हे माता रोवो मत । तुमने इक्कीस बार अपनी छाती पीटी है अतः मैं इक्कीस बार ही पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य करदूंगा । और उसी समय प्रथम कार्तिकवीर्य राजा को मार पृथ्वी कश्यप जी को दी । इस प्रकार परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य कर दिया । ऐसे परशुरामावतार को नमस्कार है ।

## ७. रामावतार

रामो दाशरथी भूत्वा पौलस्त्य कुल नन्दनम् ।
जघान रावणं संख्ये तस्मै क्षत्रात्मने नमः ॥

चैत्र शुक्ला नवमी के दिन मध्याह्न काल में दशरथ से कौशल्या में श्रीरामचन्द्रावतार हुआ । विश्वामित्र जी राजा से मांग कर राम लक्ष्मण को अपने यज्ञ की रक्षा को ले गये वहां उन्होंने ताड़का सुबाहू को मार यज्ञ की रक्षा की । वहां से ऋषि के साथ वह जनकपुर में गए। रास्ते में अहिल्या का उद्धार किया और जनकपुर जाकर अपनी आदि शक्ति जननी जगत् माता जानकी को पत्नी रूप में ग्रहण किया फिर अवधपुर आने पर पिताने पुत्र के गुणों से प्रसन्न होकर युवराज देना चाहा भगवत् की इच्छा तथा देवकार्य के लिए माता कैकेयी ने इस में विघ्न डाल दिया और रामको लक्ष्मण सीता सहित बन जाना पड़ा दशरथजी ने पुत्र प्रेम में प्राण त्याग किया भरत जी ने आकर राम को अवधपुर लौटने को कहा परन्तु सत्यसिन्धु श्रीरामचन्द्र जी नहीं आये । भाई भरत भी राम के वियोग में उनकी खड़ाऊं को सिंहासन पर रखकर ऋषि मुनियों की भान्ति रहने लगे । वनमें रावण सीताजी को हर कर लेगया । रामचन्द्रजी ने बन्दरोंकी फौज बनाकर राक्षणादि सब राक्षसों को मार सीता को छुड़ालिया । सीता जी से राम ने पवित्रता की साक्षी चाही । सीता अग्नि में प्रवेश करगई, न जली, अग्निदेव तथा स्वर्ग से आ राजा दशरथ ने भी सीता को पवित्र बताया, फिर सीता को लेकर राम अयोध्या में आए और कई सहस्र वर्ष राज्य किया ऐसे रामावतार को नमस्कार है ।

## ८. कृष्णावतार

वसुदेव सुतः श्रीमान् वासुदेवो जगत्पतिः ।
जहार वसुधाभारं तस्मै कृष्णात्मने नमः ॥

द्वापर युग के अन्त में जब पृथ्वी पाप से दबने लगी तो ब्रह्माजी से जा पुकारी और अपना दुःख सुनाया । ब्रह्माजी पृथ्वी को आश्वासन दे विष्णु भगवान् की स्तुति करने लगे । भगवान् ब्रह्माजी की नम्र वाणी सुनकर प्रसन्न हुये और पूछा हे 'ब्रह्मन् ! किस निमित्त तुम सब यहां आये हो' । ब्रह्मा ने पृथ्वी का अखिल कष्ट वर्णन किया, तब श्रीहरि बोले अच्छा अब तुम जाओ हम शीघ्र ही वसुदेव देवकी में मनुष्य रूप से अवतरेंगे । भाद्रपद कृष्णाष्टमी को भगवान् ने अवतार लेकर वृज में जाकर पूतना शकटासुर धेनुक और प्रलम्बासुर को मारा कालीनाग को उपदेश दे गोवर्द्धन उठाकर वृजवासियों की इन्द्रसे रक्षा कर गोपी गोपों को भक्ति पन्थ में लगा कर मथुरा में जाकर कंस को मारा और अपने माता पिता को कारागृह से मुक्त किया । फिर सान्दीपन नामक पण्डित से विद्याध्ययन किया और गुरु दक्षिणा में उनका मृतपुत्र लाकर दिया । मथुरा में नित्य नये क्लेश देख विश्वकर्मा से समुद्र के बीच में द्वारका नाम अति सुन्दर नगरी रचवाई और उसमें

रहने लगे शिशुपाल से बचाय रुक्मणी को लाये। सत्यभामा सहित जाकर अति दुःखदायी भौमासुर को मारा, कौरव पाण्डवों के युद्ध में अर्जुन के सारथी बने और रणक्षेत्र में अर्जुन को परम पवित्र गीता का ज्ञान दिया जिसका आज भारत में ही नहीं समस्त संसार में आदर है। इनका विस्तृत जीवन चरित्र पाठक भक्तिके पिछले अंकोंमें पढ़ही चुके हैं। अतः यहां इतना ही अलं है। ऐसे कृष्णावतार को हमारा बारम्बार नमस्कार है।

## बुद्धावतार।

बुद्धरूपं समास्थाय सर्वरूप परायणः।
मोहयन्सर्वभूतानि तस्मै मोहात्मने नमः॥

आश्विन शुक्ला दशमी को भगवान् बुद्धका अवतार हुवा। बुद्ध भगवान् कपिल वस्तुके राजा शुद्धोधन के पुत्र थे। यह संसार को दुःखमय देख कर उस दुःख से छुटकारा पाने के लिये उदासीन हो घर द्वार, स्त्री पुत्रादि को त्याग घर से निकल गये, वहां से मगधमें गए, और फिर बनारसमें गए। इन्होंने पीपल के वृक्ष के नीचे कठिन तप किया जिससे ज्ञान का प्रकाश हुवा। पश्चात् इन्होंने भिक्षु सम्प्रदाय की उत्पत्ति की। भारत में ही नहीं, अन्य देशों में भी इन के मत का प्रचार हुआ। यद्यपि इन्होंने वेदों पर अनास्था प्रकट की थी तदपि वर्ण भेद को मिटाने की चेष्टा नहीं की। नीचे लिखे चार प्रधान चक्र बौद्ध समाज के धर्म चक्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। १. जीवों को यन्त्रणा और दुःख सर्व व्यापी है। २. स्नेह, ममता तथा रागद्वेषादि से दुःख की उत्पत्ति होती है। मनः कल्पित विषय वासना ही इसकी जड़ है। ३. ममतादि के बन्धन से आत्मा को मुक्त करने से दुःख और यन्त्रणा का अवसान हो जाता है। ४. पूर्ण श्रद्धा पूर्ण चिन्ता, पूर्ण वाक्य और पूर्ण क्रिया यह निर्वाण प्राप्ति के चार पथ हैं। इनमें प्रवेश करने पर आत्मा मुक्ति साधन सम्पन्न हो सकता है।

भागवत् में लिखा है कि कलियुग के आजाने पर असुरों को विमुग्ध और विपथगामी करने के लिए भगवान विष्णु ने बुद्धावतार ग्रहण किया। इसीलिए बुद्धावतार हिन्दू शास्त्र के विरुद्ध धर्म प्रवर्तक न होने पर भी विष्णु के अवतार न माने गये

## कल्कि अवतार

हनिष्यति कलेरन्ते म्लेच्छांस्तुर्गं वाहनः।
धर्मसंस्थापनार्थाय तस्मै कल्क्यात्मने नमः॥

भूमण्डल पर अत्याचार करने वाले राजे, जिन भगवान् के भुजदण्ड रूप कराल सर्प के ग्रास बन उसकी विषमयी ज्वाला से भस्मीभूत शरीर वाले, और जिन मर्यादा पालक भगवान् की तीक्ष्ण धार वाली असिप्रहारसे खण्ड २ हो जायंगे ऐसे ब्राह्मणवंशोत्पन्न, सिंध देश के अश्वपर सवार होने, वाले, पुनः सत्युग के आरम्भकर्ता, धर्मप्रिय, कल्कि अवतार धारण करने वाले अच्युत भगवान् हमारी और तुम्हारी रक्षा करें। हे भगवन्! गौओं तथा कन्याओं का दुःख दूर करने के निमित्त धर्मका सेतु बान्धने के निमित्त, साधु पुरुषों को सान्त्वना देने के हेतु, दुष्ट जनों को दमन करने के वास्ते, भारत को स्वतंत्र करने के लिये, जगत् को पापाचरण में प्रवृत्त करने वाले, अति दारुण घोर कलियुग को नष्ट करने के लिये, और श्रद्धा, मित्रता, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति,

मेधा, तितिक्षा, लज्जा आदि सहित सत्युग को स्थापन करने के हितार्थ आप इस आर्य भूमि पर कल्कि अवतार धारण करो। हे भगवन! प्रचण्ड मार्तण्ड की मयूखों से प्रताड़ित किया अन्धेरा जिस प्रकार भास्कर के सामने नहीं ठहर सकता इसी प्रकार आपके आने पर पातक नहीं रहेंगे। जब आप चतुर्भुज रूप धारण करके धर्म की स्थापना के हेतु सेना को साथ लेकर गमन करेंगे उस समय घोड़ों की हिन हिनाहट से, हाथियों की चिंघाड़ों से, दांतों की टक्करों से, शूरों की भुजाओं के वेग से, घूसों के प्रहारों से, चपेटों की चोट से, तलवार, शक्ति, त्रिशूल, ऋष्टि, गदा और भयंकर बाणों के समूह के प्रहारों से अस्त व्यस्त होकर तुम्हारे समक्ष समर में कलियुग की चमू न ठहर सकेगी। हे कलिकुलवनहन्ता प्रभो! मेरी आप से यही प्रार्थना है कि आप अपनी गीता में कही हुई "यदा यदा हि धर्मस्य" की प्रतिज्ञा को कल्कि अवतार धारण करके पूर्ण करें।

# भगवत् से प्रार्थना

( लेखक एक कुटीचक )

अखंडानन्ददातारं सुखसिंधुमनामयम्।
संसारतापहर्तारं नमामि देवमव्ययम् ॥१॥

**नमस्कार**—हे भगवन् विश्वस्वामिन्! हे परमेश्वर अन्तर्यामिन्! आपको नमस्कार है! हे देवों के देव निरञ्जन! हे अनन्त सच्चिदानन्दघन! आपको नमस्कार है! हे सर्व चराचर वन्दित, शुद्ध बुद्ध अनिन्दित! आपको नमस्कार है! हे परम स्वतंत्र, परमाद्वैत, अखंडित! हे अनादि अनन्त, वेदशास्त्र मंडित! आपको नमस्कार है! हे ब्रह्मादिक कर्ता, भवमय हर्ता! हे अनन्त कोटि ब्रह्मांडधर्ता तथा सहता! आपको नमस्कार है! हे मायेश मायातीत! हे निर्गुण गुणातीत! आप को नमस्कार है। हे सनातनदेव सर्वप्रकाशक! हे पुरातनशिव पापौघ नाशक! आपको नमस्कार है! हे सर्वाधार! निराधार! हे सर्वाकार निराकार! आपको नमस्कार है! नमस्कार है!! बारम्बार नमस्कार है।

**दुर्विज्ञेय**—हे प्रभो! आप परम दुर्विज्ञेय हैं, तुच्छ प्राणियों का तो कहना ही क्या है, ब्रह्मादिक देवता भी आपके जानने में असमर्थ हैं! फिर मैं आपको किस प्रकार जानूं? हे देव! आप माया के ईश हैं, मैं माया के आधीन हूं, फिर मैं आप को कैसे जानसक्ता हूं? हे परम पावन! आप तीनों गुणों से परे हैं, मैं तीनों गुणों की रस्सी से बंधा हुआ हूं, फिर मैं आपको कैसे पहिचान सकूं? हे आप्तकाम! आप निष्काम हैं, मैं अनेक कामनाओं के जाल में जकड़ा हुआ हूं फिर मैं आपके जानने में कैसे समर्थ होऊं? हे भगवन्! आप सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् हैं, मैं अल्पज्ञ शक्ति शून्य हूं, फिर मैं आपको खोज कैसे करूं? हे करुणानिधान! आप अथाह, असीम, अनंत सिन्धु हैं, मैं तुच्छ, परिमित, क्षुद्र जल बिन्दु हूं, फिर मैं आपकी थाह किस प्रकार पा सक्ता हूं? हे परात्पर! आप समष्टि पंच कोशों के बाहर हैं, मैं व्यष्टि पंच कोशों के भीतर हूं, फिर मैं आपका पता कैसे लगा सक्ता हूं?

हे अपरम्पार ! आप कोटि ब्रह्माण्डों के आधार, अधिष्ठान हैं, मैं कोटि छिद्र वाले पंचभौतिक पिंजरे में बन्द हूं, फिर मैं कौनसी नसेनी लगा कर आपके पास पहुंच सक्ता हूं ? हे सर्वनाम ! मैं आपका नाम भी तो नहीं जानता ! मैं क्या बड़े २ शास्त्रकार विद्वान् भी तो नहीं जानते ! अपनी २ बुद्धि से सब आपके नामोंकी कल्पना करते हैं। शैव आपको शिव कहते हैं, वैष्णव आप को विष्णु कहते हैं, शाक्त आपको शक्ति कहते हैं, वैनायिक आपको विनायक कहते हैं, सौर आपको सूर्य कहते हैं, सांख्यवादी आपको पुरुष कहते हैं योगी आपको ईश्वर कहते हैं, नैयायिक आप को कर्ता कहते हैं, विज्ञानवादी आपको विज्ञान कहते हैं, शून्यवादी आपको शून्य कहते हैं, मीमांसक आपको कर्म कहते हैं, ज्योतिषी आपको काल कहते हैं और ब्रह्मवादी आपको ब्रह्म कहते हैं। इस से यह ही सिद्ध होता है कि आपको कोई नहीं जानता और आपका कोई नाम भी नहीं है आपके भक्तों ने अपनी २ भावनानुसार आपके नामोंकी कल्पना की है।

**भक्ति**–हे विभो ! श्रुति भगवती और संत महात्माओं का कथन है कि आपको कोई नहीं जानता, आप सब को जानते है, यदि कोई आपको जानता है तो आपकी भक्ति करके ही आपको जानता है ! आपका होकर ही आपको जान सक्ता है। जो कोई देह से, गेह से, धन से, ऐश्वर्य से, नामना से, कामना से, कुटुम्ब से परिवार से मुख मोड़ कर आपके शरण होता है, केवल आपका ही भजन करता है, प्रेम पूर्वक व्यभिचार रहित आपकी अनन्य भक्ति में लगता है, वह ही अहंता ममता से रहित होकर, अपना सर्वस्व आपको जानता है। आपका साक्षात्कार करता है और आपको प्राप्त होता है।

**भक्ति की महिमा**–हे जनार्दन ! आप के तत्त्वदर्शी भक्तों से भक्ति की महिमा इस प्रकार सुनने में आई है कि भगवान् की भक्ति आधि व्याधि जन्म जरा मरण आदि संसार के बीजों को जला कर इस प्रकार भस्म कर देती है जिस प्रकार अग्नि लकड़ियों का जला कर राख कर देती है। भक्ति के प्रभाव से भक्त पर माया और माया के परिवार का कुछ वश नहीं चलता ! भक्ति के पास माया कभी नहीं जाती किंतु भयभीत हुई दूर ही खड़ी रहती है और तो क्या, आंख उठा कर भी भक्त की तरफ नहीं देख सक्ती ! जैसे सिंह से मृग भयभीत रहता है इसी प्रकार भक्त से माया डरती रहती है ! जैसे बिल्ली से चूहा दूर रहता है, इसी प्रकार भक्त से माया दूर रहती है ! जैसे तपस्वी क्रोधी ब्राह्मण से चारों वर्ण भय मानते हैं इसी प्रकार भक्त से माया भय मानती है। जैसे न्यायकारी राजा से चोर, डाकू, जुआरी, ठग डरते रहते हैं, उसके राज्य में कोई उपद्रव नहीं मचाते ! इसी प्रकार भक्त से माया डरती रहती है और उसके किसी कार्य में विघ्न नहीं डालती ! जैसे सती से कामी पुरुष भय मानते हैं, इसी प्रकार भक्त से माया भय मानती है ! जैसे सिद्ध योगेश्वर से कामना वाले गृहस्थ भयभीत रहते हैं, उसके पास नहीं फटकते, इसी प्रकार भक्त से माया भयभीत रहती है, उसे मुख नहीं दिखाती ! जैसे सर्प से सब प्राणी चौकन्ने रहते हैं, इसी प्रकार भक्त से माया चौकन्नी रहती है, आंख नहीं मिलाती ! जिस बली और दुष्ट अभिमान ने बड़े २ तपस्वियों को तंग कर रक्खा है, वह अभिमान भक्त

को मान दिलाता है ! जो काम स्त्री पुरुषों को बन्दर के समान नचाता रहता है, वह ही काम भक्त की मनोकामनायें पूर्ण करता है ! जो क्रोध संसार भर का रक्त चूसता रहता है, वह ही क्रोध भक्त का दिन दूना रात चौगुना रक्त बढ़ाता है ! जो लोभ बड़े २ कवि कोविदों की थोड़ी देर में थोड़ी सी बात के लिये प्रतिष्ठा भग्न कर देता है, जिस लोभ ने छप्पन कोटि यादवों का नाश कर दिया, जिसने जर्मनी सरीखे विद्वान् की बुद्धि भ्रष्ट करके हजारों लोगों के प्राण लिये और योरुप की सभ्यता में बट्टा लगा दिया, वह ही लोभ भक्त की कीर्ति दशों दिशाओं में फैलाता है ! सारांश यह है कि शत्रु भी भक्त के मित्र होजाते हैं ! मोह, मद, मत्सर, ईर्षा, राग, द्वेषादि सब शत्रु सेवा करते हैं। जब शत्रु ही सेवा करने लगते हैं तो शम, दम, विवेक, वैराग्य, तितिक्षा, क्षमा, उपरति श्रद्धा, संतोष, धैर्य, शील, सरलता, माधुर्यता, वीरता, धीरता, गंभीरता, उदारता आदि तो सब के सम्मित्र हैं ही, उनकी सेवा करने में संदेह ही क्या है ये सब तो सर्वदा भक्त के साथ ही रहते हैं, सोते जागते, उठते बैठते, घर में जंगल में, एकांत में भीड़ में कभी भक्त को नहीं त्यागते।

**भगवत् का स्वरूप**—हे त्रैलोक्यनाथ ! वेदवेत्ताओं का कथन है कि निर्गुण और सगुण यानी अमूर्त और मूर्त आपके दो स्वरूप हैं। निर्गुण रूप से आप सर्वदा एक रस, अखंड, कूटस्थ, भूमा, अव्यय, नित्य निर्विकार, सत्य, ज्ञान और आनन्द स्वरूप हैं और सगुण स्वरूप से भक्तों पर अनुग्रह और दुष्टों का निग्रह करने के लिये आप अनेक रूप धारण कर लेते हैं ! ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट्, ब्रह्मा, विष्णु और महेश, सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती, धात्री, गायत्री और सावित्री, सूर्य्य, चन्द्र और वरुण, कुबेर, इन्द्र, वायु और विद्युत् आदि आप के सगुण रूप हैं। आप का निर्गुण स्वरूप नित्य है और सगुण स्वरूप नैमित्तिक है। आप के भक्त आपके दोनों प्रकारों के स्वरूप को जानते हैं, सर्वत्र आपको ही देखते हैं, आपके सिवाय दूसरा उन को दृष्टि में नहीं रहता ! दूसरा न रहने से उनका सब भय मिट जाता है ! दूसरा यानी भेद ही अनर्थ का हेतु है, भेद का अभाव हो जाने से सब अनर्थ निर्मूल हो जाते हैं ! और भक्त अखण्ड शान्तिरूप स्वाराज्य साम्राज्य को प्राप्त होता है।

**अभिलाषा**—उपरोक्त भक्ति की महिमा सुन कर आपकी भक्तिप्राप्त करने की मुझेभी अभिलाष होती है परंतु आपकी भक्ति तो ब्रह्मादिक देवताओं को भी प्राप्त होनी कठिन है ! फिर तो मेरी अभिलाषा ऐसी है जैसे जिस किसी को छाछ भी न मिलती हो और वह अमृत पीने की इच्छा करे अथवा जैसे पंगा पर्वत पर चढ़ना चाहे, ऐसी मेरी अभिलाषा है ! अथवा गूंगा वेद पढ़ने का मनोरथ करे, ऐसी मेरी अभिलाषा है ! अथवा जैसे दरिद्री जगत् सेठ होने की इच्छा करे, ऐसी मेरी अभिलाषा है ! अथवा जैसे कायर चक्रवर्ती राजा होने की कामना करे, ऐसी ही मेरी अभिलाषा है ! अथवा जैसे कोई ब्राह्मण विना तप किये ही वर शाप देने का सामर्थ्य चाहे ऐसी ही मेरी अभिलाषा है ! अथवा जैसे विना अष्टांग योग किये हुये ही कोई ऋद्धि सिद्धि प्राप्त करना चाहे, ऐसी ही मेरी अभिलाषा है ! अथवा जैसे कोई श्रवण, मनन निदिध्यासन किये विना ही ज्ञान का मनोरथ करे, इसी प्रकार मेरी

अभिलाषा है ! सारांश यह है कि जैसे इन सब के मनोरथ निष्फल हैं, इसी प्रकार भक्तिप्राप्त करने की मेरी अभिलाषा भी निष्फल है ! अर्थात् जिस कार्य को बड़े २ देवता नहीं कर सक्के, उसी कार्य को मैं कलियुगी, विषयासक्त, लोभी लम्पट जीव कैसे कर सक्ता हूं ? हे भगवान ! मैं सर्व प्रकार असमर्थ हूं, परन्तु आप तो सर्वशक्तिमान है ! जन्म से पंगे और गूंगे बालकों को आप पर्वत पर चढ़ने की और वेद पढ़ने की सामर्थ्य देते ही हैं, यह लोक प्रसिद्ध है ! दरिद्री सुदामा को आप ने परम श्रीमान बना ही दिया था, कायर सुग्रीव और विभीषण को आपने वानरों और राक्षसों का राजा बनाया ही था, रीछ बन्दरों को विना तप ही अनेक सिद्धियां दी ही थीं, ध्रुवके कान में शंख बजा कर आपने संपूर्ण विद्या पढ़ाही दी थीं और अमृत तो आपने अपने असंख्यों भक्तों को पिलाया ही है, यह शास्त्रों में प्रसिद्ध ही है । तब मेरी भी मनोकामना पूर्ण कीजिये, मेरी यह प्रार्थना है:-

**प्रार्थना**—हे जगन्नाथ ! संसारी किसी वस्तुकी कामना मेरे मन में आने न पावे ! हे खरारे ! क्रोध से कभी मेरा मन तपायमान न हो ! हे मधुसूदन ! मैं महात्मा हूं, धनवान हूं, मेरे समान भूतलपर कौन है ? इस प्रकार के मन के विकार को पंडित मद कहते हैं, यह मद मेरे तन में कभी प्रवेश न करे ! मोह अविद्या को कहते हैं, अथवा देहादि में आत्म बुद्धि होने का नाम मोह है, अथवा यह मेरा पिता है, यह मेरी माता है यह मेरी गृहणी है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा घर है, इस प्रकार की ममता का नाम मोह है, हे भक्तवत्सल ! इस प्रकार का मोह सर्वदा के लिये मेरे मन में से निकल जाय ! कपटाचार का नाम मिथ्याचार है, हे अखिलेश्वर ! ऐसे मिथ्याचार में भूल कर भी मेरी रुचि न हो ! विहित कर्मों का अनुष्ठान न करना और निषिद्ध कर्मों का आचरण करना, इसको शास्त्रवेत्ता अनाचार कहते हैं. हे सर्वरक्षक ! ऐसे अनाचार में मुझे स्वप्न में भी प्रीति न होवे ! दूसरे का शुभ न सहना, इसे मनीषी जन मात्सर्य करते हैं, हे करुणाकर ! ऐसे मात्सर्य से मेरे मन की रक्षा कीजिये ! हे कल्याणकर्ता ! मेरी वाणी कभी अश्लील भाषण न करे, दूसरे का परिहास भी कदाचित् न करे, न कठोर शब्द मेरे मुख से निकले और मैं कभी व्यर्थ भाषण भी न करूं ! अपनी प्रशंसा अपने मुख से मैं कभी न करूं, न किसी की चुगली खाऊं, न पराई निन्दा करूं ! पराए धन पर मेरी दृष्टि न जाय, न किसी का विश्वासघात करूं और भूल कर भी किसी का अनिष्ट चिंतवन न करूं ! हे भगवन् ! कुत्सित कर्ममें मेरा हाथ न चले ! हे शान्तिदाता ! सबके गुणों का ही मैं ग्रहण करूं और सर्वथा अवगुणों का परित्याग करूं ! हे दयासागर ! मेरी वागेन्द्रिय सर्वदा सत्य, अवाध्य, सरल और मीठी वाणी बोले ! गुणी लोगों के गुण न छुपाना किंतु दूसरे के गुणों की स्तुति करना और दूसरों के दोषों को देख कर न हंसना, इसको ज्ञानी जन अनुसूया कहते हैं ऐसी अनुसूया मुझ में सर्वदा वर्तमान रहे ! बाहर और भीतर दुःख उत्पन्न होने पर समर्थ होकर भी कुपित न होने को विद्वान क्षमा कहते हैं, हे आर्तहर्ता ! ऐसी क्षमा मेरा कभी त्याग न करे ! बाहर देहादि की शुद्धि और भीतर मन की शुद्धि, इन बाहर और भीतर की शुद्धि का नाम शौच है, हे प्राणदाता ! ये दोनों प्रकार का शौच सर्वदा मुझ में बना रहे ! पास में मन ऊंचा न

करना अप्राप्त में मन खिन्न न करना, प्राप्ति में समान रहना, इसको तत्वदर्शी संतोष कहते हैं। हे दया-निधान ! ऐसा संतोष सदाही मेरा सन्मित्र बना रहे ! सुख दुःख, शीतोष्णादि द्वन्द्वों का सहन करना, इस को धर्मवेत्ता तितिक्षा अथवा सहिष्णुता कहते हैं, हे घट घटवासी ! यह तितिक्षा मरण पर्यन्त मेरा साथ न छोड़े ! साधु, संत, महात्मा और सच्छास्त्र में मेरी पूर्ण श्रद्धा हो, संतों और सच्छास्त्र के वचनों को मैं कभी उल्लंघन न करूं किंतु सर्वदा पालन करूं ! हे प्रभो ! गुरु में, शास्त्र में, आप में सदा सच्चे मन से भक्ति हो ! विषयों को देख कर मन क्षोभ को न प्राप्त हो, सर्वदा स्थिर बना रहे ! मन से कर्म से, वाणी से ब्रह्मचर्य का पालन करूं, सब देवियों को रमा, शारदा और उमारूप जानूं ! स्वप्न में भी काम चेष्टा चित्त में न आने पावे ! किसी प्राणी की हिंसा न करूं, न किसी से कुवाक्य बोलूं, न किसी पर हाथ उठाऊं और न मन से ही किसी का बुरा चीतूं ! सब से मीठी, सत्य और हितकी वाणी बोलूं, जो शूल चुभावे, उसकी भी फूल से सेवा करूं, सर्वदा सब का भला चाहूं ! प्रयत्न पूर्वक भोगों का विसर्जन करूं और प्रेम पूर्वक सब के कुशल क्षेम का चिंतवन करूं ! हे विश्वेश ! शिष्ट पुरुषों का सा सर्वदा मेरा व्यवहार हो ! करुणा, दया अथवा पराया दुःख देख कर रोना, इसका नाम अनुक्रोश है, ऐसा अनुक्रोश सर्वदा मेरे मन में बना रहे ! हे जगन्नाथ ! मुझे अपनी करनी-कर्तव्य का अभिमान न हो सब का कर्ता धर्ता अपने को ही समझूं कभी भूल कर भी अपने को पूज्य समान बैठूं सदा नम्रता का पालन करूं, प्रसन्न वदन होकर सब से मिलूं ! विद्या और विनय से संपन्न होकर सर्वदा आपकी भक्तिकी इच्छा करूं, अन्य किसी प्रकार की कामना न करूं ! नामना के लिये कोई कार्य न करूं, जितना कार्य करूं, सब स्वधर्म समझ कर ब्रह्मार्पण रूप कर्म करूं, ! और नीचेके छन्द गाया करूं:-

## भगवत् से याचना

भुजंगी छन्द

(१)

नमस्ते, नमस्ते, नमस्ते मुरारे ! ।
नमस्ते, नमस्ते, नमस्ते, पुरारे ! ॥
नमस्ते, नमस्ते, अजन्मे स्वयंभो ! ।
नमस्ते, नमस्ते, महादेव शंभो ! ॥

(२)

नमस्ते रमानाथ ! ब्रह्मांड भर्ता ।
नमस्ते उमानाथ संहार कर्ता ॥
नमस्ते जगन्नाथ वैकुंठ वासी ।
नमस्ते प्रजानाथ काशी निवासी ॥

(३)

नमस्ते प्रणतपाल ऐश्वर्य दाता ।
नमस्ते महाविष्णु भक्तानुत्राता ॥
नमस्ते अखंडैक आनन्द राशी ।
नमस्ते महासूर्य सर्वानुभासी ॥

(४)

नमस्ते विभो, एक सर्वत्र व्यापी ।
नमस्ते अनामी अरूपी अमापी ॥
नमस्ते स्वयं सिद्ध कूटस्थ साक्षी ।
नमस्ते विशुद्धेश पापौघनाशी ॥

( ५ )

नमस्ते परब्रह्म चिन्मात्र पूर्ण ।
नमस्ते गुणातीत शंकादि चूर्ण ॥
यहूं वेद हैं आपके गीत गाते ।
नहीं ध्यान में शारदा शेष पाते ॥

( ६ )

सभी देव ब्रह्मादि ध्याते तुम्हें हैं ।
सदा सिद्ध योगी मनाते तुम्हें हैं ॥
सभी से जुदा हो, सभी में समाये ।
अजा आपके भेद को कौन पाये ॥

( ७ )

नहीं आदि ना मध्य ही आपका है ।
नहीं अन्त ही आप बेमाप का है ॥
भिखारी खड़ा द्वार पे याचता है ।
नहीं भुक्ति ना मुक्ति ही मांगता है ॥

( ८ )

नहीं अर्थ चाहे नहीं काम चाहे ।
न ऐश्वर्य चाहे नहीं नाम चाहे ॥
कृपा दृष्टि कीजे प्रभो ! दान दीजे ।
विभो ! चित्त के दोष निर्मूल कीजे ॥

( ९ )

कटु वाक्य कोई न भूले उचारूं ।
किसी का बुरा चित्त से ना विचारूं ॥
नहीं हाथ भी मैं किसी पै उठाऊं ।
मनोकर्म वाणी अहिंसा निभाऊं ॥

( १० )

सुना होय देखा यथा सत्य भाखूं ।
नहीं पेट में दंभ पाखंड राखूं ॥
कहूं सत्य ऐसा न हो हानि कोई ।
सभी का भला हो कहूं बात सोई ॥

( ११ )

नहीं वस्तु मैं दूसरे की उठाऊं ।
नहीं चित्त से भी उसे लेन चाऊं ॥
यथा सर्प से सर्व प्राणी डरें हैं ।
नहीं भूल भी संग ताका करें हैं ॥

( १२ )

यथा अग्नि छूता न कोई कभी है ।
जला देयगी जानता मूढ भी है ॥
बचें सर्प से अग्नि से सर्व जैसे ।
रहूं अन्य के द्रव्य से दूर तैसे ॥

( १३ )

प्रभो ! देवियां सर्व ज्यों मातु जानूं ।
रमा शारदा कालि ज्यों पूज्य मानूं ॥
नहीं काम चेष्टा करूं स्वप्न में भी ।
अकामी रहूं जान अनजान में भी ॥

( १४ )

नहीं पास राखूं वृथा वस्तु कोऊ ।
मिले आप से भी नहीं लेउं सोऊ ॥
भरा खाट हो, घास का हो बिछौना ।
दशों कोण नीलाम्बरी हो उढौना ॥

( १५ )

सदा तुच्छ की भक्ष में होय वासा ।
अपात्री इकाकी वसन मात्र आशा ॥
न संगी न साथी रहे पास कोई ।
अपेक्षा कभी भी किसी की न होई ।

( १६ )

बलें दीप हो सूर्य चन्द्रा सदाई ।
चलें वायु पंखा अनौखा डुवाई ॥
करें मेघ छाया निहालावें घुलावें ।
दशायें दशों दिव्य गाना सुनावें ॥

( १७ )

न ईर्षा किसी से न मात्सर्य ही हो ।
नहीं राग ना द्वेष की गंध भी हो ॥
न इच्छा कभी भी किसी वस्तु की हो ।
न चिंता चिता हो, सदा स्वस्थ जी हो ॥

( १८ )

रहूं नित्य संतुष्ट भिक्षान्न खाऊं ।
नदी नीर पीऊं, पिपासा बुझाऊं ॥
न माँगूं न याचूं नहीं दीन होऊं ।
जगत् शान्ति से शान्ति की नींद सोऊं ॥

( १९ )

सहूं द्वन्द्व सारे नहीं खिन्न होऊं ।
मिले कष्ट तो भी न उद्विग्न होऊं ॥
प्रशंसा सुनूं हर्ष जो में न पाऊं ।
अवज्ञा हुये भी नहीं खेद पाऊं ॥

( २० )

सदा जीभ मेरी जपे दिव्य मंत्रम् ।
सदा चित्त मेरा रटे पुण्य मंत्रम् ॥
रमे रोम एकेक में नित्य मंत्रम् ।
सभी नाड़ियों में बसे सत्य मंत्रम् ॥

( २१ )

लता वृक्ष में संसनी मंत्र की हो ।
पशु पक्षियों में ध्वनी मंत्र की हो ॥
सभी प्राणियों में सुनूं गुप्त मंत्रम् ।
जड़ों चेतनों में सुनूं गोप्य मंत्रम् ॥

( २२ )

प्रभो ! आपका दर्श हो विश्व मांही ।
विभो ! आपको ही लखूं सर्व मांही ।
कहीं भी नहीं अन्य देवे दिखाई ।
जगन्नाथ दीखे जहां दृष्टि जाई ॥

( २३ )

महा विष्णु देखूं सभी धाम माहीं ।
महादेव दीखें गली ग्राम माहीं ॥
विला रूप जावे विला नाम जावे ।
परब्रह्म सर्वत्र ही दृष्टि आवे ॥

( २४ )

सभी देवताओं सभी देवियों में ।
सभी योगियों ध्यानियों ज्ञानियों में ॥
सभी श्वान गौ अश्व में हाथियों में ।
सदा आप दीखें सभी योनियों में ॥

( २५ )

भजूं आपको, आपके गीत गाऊं ।
नहीं अन्य पढ़ूं नहीं अन्य ध्याऊं ॥
कभी भी नहीं आपको मैं रुठाऊं ।
सदा ही मनाऊं रिझाऊं हंसाऊं ॥

( २६ )

कटी में नहीं मोह मिथ्या बढ़ाऊं ।
रहूं वर्ष सौ कल्प या छोड़ जाऊं ॥
अभी छोन लो तो न पल्ला समाऊं ।
खुटे पाप से आपके पास आऊं ॥

दो०—पढ़े प्रार्थना चित्त दे, भाई बहिने दोय ।
भगवत् उनके चित्त के, डारें सब मल धोय ॥

भक्ति के प्रेमियों के सुबोधार्थ, मुमुक्षुओं के मोदार्थ, सज्जनों के प्रमोदार्थ और भगवद्भक्त संत महात्माओं के विनोदार्थ 'भक्ति' के चौथे वर्ष के प्रवेशांक की बधाई में भगवच्चरण कमलों में सादर समर्पित !

---

# भक्ति की महिमा

[ले० आत्मनिष्ठ स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती]

श्रीसच्चिदानन्द, आनन्दकन्द, भक्तवत्सल, वनविहारि, हृदयहारि मनमोहन, घनश्याम भगवान् की प्राप्ति के लिए भक्ति ही एक ऐसा साधन है कि जिस भक्ति रूपी नाव पर आरूढ होकर जिज्ञासु जन सहज ही भव सागर के पार जा सकते हैं। भज सेवायां धातु से 'स्त्रियांक्तिन्' इस सूत्र से क्तिन् प्रत्यय होकर भक्ति शब्द सिद्ध होता है, अथवा 'भजनं भक्तिः' ध्यान, ध्याता, ध्येय इन तीनों त्रिपुटियों की साम्यावस्था को भक्ति कहते हैं। भगवान् कृष्णचन्द्र, आनन्दकन्द ने गीता के नवम अध्याय में बतलाया है:-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

भक्तवत्सल भगवान् कहते हैं, कि जो मनुष्य अनन्य भाव और समाहित चित्त से मेरा ध्यान, स्मरण निदिध्यासनादि करते हैं, उनके समस्त कुटुम्ब का भार मैं स्वयं वहन किया करता हूं। यद्यपि भगवान् निर्विकार, निराकार, निर्लेप, अखण्ड ज्योति स्वरूप हैं, तथापि भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर बारम्बार अवतार धारण किया करते हैं। नारद भक्ति सूत्र में कहा है "अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम्" प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है। प्रेमकी महिमा को कोई वर्णन नहीं कर सकता।

प्रेम ही के बन्धन बंधे प्रेम रसिक मधुरेश।
प्रेम पन्थ के पथिक हम, प्रेम हमारो देश॥

वह प्रेम की ही अपार महिमा थी कि त्रिलोकीनाथ भगवान् कृष्णचन्द्र को ब्रज की युवतियां अंगिया भर छाछ पै नाच नचाती थीं। महात्मा कबीर जी कहते हैं:-

एक गोपि के प्रेम में बहगये कोटि कबीर।

गोपियां सर्वदा श्रीकृष्णचन्द्र का ही ध्यान, उन्हीं का स्मरण तथा उन्हीं का निदिध्यासन किया करती थीं।

कठोपनिषद् में भगवान् यमराज ने अपने शिष्य नचिकेता के प्रति कहा है:-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

जब उपासक उपासना बल से ध्याता, ध्यान, ध्येय; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; निर्माता, निर्माण, निर्मेय; इन तीनों त्रिपुटियों को अभ्यास और वैराग्य द्वारा मनके संकल्पों को वशीभूत करता हुवा एकाकार कर लेता है तब हृदयस्थित संकल्प विकल्प सब दूर हो जाते हैं, संशय भाग जाते हैं और तीनों प्रकार के कर्म भस्म हो जाते हैं। इसी भाव को लेकर भगवान् कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने भगवद्गीता के चौथे अध्याय में कहा है:-

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा॥

हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि इंधन को भस्ममय कर देता है वैसे ही ज्ञान रूपी अग्नि कर्मों को भस्ममय कर देता है।

भगवान् 'यदा यदा हि धर्मस्य' की प्रतिज्ञा के अनुसार प्रकटित होकर निज भक्तों का उद्धार, दुष्ट

जनों का संहार किया करते हैं। भगवान् वेद व्यासने श्रीमद्भागवत् में नवधा भक्ति का उल्लेख किया है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

इसी भाव को लेकर गोस्वामि तुलसीदासजी ने भी नवधा भक्ति का उल्लेख किया है।

प्यारे भगवद्भक्तो! जो कोई प्राणी नवधा भक्ति द्वारा भगवान् को प्रसन्न करेगा वही इस लोक और परलोक में आनन्दित होवेगा। भगवान् ने तो अपने मुखारविन्द से यहां तक कहा है:-

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्वमदर्पणम्॥

जो कोई भक्त प्रेम से पत्र पुष्प फल मुझे अर्पण करता है। ऐसी श्रद्धासे निवेदित पुष्पाञ्जलि को मैं अवश्य ही ग्रहण करता हूं। जो कुछ कर्म करो, जो कुछ खाओ, जो कुछ दान दो सब कुछ मेरे अर्पण करो। कर्म करो परन्तु कर्म के फलों को ईश्वरार्पण छोड़ दो। यही कर्म कहलाता है। कर्मयोग द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि होती है, अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है, ज्ञान प्राप्ति से भगवद् प्राप्ति होती है। बस यही मोक्ष है, यही परमानन्द प्राप्ति है, यही परम शान्ति है, इससे परे और कुछ नहीं है।

---

# भजन

१

हमारे पिता राम को नाम अधार॥ टेक॥
कर्ता हर्ता आप जगत् के, सृष्टी रचावन हार॥ १॥
घट २ व्यापक अन्तर्यामी, पारब्रह्म करतार॥ २॥
सब झूठा जंजाल जगत् का, कर भगवत् से प्यार॥३
जहां देखो तहां राम रमत है, तीन लोक उजियार॥४
विश्व भरण पोषण है वोही, निराकार साकार॥ ५

२

तेरी बीती उमरिया भजन बिना॥ टेक॥
तू जानत कोई मालिक नाहीं, यह जिन्दगानी चारदिना
खान पान विषयादिक भोगे, छोटा बड़ा कोई नाही गिना
धन जोबन स्थिर ना रहत है, देखत जारहे सभी जना
पुण्य पाप का हिसाब होगा, वेदशास्त्र कहै संत जना
दुख को बात याद नहीं करता, फिरता है तू बना ठना
कहे नारायण राम भजन बिन, मात तेरी ने वृथा जना

३

राम घर आये भिलनी करत बधावना॥ टेक॥
चाख २ बेर लाई, खट्टा लेवे आप खाई।
मीठा राखे राम ताई, भई प्रेम भावना॥ १॥
राम लक्ष्मण दोनों आये, प्रेम देख मुसकाये।
झूंठे कूंठे बेर खाये, गिनी जाति पातिना॥ २॥
कहते राम लक्ष्मण भाई, मीठा देख भिलनी नाहीं।
मात भी खिलावेनाहीं, स्वर्ग है न पावना॥ ३॥

थोड़े से लक्ष्मण को दीये, दन झूंठे जान फेंकदीये।
ताही की सजीवन बनकर, लक्ष्मण को जिवावना ॥
ऋषि मुनी कहने लागे, भीलनी के भाग जागे।
हम भी नाहीं जागे आगे, करी बहुत धावना ॥ ५॥
ऊंच नीच देख नाहीं, रामदास रीति याही।
करो सांची प्रीति भाई, कभी ना भुलावना ॥ ३॥

४

करो मन हरी चरणन में प्रीत ॥ टेक ॥
बाला पन हंस खेल गंवायो, गई जवानी बीत ॥ १ ॥
आन दबानी मौत शीश पर, फिर क्यों भयो नचीत॥
काल करे सो आजहि करले, क्या तन की प्रतीत ॥
कब लग झूंठ मनोरथ बांधे, आवुस होत व्यतीत ॥
राम नाम की ढाल बनाले, दया धर्म की भीत ॥ ५॥
काल का क्या डर है तुमको, होती सत् की जीत ॥

५

मालिक है कौन शरीर का ज़रा दीदार करना चाहिए
कौन हिलाता कौन जिलाता,
खान पान को तुरत पचाता।
लैन दैन सारा सुगताता,
पाले सब परिवार को, एक सार समझना चाहिए ॥
हाड़ चाम की देह बनाई,
रक्त मान्स मज्जालपटाई।
स्वांसादम से रहा चलाई,
बुद्धि से कर रहा कारको नित नाम हरी का लइए ॥२
घर ही में है करतम कर्ता,
तू क्यों अलग ढूंडता फिरता।
अन्त समय सब कोई मरता,
देख विकट संसारको, प्रभु की शरणागत रहिए॥ ३

६

और आसरो छोड़ आसरो ले लियो कुंवर कन्हाई को
हे बनवारी आज माहरो भरजा नानी बाई को ॥ टेक
असुर संहारन भक्त उधारन चारवेद महिमा गाई।
जहां २ भीड़ पड़ी भक्तन पर तहां २ कीन्ह सहाई ॥
पृथ्वी लाकर सृष्टि रचाई वराह होय सत् युग माहीं।
असुरमार प्रहलाद उबारो प्रगट भये हरि खम्भ माहीं
वामन होय बली को छल लियो कीनो काम ठगा
मच्छ कच्छ अवतार धारकर सुर नर की
अर्ध रैन गजराज पुकारयो गरुड़ छां
नारद की नारी हर लीनी जाकर
भस्मासुर को भस्म करायो सु
असुरन से अमृत ले आयो
परशुराम श्री रामचन्द्र भ
भिलनी के फल झूंठे
कर्मा के घर खीचड़
छल कर गई तब ना
सेन भक्त को सांसो
नाम देव रैदास क
दुर्योधन की मेवा त्या
प्रीत लगाकर गोपी तर
खीर बढ़ायो द्रुपद सुता
कह नरसीलो सुन सांवरिय

७

हृदय रूपी मंदिर में बस जा
जैसे चन्द्र बिना है चकोरो
भई है न पूजा तोरी लज्जा राखो
रंग में रंग अपने ऐसी, भई है तू
येही आशा मेरी हो बस आज्ञा मे

हृदय के अन्दर दास के बसके, आयो कहां जायगो नसके
हंसके हंसके रसके हो बस आजा मेरे राम ॥ ३ ॥
मैंने तुम से प्रीत लगाई, तुम छांडो सारी चतुराई ।
मैं अग्नि आयेसे जल गई हो बस आजा मेरे राम ॥

८

जाहे लगन लगी घनश्याम की ॥ टेक ॥
भरत कितहु पग परत है कितहू,
ने भी ज्ञा भूल जाय सुधिधाम की ॥ १ ॥
ोहार नहीं रहत सार कछु,
प्यारे रि पल निशि दिन यामकी ॥ २ ॥
भक्ति द्वारा भगव तिवे ही धावे,
लोक और परलोक म द्वारा धाम की ॥ ३ ॥
ने तो अपने मुखारविन्द ं करो स्तुति,
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भ प्राम की ॥ ४ ॥
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्र
यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ॥ ५ ॥
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्वमद

जो कोई भक्त प्रेम से पत्र टौना ॥
अर्पण करता है । ऐसी श्रद्धासे निवे
को मैं अवश्य ही ग्रहण करता हूं । के छौना ॥ १ ॥
जो कुछ खाओ, जो कुछ दान री,
अर्पण करो । कर्म करो परिणाम सलौना ॥ २ ॥
ईश्वरार्पण छोड़ दो । यही
कर्मयोग द्वारा अन्तःकरण मन मोहना ॥ ३ ॥
अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा र,
ज्ञान प्राप्ति से भगवद् प्रेम रस लौना ॥ ४ ॥
मोक्ष है, यही परमानन्द १०
है, इससे परे और न मन माने न मेरो ॥
हरण लाड़िलो,
निधि जगत उजेरो ॥ १ ॥

चाल मराल मनोहर बोलन,
चपल नयन मो तन हंस हेरो ॥ २ ॥
नारायण त्रिभुवन को स्वामी,
श्री वृषभानु कुंवरि को चेरो ॥ ३ ॥

११

प्यारे तेरे नयन अमी रस बोरे ॥
वृज वनितन कानन में लग २ छिन मे मानहि छोरे ॥
सुनत बनत है कहत बनत नहीं प्रेम प्रीति के डोरे
श्री रघुराज सुनाओ निशदिन मांगों यह कर जोरे ॥

१२

सखियां लगी सांवलिया प्यारे सौं ॥
जब बरजों बरजी नहीं माने,
अब क्या होत पुकारे सौं ॥ १ ॥
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल,
लग रही सांझ सवारे सौं ॥ २ ॥
मधुर अली दरशन बिन तरसत,
नेह लगा बंशीवारे सौं ॥ ३ ॥

१३

जन्म गंवायो ऊबा बाई ॥
भजे न चरण कमल यदुपति के रह्यो विलोकत छाई ॥
धन यौवन मद ऐंडो ऐंडो, ताकत नार पराई ॥ २ ॥
लालच लुब्ध श्वान भूठन जो, सोऊ हाथन आई ॥ ३ ॥
रंच कांच सुख लागि मूढमति, कंचन रास गंवाई ॥
सूरदास प्रभु छांडि सुधा रस, विषय परम विष खाई ॥

———

REGD. No. L. 2077

# भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित | मूल्य | ॥=) |
| २. | भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ... | ,, | ।=) |
| ३. | वेदोपनिषत् ... ... | ,, | ।=) |
| ४. | अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला ... ... | ,, | =)। |
| ५. | ज्ञानधर्मोपदेश ... ... | ,, | =)॥ |
| ६. | भक्ति योग संग्रह ... ... | ,, | =)॥ |
| ७. | शब्द सदाचार संग्रह ... ... | ,, | =)॥ |
| ८. | सत्य शब्द संग्रह ... ... | ,, | ।=) |
| ९. | शब्दसंग्रह ... ... | ,, | =)॥ |
| १०. | सारसंग्रह ... ... | ,, | =) |
| ११. | भाषा फक्किका प्रकाश ... ... | ,, | ॥) |

मिलने का पता:—

**श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।**

केवल टाइटिल पेज महारथी प्रेस, दिल्ली में छपा।